श्रीद्वारकेशो जयति

(श्रीद्वा. ग्र. माला का पुष्प १३)

प्राचीन वार्ता-साहित्य

प्रथम भाग

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश, (व्रजभाषा)
श्रीनाथदेव कृत संस्कृत अनुवाद एवं
आवश्यक विवरण (गुजराती) सहित

सम्पादकः—

द्वारकादास पुरुषोत्तमदास परिख

प्रकाशकः—

श्री विद्याविभाग—कांकरोली

सं. १९९६ श्रीवल्लभाब्द ४६१

प्रकाशकः—

पो. कण्ठमणि शास्त्री
संचालक
विद्याविभाग, कांकरोली.

प्रथमावृत्ति २००० श्रीकृष्ण जयन्ती

मूल्य १)

धी वीरविजय प्रीन्टींग प्रेसमां रमणिकलाल. पी. कोठारीए
छापी : ठे. रतनपोळ : सागरनी खडकी : अमदावाद

प्रास्ताविक

आज भारत की राष्ट्रभाषा होने का गौरव हिन्दी भाषा को दिया जा रहा है। और यह गौरव, भाषातत्त्वज्ञों से छिपा नहीं है कि व्रजभाषा के द्वारा ही सर्वांश में नहीं तो अधिकांश में उसे प्राप्त हुआ है। जिस की माधुरी पर मुग्ध हो कर अपनी मातृभाषा का मोह छोडते हुए अन्य भाषा भाषी भी जिस व्रजभाषा में हृदय के उद्गार उन सात्विक भावों को अभिव्यक्त करते थे, जिनके द्वारा मानव जीवन की सार्थकता समझी जाती है वह राष्ट्रभाषा हिन्दी की प्राण है; और इस प्राण की प्रतिष्ठा करनेवाले भगवान् जगद्गुरु श्री वल्लभाचार्य है।

जिस समय यवनों की उच्छूंखलता से भारतीय संस्कृति के साथ उसकी अटल धर्मभावना लुप्त होती चली जा रही थी, देश की भाषा के सिंहासन पर विदेशी भाषा एक प्रकार से चढ बैठी थी। यह पाप हमारी उन कुचली हुई आत्माओं की विवश दृष्टि में हो रहा था जिन को अमृतका सन्देश सुना कर जाग्रत, उत्थित और प्रबुद्ध करनें-वाला सं. १५३५ के पूर्व कोई महानुभाव प्रादुर्भूत नहीं हुआ था।

पाप प्रक्षालन के लिये निर्मलनीरा भागीरथी के अतिरिक्त अन्य कौन? बस भाषा के पाप प्रक्षालन के लिये भक्ति की भागीरथी प्रवाहित हुई और श्रीवल्लभाचार्य तथा उनके सुपुत्र गोस्वामि श्रीविठ्ठ-लनाथजी प्रभुचरण ने भारतीय जनता को उसमें मज्जन के लिये उद्-घोषणा कर दी। अष्टछाप की स्थापना ने धार्मिकता के अनुपान से भारतीयता को मरने से बचाया। आज हम देख रहे है हमारी भाषा,

हमारी संस्कृति, हमारा देश विषाद विपत्ति के निविडान्धकार से छुटकारा पा कर प्रकाश की किरणों के पडने से सचेष्ट हो गया है।

द्वन्द्व परिचालन क्रम से एक समय इस के बाद वह आया जब नव शिक्षितोनें व्रजभाषा का विरोध किया, पर वह ववंडर असन्मूल होने से स्वयमेव शान्त हो गया।

साहित्य के पारखियोंनें अपने अध्यवसाय, दक्षता और वास्तविक ज्ञान के सहारे व्रजभाषा के प्रति पुनः लोगो की सद्भावना स्थापित की। और उसके अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित कर अक्षय पुण्य का उपार्जन किया।

इसी ववंडर का एक छोटा हिस्सा 'अश्लीलता का आन्दोलन' था, जिसने समस्त प्राचीन साहित्य पर हडताल पोत दी थी, चाहे वह संस्कृत का वैदिक, पौराणिक, वैज्ञानिक साहित्य हो, चाहे भाषा का। पर इसकी मीमांसा लाख चेष्टा करने पर भी न की जा सकी कि वास्तव में अश्लीलता साहित्य में अपनी क्या परिभाषा रखती है?

'घटं भिन्द्यात्, पटं छिन्द्यात्' की भावनानें इस अश्लीलता आंदोलन की हवा पा कर साम्प्रदायिक साहित्य की लहलही, हरीभरी, सत्य, शिव, और सुन्दर वाटिका पर भी चोट की, और झाडझंखडों के साथ एक ओर से उन लताप्रतानों, सुरभित गुल्मों, फलित द्रुमों को भी साफ कर डालने का 'एलान' कर दिया, जिनसे देश, धर्म, समाज का मस्तिष्क नवीन स्फुरणा की प्राप्ति कर सकता था। अस्तु

आर्य समाज के उपदेशकों की चेतावनी पा कर उठे हुए

सनातन धर्म के उपदेशकों की भांति भाषासाहित्य के प्रेमियों, पक्षपातियों, और आस्वादकों को मूर्च्छना जागृत हुई चारों ओर घोर विरोध होने लगा, पर क्रियात्मक नहीं वाचनिक, ओर वह भी मर्यादा की बांध तोड कर। जो सभ्य, शिक्षित समाज को उचित नहीं जँचा।

विरुद्ध आन्दोलन को दबाने के लिये रचनात्मक कार्य की आवश्यकता है और अनिवार्य यह है कि वास्तविकता को प्रकाशन में लाया जाय, जिसे देख कर विरोधी भावना यदि वह हठ मूलक नहीं है तो स्वयमेव कपूर हो जाय।

द्विदलात्मक व्रजभाषा साहित्य के गद्य पद्य पर यहां कहने की आवश्यकता नहीं है। उस पर विद्वानोंने यथेष्ट प्रकाश डाल दिया है। साहित्य की अभिरुचिने उसके पद्यात्मक साहित्य को बहुत कुछ प्रकाशित कर दिया है फिर भी अभी उतना संग्रह उपलब्ध है जिस के लिये समय, धन और कार्यकर्ता को आवश्यकता है। सूरदासजी, नन्ददासजी की अधिकांश अधिकांश रचना को छोड कर शेष अष्टछाप के कवियों की कृतियाँ बन्धनों में बंधी हुई उन्मुख और उद्ग्रीव होने की बाट जोह रही है। न जाने कब उनको वह उन्मुक्त वात प्रकाश प्राप्त होगा?

इधर गद्य साहित्य की भी यही दशा है। अभी तक व्रजभाषा का जो साहित्य प्रकाशित हुआ है वह वार्तात्मक था, प्रकाशकों ने उसे विकृत अथवा अविकृत किसी भी रूप में प्रकाशित करनेका श्रेय प्राप्त किया. पर आवश्यकता थी अन्वेषण की। अद्यावधि मुद्रित

वार्ताओं का अधिकांश प्रकाशन जहां तक मुझे ज्ञात है किसी आदर्श पुस्तक के अभाव में ही हुआ है। जैसी कुछ भी पुस्तक संशोधित, परिष्कृत, परिवर्द्धित अथवा विकृत रूपमें प्राप्त हुई वह मुद्रित करा दी गई, उसके साथ न तो शंकाओंका समाधान करनेवाला, और न उसे प्रमाणित करनेवाला कोई अन्य साहित्य भी प्रकाशित किया गया जिस से उस के स्वरूप की रक्षा की जा सकती।

कुछ समय पूर्व हमारे मित्र भगवदीय द्वारकादासजी परिख के हृदय में श्रीवल्लभाधीश प्रभु की स्फुरणा से एसी जागृति हुई और उन्होने इस के लिये चेष्टा करने का संकल्प किया। उक्त मित्र ने भारी प्रयत्न, प्रचार एवं तत्परता से प्रस्तुत वार्ता साहित्य को नवीन रूपमे प्रकाशित करने का कार्य प्रारंभ किया। गुजराती भाषा भाषी होने पर भी व्रजभाषा के प्रति उनकी यह आस्था देख कर मुझे चकित हो जाना पडा। वास्तव में इस प्रकार की दृढ भावना वैष्णव धर्म का प्रभाव है जिसने सारे गुर्जर प्रान्त में व्रजभाषा साहित्य का, कीर्तन, वार्ता और पदों के द्वारा एक जालसा बिछा दिया है।

जब नागरी प्रचारिणी सभा, और हिन्दी साहित्य सम्मेलनने देश के विभिन्न भाषा भाषी प्रान्तो में एक हिन्दी भाषा के प्रचार की बात सोची भी नही थी, सोचना तो दूर उनका जन्म भी नहीं हुआ था उस के लगभग ३०० वर्ष पूर्व ही पुष्टिमार्गने समस्त गुर्जर प्रान्त में भाषा साहित्य का विस्तार कर दीया था, यही कारण है कि आज गुजरात में हिन्दी प्रचार की आवश्यकता प्रतीत नहीं हो रही है वह तो वहाँ इस भक्तिमार्ग के द्वारा बहुत कुछ पनप चुकी है। अस्तु

उपर कहा जा चुका है कि प्राचीन वार्ताओ प्रकाशित करने के लिये हमारे उक्त मित्र ने उत्साह के साथ कार्य शुरू किया। उन्होने न केवल उसका समस्त साहित्य ही एकत्रित किया, प्रेस कापी भी तैयार की और छपाने के लिये आर्थिक साहाय्य एकत्रित कर दिया। उन्होनें एक प्राचीन वार्ता की (भावप्रकाश वारी) पुस्तक अन्वेषण कर प्राप्त की जिसका लेखन सं. १७५२ है। जहां तक ध्यान है इस से प्राचीन वार्ता की (भावप्रकाश वारी) पुस्तक अभी तक प्राप्त नहीं हुई।

चौरासी वैष्णवों की वार्ता पर श्री हरिरायजीनें भाव प्रकाश नाम से टिप्पण किया है जिसमें उसके रहस्य का उद्घाटन किया गया है, इस प्रकार वार्ता के वृत्त की पुष्टि श्रीहरिरायजी जैसे विद्वान महानुभाव के लेख द्वारा होती है।

द्वारकादासजी ने उस के साथ एक काम यह भी किया कि उन सब पर गुजराती भाषा में एक अपना स्पष्टीकरण भी लगाया और चरित्र नायकों की ऐतिहासिक जीवनी पर भी प्रकाश डालने का श्रम किया। कहने का तात्पर्य यह कि वार्ता का वास्तविक रहस्य प्रकाशित करनेका आयोजन किया गया और उस में यथा संभव त्रिविध भाव भरने की चेष्टा की गई है।

इस प्रकार छपाने योग्य तैयार पुस्तक और उसके लिये प्राप्त अर्थ साहाय्य पा कर विद्याविभाग को इस के लिये कुछ भी चेष्टा न करनी पडी, उलटे उक्त महाशयने हमे एसे ग्रन्थ के प्रकाशन का

सौभाग्य सहज ही सौंप दिया। और यह ग्रन्थ श्रीनाथदेव कृत 'संस्कृत वार्ता मणि माला' नामक ग्रन्थ के आवश्यक भाग के सहित विद्या-विभाग से द्वा० ग्र० माला के त्रयोदश पुष्प के रूप में निकाला जा रहा है। श्रीनाथदेव कृत उक्त वार्ता मणिमाला, अन्यत्र अभी तक तो अप्राप्य है उस की एक ही कापी विद्याविभागान्तर्गत सरस्वती भंडार में उपलब्ध हुई है।

श्रीनाथदेव का परिचय विशेषतया उपलब्ध नहिं होता. उन्होने इस ग्रन्थ के अन्त में इस प्रकार अपना उल्लेख किया है।

"इति श्रीशाचार्य वर्य पद भक्ति मता मया
कृतया वैष्णव कथा मालयात्मा प्रसीदतु ॥२५॥"

"इति श्रीविष्णुस्वामि मतानुवर्ति श्रीवल्लभ पद पद्म परा-गानुरागि महाशय मठेश विप्र श्रीनाथदेवेश संस्कृतायाँ वैष्णव वार्ता मालायाँ चतुरशीति वार्ता मणिकोत्तरं ससुमेरु पंचविंशतिमो मणिः सम्पूर्णोयं वैष्णव वार्ता माला पूवार्द्धे श्रीमतीत उत्तरार्द्धेपिसा" २०१
३७०७। ३

पुस्तक में लेखन संवत् नहीं दिया है। अन्तिम अंक पद्यांक है जिससे ज्ञात होता है कि इसमें लगभग तीन हजार सातसो सात श्लोक अनुष्टुम् है।

इन्होने अपनेको मठेश शब्दसे सम्बोधित किया है यदि मठेश और मठपति एकही पर्यायवाची शब्द है तो कहना पडेगा कि यह तैलंग ब्राह्मण और मठपति जयगोपाल भट्टके वंशाज थे।

जयगोपाल भट्टने अपने रचित तैत्तरीयोपनिषद् भाष्यमें अपना परिचय इस प्रकार दिया है:–प्रथम द्वितीय श्लोकोंमे श्रीवल्लभाचार्य और श्रीगुसांईजी को प्रणाम कर आगे श्लोक में वह लिखते है:–

श्रीमद्गोकुलनाथान् श्रीमत्कल्याणराय गुरुचरणान्
नाम निवेदन दातृन् प्रणमामि मुहुर्मुहुः प्रेम्णा ॥३॥
तैलङ्ग यज्य चिन्तामणि तनयो मठपतित्व विख्यातः
जयगोपाल उपनिषद् भाष्यं वितनोतितैत्तरीयायाम् ॥४॥

इससे ज्ञात होता है कि मठपति जयगोपाल भट्ट तैलंग ब्राह्मण चिन्तामणि भट्ट के पुत्र और श्रीगोकुलनाथजी (च. पुत्र) तथा श्रीकल्याणरायजी के शिष्य थे, अतः उनके सम सामयिक थे।

इनके मठपति होनेसे श्रीनाथदेव के विषयमें एसा अनुमान होता है कि यह इन्ही के वंशज हों।

अन्य किसी साधनके अभाव में इनके विषय में इतनाही कहकर हमें चुप रहना पडता है×

× શ્રીનાથભટ્ટના સંબંધી મારૂં આ અનુમાન ચોક્કસ થયું છે કેઃ–
તેઓનો (ચીમનલાલ શાસ્ત્રીના કથનાનુસાર) કાવ્ય રચના કાલ સં. ૧૭૨૪નો છે. અને તેઓએ સંસ્કૃત મણીમાલા ૧૭૨૭ લગભગ રચેલી છે. નહિ તો શ્રીહરિરાયજીકૃત "ભાવપ્રકાશ"ની કંઈક આછી રૂપરેખા તેઓ અવસ્ય તેમની મણીમાલામાં લેત. શ્રીહરિરાયજીનો ભાવપ્રકાશ સં. ૧૭૨૯ પછી અને સં ૧૭૫૦ પહેલાં લખાયેલો છે. કારણ કે આ ભાવપ્રકાશનું નામ સં. ૧૭૨૯માં રચાયલા "સંપ્રદાયક કલ્પદ્રુમ"માં સ્પષ્ટતયા પ્રાપ્ત થતું નથી. આ શ્રીનાથભટ્ટે "દુષણોદ્ધાર" "જલભેદ વિવૃત્તી" આદિ અનેક ગ્રન્થોની રચના કરેલી છે. તે તેમના ગ્રન્થોની ઈત્રિશ્રી થી સમજાય છે. શ્રીનાથભટ્ટે વાર્તામાં પોતાની સંસ્કૃત

कार्य की अधिकता के भयसे और उपयोगिता की दृष्टि से सम्प्रति वार्ता रहस्य का यह प्रथम भाग ही प्रकाशित किया जा रहा है। यदि इसके द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त होगा तो अगले भाग भी अनुकूल संयोग पा कर प्रकाशित किये जावेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिये जिन धनीमानी महानुभावों ने अर्थ साहाय्य दे कर इस पुण्यकार्य में हाथ बटाया है उनके नाम सम्पादक के विवरण में दिये जा रहे हैं। जिन के अर्थ साहाय्य से कुछ कापियाँ वैष्णवो में विनामूल्य वितीर्ण की जावेगी इसके साथ हम इस बात को यहां प्रकाशित कर देना अपना धर्म समझते है कि **प्रस्तुत पुस्तक की विक्री से जो लाभ होगा वह इस के अग्रिम भागो और साम्प्रदायिक अप्रसिद्ध ग्रन्थो के प्रकाशन में ही लगाया जायगा।**

इस बात के प्रकट करने में मुझे हिचकिचाहट पैदा हो रही है कि हम जैसा चाहिये हिन्दी वार्ता को शुद्ध रूप में प्रकाशित न

વાણીને સાહિત્યિક અલંકારોથી બહુજ દુર રાખી એક સાદી સરળ અને કથાનક કરી છે. એ, તેમનું વિશેષ પાંડિત્ય સૂચન કરે છે. જેવો વિષય તેવી જ ભાષા હોય તો તે દીપી ઉઠે, તદનુસાર વાર્તાની ભાષા બહુ જ સરળ રાખી છે.

શાસ્ત્રીજીના કથનાનુસાર તેઓ અવશ્ય જયગોપાલ મઠપતિના વંશજ અથવા કુટુંબી હોવા જોઇએ. કારણકે જયગોપાલનો સમય શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીકલ્યાણરાયજીના સમકાલીન ઉપરોક્ત શ્લોકથી સિદ્ધ થાય છે. અને શ્રીનાથદેવનો જન્મ સમય લગભગ ૧૬૮૦નો પ્રાપ્ત થાય છે. એટલે અટકના અને સમયના સંબંધથી એમ અનુમાન સિદ્ધ થાય છે કે હો ન હો તેઓ મઠપતિના વંશજ જ હોવા જોઈએ.

"સંપાદક"

कर सके। इसका कारण कांकरोली के इतिहास के लिखने और छपा-नेकी मेरी व्यस्तता ही है। उक्त ग्रन्थ में जुटे रहने के कारण सच कहा जाय तो मुझे सावधानी से प्रेस कापी देखनेका पुरा अवसर भी नहीं मिला, प्रूफ संशोधनकी बात तो दूर।

इधर प्रस्तुत, और उक्त ग्रन्थ का शीघ्र प्रकाशित करना आवश्यक था अतः मैंने अपना काम अपनें जिम्मे रखकर प्रस्तुत ग्रन्थका भार श्रीद्वारकादासजीको सौंपा और उसका उनको सम्पादक बना दिया। अतः उसकी उत्तमता का श्रेय उनको और त्रुटियों, न्यूनताओं, असावधानियों का दोष मुझ पर है। फिर भी इतना कहना पडेगा कि उक्त महानुभाव इस के लिये सतत सचेष्ट रहे हैं कि मेरे उपर किसी प्रकार का दोष न आने पाये। उनकी इस सहृदयता, कार्यतत्परता एवं सौशील्य पर एक डाह पैदा होती है।

सब से बडी असावधानी, और गुजराती कम्पोजीटरो के कारण पुस्तक में त्रुटियाँ रह गई होगी फिर भी हम कहेंगे कि हिन्दी के कम्पोज करनेवालों ने अपनी दक्षता दिखलाई है जिन्हें एसा अवसर कदाचित् ही उपलब्ध होता है। पाठक उन त्रुटियों के लिये क्षमा करें और उन्हें यथास्थान सुधार ले। प्रस्तुत पुस्तक के मुद्रक महोदय के भी हम आभारी है कि उन्होने यह काम शीघ्रता और सुन्दरता के साथ पूरा किया।

सम्पादक प्रति तो हमे धन्यवाद देनेकी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती, क्योंकि उन्होने जिस निष्काम कर्मयोग के भक्तिके ऊंचे सिद्धान्त से काम किया है वह आदरणीय और अनुकरणीय है। हमारी

दृढ धारणा है कि यदि उक्त मित्र महोदय के हृदयमें उद्विग्नता उत्पन्न करने का अवसर न दिया जाय तो वे साम्प्रदायिक साहित्य के प्रकाशन में बहुत कुछ कार्य कर सकते है, चाहिये केवल गुणग्राही।

विद्याविभाग के अध्यक्ष गो. श्रीव्रजभूषणलालजी महाराज (शु. सं. तृ. पीठाधीश्वर) और उपाध्यक्ष उनके अनुज उत्साहशील गो. श्री विट्ठलनाथजी महाराज एसे ही महानुभाव है. जिनके आश्रय में रहकर हमारे मित्र महोदयनें साम्प्रदायिक गंभीर ज्ञान प्राप्त करनेमें बहुत कुछ अग्रेसरता दिखलाई है। उनके विवरण से उनके परिज्ञान, खोज और गंभीरता का पता लगेगा हमे उसे यहाँ प्रकट करनेकी आवश्यकता नहीं है।

उनके साथ इस कार्य में अथवा यों कहिये मेरे कार्य में अभिन्नभावसे परिश्रम करनेवाले मित्रद्वय पं. पुरुषोत्तम शास्त्रीजी (शेहरा निवासी सम्प्रति वीसनगर) तथा सरस्वती भंडार विद्याविभाग के व्यवस्थापक पं. लक्ष्मीनारायण शास्त्रीजी का उपकार विस्मृत नहीं किया जा सकता। साम्प्रदायिक प्रसिद्ध पत्रकार पं. वसन्तराम शास्त्रीजी (अहमदाबाद) का सौजन्य भी भूला नहीं जा सकता जिन्होंने सम्पादक के लिये पुस्तक प्रकाशनमें प्रेस आदिकी सभी प्रकारकी सुविधाए सरल कर दी थी।

भगवान करुणा वरुणालय श्री हरि प्रभु श्री द्वारकाधीश के चरणकमल स्मरण करते हुए हम अपने वक्तव्य से विराम लेते है. जिनके अनुग्रह बलसे हमें आगे भी इस प्रकारके पुण्य कार्यों के आयोजन का सौभाग्य अधिगत होगा। ॐ शान्तिः ३ ॥

सं. १९९६
प्र. श्रावण शु. १२/९६
ता. २८-७-३९

विधेय-
प्रकाशक-**पो. कण्ठमणि शास्त्री.**
संचालक विद्याविभाग
कांकरोली.

गो० श्री व्रज भूषणात्मज

अर्पण-पत्रिका.

श्रीवल्लभ विठलेश गुरु कृष्णरूप श्रीनाथ।
द्वारकेश अठ सखनि नमि पर्यो प्रेम के पाथ॥ १

गोपीजन अनुभव प्रथम कियौ कृष्ण के साथ।
पाछें दमला आदि जिन धर्यो चरन में माथ॥ २

अपने जन हित कारने वल्लभ भूतल आय।
सेवा सुख सरसाय पुनि ता हित कुल प्रगटाय॥ ३

मेरे तो **गिरिवरधरन गोपाल** हि इक नाम।
लगन लगाई छिप गए चितवन आठो जाम॥ ४

श्रीगिरिधर गोपालजू राखो चरनन पास।
दीन पुकारत करि दया जानि आपुनो दास॥ ५

लाल ही लाल पुकारके प्रान भये बेहाल।
अब तो प्यारे दोरिके आन दिखावो चाल॥ ६

मंद हसन चितवन तनक आज्ञा देत हुँकार।
नेन भ्रकुटि कटि किंकनी मन्मथ मोहन धार॥ ७

हेमंते प्रथमे मासे प्रथम दिना के अंत।
वरद देन सुकुमारिका छोडि छिपे कित कंत॥ ८

नाथ रावरी हित कथा कहँ लगि वरनों अंत।
छिनु छिनु में पोषत रहे ज्यों मृगशीर्ष हिमंत॥ ९

श्रीयमुना गिरिराजजू व्रजमंडल सब ठोर।
अपनो जन मो जानिके रखि लेहो निज ओर॥ १०

लालन आओ हरखके सेवक अपुनो जान।
हृदय करो सीतल प्रभु बिसरो नहिं छनमान॥ ११

मँजु कछुक चिंतन कीयो अपने मन के हेत।
गिरिधरजू अपनाइयो जानि प्रेम संकेत॥ १२

अवधीके दिन जात हे जो नहिं पूरो आस।
प्रान पखेरू उडनको आतुर आवन पास॥ १३

"तिहारो"

મૂલ્ય સંબંધી કંઈક



આ પુસ્તક પ્રકાશન કાર્યમાં આજ સુધી લગભગ ૬૨૫) જેટલી રકમ વૈ. સદ્ગૃહસ્થો તરફની નિરપેક્ષ ભાવથી પ્રાપ્ત થઈ છે. તદર્થ અમોએ **પ્રત ૧૦૦૦ વિના મૂલ્યે** નિમ્નોક્ત સજ્જનોને આપવાનો નિશ્ચય કર્યો છેઃ—

૧ વસંત પંચમી પહેલાં જેઓનાં નામ નોંધાઈ ગયાં છે તેમને,

૨ કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગના ઉંચા દરજાની પરીક્ષામાં ઉત્તીર્ણ થનાર બાલકોને,

૩ ભગવદ્ મંડલીઓ, પાઠશાળાઓ, અને નિષ્કંચન તેમજ વિરક્ત ભગવદીયો ને,

૪ ગોસ્વામી બાલકો અને ખાસ સહાયક વિદ્વાનોને,

બાકીની એક હજાર પ્રત રૂ. ૧) થી આપવામાં આવશે. (પોસ્ટેજ અલગ) તેનાથી જે દ્રવ્ય પ્રાપ્તિ થશે તે દ્વારા બાકીના વાર્તાના ભાગો પ્રકાશિત થશે.

"શુદ્ધાદ્વૈત" ના ગ્રાહકોને પોણી કિંમતે આ ભાગ આપવામાં આવશે.

આ ભાગ અને બીજા ભાગો વિના મૂલ્યથી કોને આપવા અથવા કોને ન આપવા તે સમ્પાદકની ઇચ્છા ઉપર જ છે.

વ્યવસ્થાપક, "વાર્તા–સાહિત્ય"

विषय सूची

संस्कृत वार्ता मणिमाला

વાર્તા સંબંધી સાદી સમજ

અમોએ આ વાર્તાઓ (૮૪ વૈષ્ણવોની) સંવત ૧૬૯૭ ના ચૈત્ર સુદિ ૫ મે શ્રીગોકુલ મધ્યે લખી ચુકાયલા પુસ્તકના આધારે છપાવી છે. આનાથી વિશેષ પ્રાચીન ગ્રન્થ હજુ સુધી અમને મળ્યો નથી. આ વાર્તાના ગ્રન્થ સાથે અમોએ અન્ય પ્રાચીન કેટલીક વાર્તાની પ્રતો પણ મેળવી છે. જ્યાં જ્યાં પાઠાંતર પ્રાપ્ત થયું છે ત્યાં ત્યાં ફૂટનોટ આપી છે.

આ વાર્તાઓ શ્રીગોકુલનાથજીએ મૂળ વ્રજભાષામાંજ રચેલી છે અને તે જેમની તેમ વ્રજભાષામાંજ અમે અહીં આપી છે. વાર્તાના ગાંભીર્યાદિથી મુગ્ધ થઇને શ્રીયુત મહેશ મહાનુભાવ શ્રીનાથભટ્ટે (दूषणोद्धार આદિના કર્તા) વિદ્વાનોના મનોરંજનાર્થ તે વાર્તાઓને સંસ્કૃતમાં શ્લોકબદ્ધ કરી છે.

આ વાર્તાઓનો સંસ્કૃત અનુવાદ તે તેની મહત્તાના દર્પણરૂપ છે. ફક્ત ચોર્યાશી વાર્તાના સંસ્કૃત અનુવાદરૂપે શ્રીનાથભટ્ટે લગભગ ૩૭૦૦ થી પણ વધુ શ્લોકો યોજ્યા છે અને તે "મણિકા" રૂપે કાંકરોલી "વિદ્યા-વિભાગ" માં વિદ્યમાન છે. આમાં કેટલાક પ્રસંગોમાં વિશેષ જાણવાનું મળતું હોવાથીજ તે ક્રમશઃ અમે દરેક વાર્તા સાથે આપેલા છે.

આ વાર્તાઓમાં કેટલું બધું સાંપ્રદાયિક અગાધ રહસ્ય સમાયલું છે તે જણાવવાને અર્થે શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ દરેક વાર્તાના દરેક પ્રસંગ ઉપર મધ્યમભાષાથી* ભાવનો પ્રકાશ કર્યો છે અને તે પણ વ્રજભાષામાં ગદ્યરૂપેજ.

આ બન્ને મહાનુભાવ વિદ્વાનોના વાર્તા ઉપરના અથાગ પ્રેમ અને પરિશ્રમથી સાધારણ બુદ્ધિનો મનુષ્ય પણ સમજી શકે છે કે સાંપ્રદાયિક તમામ ગ્રન્થોમાં વાર્તાઓ કેટલી ઉપયોગી હોવી જોઈએ?

આ ઉપર્યુક્ત કથિત સાહિત્ય ઉપરાંત અમોએ સાંપ્રદાયિક આચાર્યો અને વિદ્વાનોના સહકારથી અન્ય પણ કેટલોક મહત્ત્વપૂર્ણ

---

* ન અત્યંત સ્પષ્ટ તેમજ ન અત્યંત ગૂઢ એવી ભાષામાં રહસ્યનું ઉદ્ઘાટન કર્યું છે. મહાકવિ નંદદાસજીના શબ્દોમાં કહીએ તો:-

"नाहिन उघरे गूढ न एसे मरहट देश वधू कुच जेसें ।"

સંગ્રહ આ પુસ્તકમાં કરેલો છે. જેવો કેઃ–પ્રાચીન ઐતિહાસિક ગ્રંથોનું અત્યંત સંશોધન કરીને આ વાર્તાઓમાં રહેલો અને તેને અપેક્ષિત અન્ય ઇતિહાસ પૃથક્ રૂપે આપેલો છે. તેમજ શ્રીહરિરાયજીના સંસ્કૃત ગ્રન્થોને અહીં આપેલા શ્રીહરિરાયજીના ભાવ પ્રકાશ સાથે જ્યાં જ્યાં સંશય થાય ત્યાં ત્યાં સરખાવી તેની પ્રામાણિકતા સિદ્ધ કરી છે. જેથી લહીયાઓ પ્રત્યેનો અન્યાયપૂર્ણ અસંબદ્ધ પ્રલાપ ઘણા અંશમાં દૂર થાય છે. અને વાર્તાઓમાં ઉત્પન્ન થતા સંદેહોના નિવારણાર્થ શ્રીઆચાર્યજીના, શ્રીગુસાંઇજીના, તેમજ અન્ય ગ્રન્થોનાં પ્રમાણો આપેલાં છે. વળી અમોએ આ વાર્તાઓનું ઈતિહાસ, તત્ત્વ અને રસ એમ ત્રણે દૃષ્ટિથી યથાધિકાર આધુનિક અલ્પબુદ્ધિ વાંચકોને પણ ઉપયોગી થઇ પડે તે હેતુને ખાસ લક્ષ્યમાં રાખી પરમ્પરાગત પ્રાપ્ત સંકલન કર્યું છે. જેથી દુરાગ્રહથી રહિત અન્ય કોઈ પણ વ્યક્તિ વાર્તા ઉપર આક્ષેપ કરવાની ધૃષ્ટતા નહિજ કરે.

"વાર્તા" અને "ભાવપ્રકાશ" બન્ને ક્રમશઃ શ્રીગોકુલનાથજી તથા શ્રીહરિરાયજી કૃત છે તે નિર્વિવાદ છે. તેના પ્રમાણરૂપે તેની અતિ વિખ્યાતિજ સંતોષજનક છે. તો પણ અન્ય પ્રમાણો અહિં આપીએ છીએઃ—

એક તો એ પ્રમાણ કે ઉપર્યુક્ત બન્ને ગ્રન્થોની સેંકડો લિખિત પ્રતિઓ અતિ પ્રાચીન પ્રાપ્ત થાય છે અને તેમાં "શ્રીગોકુલનાથજી-રચિત" "શ્રીહરિરાયજીકૃત" એવા લેખો પ્રાપ્ત થાય છે.

અમે અત્રે આપેલા શ્રીહરિરાયજીના ભાવપ્રકાશ નાં પ્રાચીન લિખિત પુસ્તકો ઘણી જગ્યાએ અમારા જોવામાં આવ્યાં છે જેવાં કે પાટણ, અમદાવાદ, ડભોઈ, ગોકુળ, નાથદ્વારા, કાંકરોલી, જતીપુરા ઇત્યાદિ સ્થળોમાં.

અમારી પાસે જે પ્રત છે, તે સં. ૧૭૫૨ માં લખાયલી છે અને તે શ્રીહરિરાયજીના સમયનીજ છે. કારણ કે શ્રીહરિરાયજીની ભૂતલ સ્થિતિ સં. ૧૭૭૨ સુધીની પ્રસિદ્ધ છે. અતઃ આ પ્રત અત્યંત પ્રામાણિક ગણી શકાય. આ ગ્રન્થ અમને પરમ ભ. મહાનુભાવ

ગોવિંદદાસ (શ્રીનાથદ્વારાવાળા) બાવા પાસેનો પ. ભ. જદુનાથદાસ દ્વારા પ્રાપ્ત થયેલો છે. તેમજ આ ગ્રન્થને નિત્યલીલાસ્થ તિલકાયિત શ્રીગોવર્ધનલાલજીએ પણ અવલોકીને પુષ્ટ કર્યો છે. જેથી આ ગ્રન્થની પ્રમાણિક્તા વિષે વધુ કહેવું નિરર્થક છે. આવીજ એક પ્રતિ સં. ૧૭૫૨ ની લખાયલી શ્રીગોકુલના પરમ ભગવદીય શ્રીયુત મુખીયાજી ગૌરીલાલજી પાસે પણ અમે જોઈ છે. તેમાં એક વિશેષતા એ છે કે દરેક પ્રસંગોનાં સુંદર ચિત્રોનો પણ તે ગ્રન્થમાં સમાવેશ કરેલો છે. પ્રત દર્શનીય છે.

આ "ભાવપ્રકાશ"ની લેખનશૈલી શ્રીહરિરાયજીની સંસ્કૃત ગ્રંથોની રચના શૈલીને મળતી જ આવે છે. શ્રીહરિરાયજી ગહન વિષયો સંબંધી ગ્રન્થો રચવામાં પ્રથમ પૂર્વપક્ષ કરીને પછી સ્વયં તેનો નિરાસ કરે છે. (જુઓ શ્રીહરિ. કૃત નિષ્કામ લીલા આદિ ગ્રન્થો) તેમ અહીં પણ ઘણી જગાએ પૂર્વપક્ષ (સંદેહ) સ્વયં કરી પછી તેનું સમાધાન પણ આપ સ્વતઃ જ કરે છે.

આ શૈલી પણ આપના "ભાવપ્રકાશ" માટે એક સબલ પ્રમાણ છે. અને ત્રીજું પ્રમાણ ઉપરોક્ત વલ્લભજી મહારાજનું ધોળ છે. ચોથું પ્રમાણ ભાવપ્રકાશ સાથે શ્રીહરિ૦ના સંસ્કૃત ગ્રંથોની એકવાકયતા છે. (જુઓ દામો૦હર૦ની વાર્તા પાન ૫૨)

"વાર્તા" સંબંધી અન્ય પ્રમાણ "સંપ્રદાયકલ્પદ્રુમ" જે સં. ૧૭૨૯માં શ્રીહરિરાયજીના શિષ્ય વિઠ્ઠલનાથ ભટ્ટે રચેલો છે, તેમાં આ પ્રમાણે છેઃ—

"वल्लभविट्ठल वारता, प्रगट कौन नृपमान" ॥ ३० ॥ (पान १४१).

સૃષ્ટિના પ્રારંભથી જ દૈવી અને આસુરી એમ બે પ્રકારના જીવોની ઉત્પત્તિ જોવામાં આવે છે. એટલે ઉત્તમોત્તમ દૈવી સંપત્તિવાળી વસ્તુઓને આસુરી દુરાગ્રહી પુરૂષો હીન બતાવે તો તે ઉપેક્ષણીય જ છે. પરંતુ દેખાતા દૈવી પુરૂષોજ આસુરાવેશી થઇને પોતાની દૈવી સંપત્તિને અસભ્ય ભાષાથી સર્વ સમક્ષ તિરસ્કાર કરે ત્યારે તો તે કોઈ પણ સહૃદય પુરૂષને અસહ્ય લાગ્યા વિના રહે નહિ જ.

એવાંજ અનેક કારણોને લઈને અમોએ સર્વ મહાનુભાવોના સહકારથી આ કાર્ય ઉઠાવ્યું છે કે સાંપ્રદાયિક વ્રજભાષાનું ગદ્યપદ્યાત્મક સાહિત્ય પ્રાચીન કાળની શૈલીથી લખાયેલું હોવા છતાં તે આજ પણ ધાર્મિક અને ઐતિહાસિક ક્ષેત્રોમાં કેટલું બધું ઉપયોગી તેમજ પ્રમાણિક છે તે અન્ય તટસ્થ વિદ્વાનોના અભિપ્રાય સાથે જનસમૂહ સમક્ષ સુરક્ષિત રૂપથી મુકવું

આ કાર્યમાં દ્રવ્યની અત્યંત અપેક્ષા રહેલી છે. માટે સંપ્રદાય અને શ્રીઆચાર્યચરણમાં મમતા રાખવાવાળા સદ્‌ગૃહસ્થો, શ્રીમદ્‌-આચાર્યચરણના જીવનચરિત્રરૂપ આ ગદ્યપદ્યાત્મક ભાષાસાહિત્યની નિષ્કલંકતા પ્રકટ કરી, બાહ્યાભ્યંતર પ્રહારકોનો સંયુક્ત સામનો કરવા કટિબદ્ધ થાવ; અને યથાશક્તિ તનુજા વિત્તજા સેવા ઉઠાવો એ નમ્ર પ્રાર્થના કરી હું અહિં વિરમું છું.

વાર્તામાં ત્રણ જન્મ કહ્યા છે તે આ પ્રમાણે સમજવા:—

ત્રણ જન્મની સમજ.

શરણે આવ્યા પહેલાંની જે સ્થિતિ તે એક જન્મ. દૃષ્ટાંતરૂપે ગાયત્રી પ્રાપ્ત કર્યા વિનાનો સંસ્કારરહિત એક બ્રાહ્મણનો બાલક. આ જન્મ ભૌતિક જન્મ તરીકે ઓળખાય છે—

શરણે આવ્યા પછીની જે સ્થિતિ તે બીજો જન્મ. અને તે આધ્યાત્મિક જન્મ તરીકે ઓળખાય છે. કારણ કે તેમાં ભાવનાનું સ્વરૂપ (વૈષ્ણવત્વ) બિરાજે છે. દૃષ્ટાંતરૂપે ગાયત્રીમંત્રને પ્રાપ્ત થયેલો બ્રાહ્મણ, તેમાં બ્રહ્મત્વપણાની સ્થિતિ રહે છે. ત્રીજો જન્મ મૂલભૂત જે આત્મારૂપ છે અને તેજ ભાવરૂપ હોવાથી તે આધિદૈવિકરૂપ છે. આ પ્રકારે ત્રણ સ્વરૂપ શ્રીહરિરાયજીએ કહેલાં છે. તે સમજવા પુરતુંજ અમે વાર્તામાં કેટલીક જગે તે સ્પષ્ટરૂપે આપ્યું છે.

આ આધિદૈવિક ભાવરૂપ આત્માની સત્તાને અનુસારજ આધ્યાત્મિક અને આધિભૌતિકમાં ક્રિયાઓ આદિની સ્થિતિ રહેલી છે. (વિશેષ જુઓ વાર્તા–રહસ્ય પાન ૭.)

"સમ્પાદક"

॥ શ્રીહરિ: ॥

—:ઉપકાર-સ્મરણ:—

કૃપાપીયૂષપારાવાર શ્રીમદ્ ગોસ્વામી શ્રી ૧૦૮ તૃતીય પીઠાધીશ્વર **શ્રીવ્રજભૂષણલાલજી મહારાજ** અને આપશ્રીના અનુજ ગોસ્વામી શ્રી ૧૦૮ **શ્રીવિઠ્ઠલનાથજી મહારાજશ્રીનો** ઉપકાર, આ વાર્તા-સાહિત્યના નૂતન ઐતિહાસિક પ્રકાશન કાર્યથી, સમગ્ર વૈષ્ણવ સૃષ્ટિમાં અને ઇતિહાસજ્ઞોમાં સદાય અવિસ્મરણીય રૂપે રહેશે જ.

આપશ્રીની હાર્દિક કૃપા અને સર્વ પ્રકારની સહાયતાથી જ આ કાર્ય સફલ થયું છે અને આગલ ઉપર પણ થશે જ, એ કહ્યા વિના રહી શકાતું નથી.

સમગ્ર સાહિત્ય ક્ષેત્રમાં, આપશ્રીની જ કૃપાથી સિદ્ધ થયેલ આ વાર્તાસાહિત્યના નૂતન ઐતિહાસિક પ્રકાશન કાર્યદ્વારા ઇતિહાસજ્ઞો, સાંપ્રદાયિક વિદ્વાનો અને ભાવુકોમાં પણ પુષ્ટિ સંપ્રદાયના ભાષા-સાહિત્ય પ્રત્યે પુન: શ્રદ્ધા નવપલ્લવિત થઈ છે, તે, આ પુસ્તકોમાં આવેલા અભિપ્રાયોથી સર્વ કોઈ જાણી શકે છે.

આપ શ્રીમાન શ્રીસુબોધિનીજી આદિ સંસ્કૃત સાહિત્યના પ્રખર જ્ઞાતા હોવા ઉપરાંત સાંપ્રદાયિક ભાષાસાહિત્ય તરફ પણ આપશ્રીને પૂર્ણ પ્રેમ છે. આપશ્રીનું તો એટલે સુધી મન્તવ્ય છે કે આજકાલ ભાષાસાહિત્યથી જ સંપ્રદાયનો પ્રચાર સારી રીતે થઈ શકે છે, કેવલ સંસ્કૃત સાહિત્યથી નહિ જ.

આપશ્રીને કીર્તન ઉપર તો એટલી બધી પ્રીતિ છે કે આપશ્રી સ્વયં પ્રાચીન પુસ્તકોના આધારે કીર્તનોનું યથાર્થ સંશોધન કરે છે. (જે હવે પછી પુસ્તકાકાર રૂપે બહાર પાડવામાં આવશે) આપશ્રી અન્યની માફક પ્રસિદ્ધિના ઉપાસક નથી. આપશ્રી પ્રાચીન સેવા-

પ્રણાલી અને સંપ્રદાયની પ્રાચીન પરિપાટીના સંરક્ષક છે. તેમજ આપશ્રીની બુદ્ધિ એટલી તીવ્ર છે કે દ્વિવિધ સાહિત્યમાં રહેલા વિરોધાભાસનો, સંપ્રદાયના સિદ્ધાન્તો અને વાર્તાના દૃષ્ટાંતો દ્વારા સહેજે પરિહાર કરી બન્ને પ્રકારના સાહિત્યના આશયને શુદ્ધ રૂપમાં સમજાવે છે. આપશ્રી ઇતિહાસના પ્રખર જ્ઞાતા હોવાથી અનેક યુક્તિઓ દ્વારા વાર્તા,કીર્તનો, પરંપરા પ્રાપ્ત પ્રણાલી, અને રીતભાત આદિની એકવાક્યતા કરી સંપ્રદાયના ભાષાસાહિત્યની ઐતિહાસિક્તા બહુજ સુંદર પ્રકારે સિદ્ધ કરી આપે છે.

આપશ્રી તો એવું આશ્ચર્ય પ્રકટ કરે છે કે વાર્તાઓમાં સ્પષ્ટ રૂપે રહેલો ઇતિહાસ અને સિદ્ધાન્ત પણ વિરોધકર્તાઓને કેમ દેખાતો નથી? વાર્તામાં એવા અનેક પ્રસંગોનો ઉલ્લેખ છે કે જેનું ઐતિહાસિક અસ્તિત્વ આજ પણ વિદ્યમાન છે; દૃષ્ટાંત રૂપેઃ—બેઠકો, કીર્તનો, વસ્તુઓ, વંશજો, પ્રચલિત ગાથાઓ, રીતભાત, હક્ક, જાગીરો, અને 'પંચમહાલ' આદિ નામોની એંધાણી. વાર્તાની સત્યતામાં આટલા બધા સર્વમાન્ય પુરાવાઓનું આજ પણ અસ્તિત્વ હોવા છતાં વાર્તા ઉપર આક્ષેપ કરનારાઓને વાર્તામાં અશ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે તે ખરેખર આશ્ચર્યજનક છે. તેથી તેઓની બુદ્ધિ કેવા પ્રકારની હશે? તે સમજાતું નથીજ.

આપશ્રીએ આ કાર્યમાં દ્રવ્યાદિ અનેક પ્રકારની ગુપ્ત સહાયતાથી જે આગલ પડતો ભાગ લઈ ભાષાસાહિત્યને ઉત્તેજન આપ્યું છે તે માટે હૂં સમગ્ર વૈષ્ણવ સૃષ્ટિ તરફથી આપનો અંતઃકરણ પૂર્વક ઉપકાર માનું છું.

આપશ્રી તરફથી અનેક વખતે આ કાર્યના અંગે કાંકરોલીથી અમદાવાદ આદિ સ્થળોએ જવામાં રેલ્વેભાડા આદિનું ખર્ચ પોતાના પ્રાઇવેટ ખર્ચમાંથી આપી આ કાર્યમાં પોતાનો અદ્વિતીય ઉત્સાહ છે, એમ સિદ્ધ કરી બતાવ્યું છે. તે માટે સર્વ ભાષાસાહિત્યના પ્રેમીયો આપશ્રીના પૂર્ણ રૂણી છે. અસ્તુ.

કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગાધ્યક્ષ અને ઉપાધ્યક્ષનો ઉપકાર સ્મરણ ક્ર્યા બાદ આ કાર્યને નવચેતન અર્પનાર, ભાષાસાહિત્યના પૂર્ણપ્રેમી

અને પક્ષપાતી મારા પરમમિત્ર કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગના સંચાલક શ્રીયુત **કણ્ઠમણિજીનો** ઉપકાર તો અગ્રસ્થાને જ રહેશે.

જો સાચું કહીએ તો મારા આ વાર્તા–સાહિત્ય પ્રકાશનના વિચાર ને સમ્પૂર્ણ ટેકો આપી તેઓએ જ આ કાર્યને નવચેતન આપ્યું છે. તેમાં જરાય શંકા નથી. વિદ્યાવિભાગાન્તર્ગત સરસ્વતી ભંડારમાં સંગ્રહિત હસ્તલિખિત ૬૦૦૦ ઉપરાંત પ્રાચીન પુસ્તકોના અવલોકનનો સુઅવસર તેઓએ શ્રીમાનોની આજ્ઞાથી મને આપ્યો. તેમજ વિદ્યાવિભાગના નામથી દ્રવ્ય પ્રાપ્તિ અર્થે રસીદબુક પણ આપી.આથી આ કાર્ય ત્વરીત અને સુગમ થયું. તદુપરાંત તેઓએ સંશોધન આદિ અનેક પ્રકારથી મને આ કાર્યમાં નિઃસ્વાર્થ રૂપે મદદ કરી. જો કે એમનું સ્વાસ્થ્ય બીલકુલ અસ્વસ્થ હતું તેમજ વિદ્યાવિભાગના કાર્યનો બોજો પણ તેમના માથે અત્યંત હતો છતાં પોતાના અમૂલ્ય સમયનો ભોગ આપી આ કામમાં જે પૂર્ણ ઉત્સાહ દેખાડચો છે તેને માટે હું તેમનો ઉપકાર કદી ભુલી શકું તેમ નથી. અસ્તુ.

પુરોહિત પંડિતપ્રવર શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી **લક્ષ્મીનારાયણજી** (સરસ્વતી ભંડારના વ્યવસ્થાપક)નો ઉપકાર, હું તેમજ સંસ્કૃત સાહિત્યના શોખીનો કદી ભૂલશે નહિજ. તેઓએ શ્રીનાથદેવ કૃત સંસ્કૃત વાર્તામાલાને શુદ્ધ કરવામાં બહુજ પરિશ્રમ લીધો છે. પ્રસ્તુત (ઉપસ્થિત) સંસ્કૃત વાર્તામાલાની એકજ પ્રતિ અમને પ્રાપ્ત હોવાથી અને તે પણ અશુદ્ધ હોવાથી તેના સંશોધનનું કાર્ય અત્યંત મુશ્કેલ હતું. તે નિર્વિવાદ જ છે. તે કાર્ય પંડિતજીએ અનેક પ્રતિકૂળ સંયોગોમાં પણ પૂર્ણ કર્યું અને સંસ્કૃત સાહિત્યના શોખીનોના હાથમાં પ્રસ્તુત વાર્તામાળા સુંદરતાથી પરિપૂર્ણ બનાવી અર્પી તે બદલ તેમનો ઉપકાર અવિસ્મરણીય જ છે.

શ્રીયુત્ શાસ્ત્રીજી **વસંતરામજીનો** ઉપકાર જેટલા મનાય તેટલો ઓછો જ છે. કારણ કે આ કાર્યમાં તેમણે જેટલો ફાળો નિઃસ્વાર્થ રૂપે આપ્યો છે, તેટલો અન્ય કોઇએ નથી આપ્યો. શ્રીયુત્ શાસ્ત્રીજીએ

શારીરિક અસ્વસ્થ્ય હાલતમાં પણ સ્વયં પગે ચાલી પ્રેસ અને કાગળ વિગેરેની સરળતા પ્રાપ્ત કરાવી આપી, તેમજ પ્રેસ કોપીને શુદ્ધ કરી, પ્રુફ સંશોધન કરી, પોતાની ભાષાસાહિત્ય તરફની તીવ્ર લાગણી દેખાડી આપી. તેમની આ અસાધારણ પ્રવૃત્તિ અને મહેનત જોઈને હું ખરેખર ચકિતજ થયો. તેમણે અનેક પ્રકારે સલાહ આદિથી તેમજ શુદ્ધાદ્વૈતમાં વિનામૂલ્ય આ સંબંધી જાહેરખબરો અને લેખો આદિને સ્થાન આપી આ કાર્યના પ્રચારમાં પણ સારો ભાગ આપ્યો છે. યદિ ઉપરોક્ત શાસ્ત્રીજીનું અન્ય વિદ્વાનો અનુકરણ કરે તો આજ પુષ્ટિમાર્ગનું 'ભાષાસાહિત્ય પુનઃ જનસમૂહમાં ગૌરવાંકિત થાય તે નિઃસંદેહ છે. શાસ્ત્રીજીના શ્રમનો અને ભાષાસાહિગ્ય ઉપરના પ્રેમનો બદલો અમે જરા પણ આપી શકીએ તેમ નથી જ. તેથી અમે અહીં કેવલ તેમના ઉપકારનું સ્મરણ કરીને જ સંતોષ માનીશું.

શ્રીયુત **રમાનાથજી**, શ્રીયુત મુખીયાજી **ગોકુલદાસજી વિદ્યાસુધાકર** શ્રીયુત શાસ્ત્રીજી **ચિમનલાલજી** અને શ્રીયુત **પુરૂષોત્તમ શાસ્ત્રીનો** પણ ઉપકાર માનવો અસ્થાને નહિ જ ગણાય. ઉપરોક્ત મહાશયોએ અમને આ કાર્યમાં સલાહ સંશોધન અને અભિપ્રાયાદિ દ્વારા ઘણી મદદ કરી છે. તદર્થે તેમનો ઉપકાર માનવો પણ આવશ્યક જ છે.

આ ઉપરાંત વાર્તાપ્રેમી **શ્રીગોવિંદલાલજી** બાવાસાહબ (સુરત) તથા **શ્રીદ્વારકેશલાલજી** વિગેરે અભિપ્રાયદાતાઓનો ઉપકાર માનું છું. સદ્‌ગત થયેલા વાર્તાપ્રેમીઓનું સ્મરણ કરવું પણ અત્રે આવશ્યક હોવાથી તેમના નામનો પણ હું અહીં ઉલ્લેખ કરૂં છું. શ્રીતિલકાયત **શ્રી ગોવર્ધનલાલજી**, ચિ. **દામોદરલાલજી** તેમજ શ્રીનાથદ્વારા નિવાસી પ. મ. ભ. **શ્રીગોવિંદદાસ બાવા** અને પ. ભ. **જદુનાથદાસ** જેમની કૃપા દ્વારા મને વાર્તામાં પ્રેમ થયો અને યત્કિંચિત તેના રહસ્યનું દર્શન થયું તેમજ ૧૭૫૨માં લખાયલું હસ્તલિખિત શ્રીહરિરાયજીના

ભાવપ્રકાશ વાળું પુસ્તક પ્રાપ્ત થયું છે તેથી તેમનો ઉપકાર માનવો અતિ આવશ્યક છે.

શ્રીયુત મગનલાલ શાસ્ત્રી, શ્રીયુત **કલ્યાણજી** શાસ્ત્રી એવં શ્રીયુત **તેલીવાળાનું** સ્મરણ પણ અસ્થાને નહિ જ ગણાય.

આ કાર્યમાં અર્થપ્રદાન કરવાવાળા સદ્ગૃહસ્થોનો ઉપકાર માની તેમના નામોનો ઉલ્લેખ કરીએ છીએઃ—

૧૦૦) શેઠ ચીમનલાલ મોતીલાલ પાટણ.

૧૦૧) શેઠ કાળીદાસ દ્વારકાદાસ ભરતીયા સુરત.

૧૦૧) બાઈ નર્મદા તે શેઠ ચીમનલાલ ખેમચંદની વિધવા; તેના ટ્રષ્ટીઓ શેઠ રણછોડદાસ કૃષ્ણારામ તથા શેઠ ડોસાભાઈ વિઠ્ઠલદાસ વડનગર.

૬૦) શેઠ બલદેવદાસ હરિવલ્લભદાસ સિદ્ધપુર.

૫૧) શેઠ વાડીલાલ દલસુખરામ વડનગર.

૫૧) શેઠ ગોવિદલલા ચુનીલાલ અમદાવાદ.

૧૦) મોતીલાલ લલ્લુભાઈ વિસનગર.

૧૦) ચુનીલાલ ભાઇચંદ વિસનગર.

૨) જેકીશનદાસ વિઠ્ઠલદાસ બોરડી.

૨૫) નાગોરી મોતીબેન અમદાવાદ

૨૫) શેઠ મણીલાલ લલ્લુભાઈ મણીયાર વિસનગર.

૨૫) શાસ્ત્રી પુરૂષોત્તમ પિતાંબરજી વિસનગર.

૨૫) ડોસાભાઈ વિસનગર.

૧૫) નર્મદાબાઈ તે નાનચંદ લીલાચંદની વિધવા હા. અમૃતલાલ. વિસનગર

૫) મંગલદાસ ખીમચંદ માતર

૫) રણછોડદાસ લક્ષ્મીદાસ શ્રીગોકુલ.

૫) વિઠ્ઠલદાસ મોતીચંદ માંગરોલ.

૫) દલસુખભાઈ મોતીલાલ ડભોઈ.

૨) વલ્લભદાસ નરોતમદાસ પેટલાદ.

૧) જમનાદાસ મણીલાલ ભગતવાળા ડભોઈ.

આ ઉપરાંત હાલોલ અને ડભોઈ વિગેરે સ્થળોના ગ્રાહકોનો પણ ઉપકાર માની હું અહીં વિરમીશ.

ત. ક. આ કાર્યમાં દ્રવ્યની મદદ કરાવનારાઓનાં શુભ નામોઃ- શ્રીયુત અધિકારીજી **લજ્જાશંકરજી**, મથુરા. શ્રીયુત **શેઠ ડાસાભાઈ વિઠ્ઠલદાસ**, વડનગર. પ. ભ. **ભાઈ ચંદુલાલ વિઠ્ઠલદાસ**, પાટણ. પ. ભ. **ભાઈ જયન્તીલાલ મગનલાલ**, અમદાવાદ. અને શ્રીયુત **તંત્રી " અગ્રનુહ "** અમદાવાદ.

આ ઉપરાંત સ્મૃતિભ્રમથી રહી જતા અન્ય ગૃહસ્થોનો પણ અંતઃકરણ પૂર્વક ઉપકાર માનું છું.

છેવટની એક વાત રહી જાય છે તે એ કે **વાર્તા-સાહિત્ય પ્રતિ ગંદા આક્ષેપ અને તિરસ્કાર કરનારા ઈશ્વર કોટીમાં ગણાતા બૌદ્ધાવતારો અને જીવ કોટીના ચિદ્રુપાદિનો પણ ઉપકાર અત્રે માનવોજ રહ્યો.** કેમકે તેમના આક્ષેપોથી પ્રેરાઈ આ કાર્ય જલ્દી આરંભાયું.

" **સંપાદક** "



प्राचीन वार्ता-रहस्य का शुद्धिपत्रक.

कृपया नीचे लिखे शब्दों को सुधार कर पढ़िये

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति	
द्वादशो वै	द्वादशाङ्गोह वै	५	२३	
શ્રીમહાજી	શ્રીમહાપ્રભુજી	૧૨	૧૫	
कीए	किये	१५		यहाँ और आगे के पत्रों में भी
दीए	दिये	,,		
लीये	लिये	,,		
हे	हैं	,,		
हे	है	,,		
चोरासि	चोरासी	,,		
दूरावनो	दुरावनो	,,	२१	
दैवि	दैवी	१६		यहाँ और अन्यत्र भी
जानीयो	जानियो	,,		
राजसि	राजसी	,,		
तामसि	तामसी	,,		
तिनों	तीनों	१७	१	
शेठ	सेठ	२८	६	अन्यत्र भी
लेईगो	लेइगो	,,	१२	
काढी	काढि	,,	१४	
ऊठी	उठि	,,	१९	
तीन्यों	तीनों	२९	५	
तिन्यों	,,	,,	७	
ईनकों	इनकों	,,	८	
भाईन	भाईननें	,,	११	
'હરિશરણી'	'હરષરાની'	૩૦	૬	

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति	
૭૪	૭૬	,,	૨૨	
જમૂહ	સમૂહ	૩૧	૧૧	
में	मैं	,,	१९	
कीयो	कियो	३७	१७	अन्यत्रभी
સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મ-સંબંધ કરાવ-વાનું	સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મસંબંધ કરાવ્યું અન્યથા બ્રહ્મ-સંબંધ કરાવવાનું	૪૩	૧૮	
महाप्रमू	महाप्रभु	४५	८	अन्यत्रभी
करी	करि	४६	५	
चुकि	चुकी	,,	१२	
वहुरी	वहुरि	४९	१	अन्यत्रभी
वीनती	विनती	,,	१६	
लिजियो	लाजियो	५४	२	
शके	सके	५५	१०	
लेह्र	लेहु	५६	१	
तिसरे	तीसरे	५८	१	अन्यत्रभी
सहायता सु	सहायतासूं	६०	१९	
लगी	लगि	६२	१०	
भगवद्लीला	भगवल्लीला	,,	१३	
निचे	नीचे	६३	५	
थांभि	थांभी	६९	११	
मूढे	मूढैः	७०	३	
पांच दिन	पांच दिन भये	७२	३	
कहि	कही	७२	९	
कीया	कीयो	६८	२३	

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति	
૧૪૭૬	૧૫૭૬	૯૦	૨૩	
जब	अब	९३	१७	
તુલસીકૃત	૦	૯૮	૨૩	
सहचरि	सहचर	१००	१४	
समांतिष्ठ	समातिष्ठ	१०१	२५	
लोंडि	लोंडो	११४	१	
स्त्रि	स्त्री	१२४	१३	
महोडो	म्होडो	१२४	१६	
सगरी	सिगरी	१२५	१६	अन्यत्रभी
दासकुं	दासकूं	१२६	७	
लाकिक	लौकिक	१२८	१६	
ગાદ્ય	વાદ્ય	૧૪૩	૧૨	
लव्धो प्रचारकैः	लव्धोपचारकैः	१४३	२१	
स ॅ	सर्व	१४६	६	
लुटि	लूटि	१४८	९	
रीन	रिन	१५१	१९	
રાખવો	સરખાવો	૧૫૫	૧૪	
सखि	सखी	१७१	२१	अन्यत्रभी
पांच	पांव	१८५	१७	
आधिदैनीक	आधिदैविक	१९०	४	
નાદરછ	નારદછ	૨૦૩	૧૭	
प्रेमरुपा	प्रेमरूपा	२०३	१९	
वेद कह्यो विधि निषेध को	वेद कह्यो श्रीहरि मुख निरखत विधि निषेध को	२०३	२४	

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
नैरोक्ष्यं	नैरपेक्ष्यं	२०५	२३
सर्वमावो	सर्वभावो	,,	२३
निरक्षेप	निरपेक्ष	२०४	२
कर्मीभ्यां	कर्माभ्यां	२०६	१३
आचार्य	आचार्यं	२०७	१८
अरोगते	अरोगतेथे	,,	नोट में
कीसी	किसी	,,	नोट में
हानो नहिं होतो	हानि नह आत	,,	नोट में

संस्कृत वार्ता मणिमाला

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
प्रतिवोधितः	प्रतिरोधितः	७	२०
प्रकाशयत्य	प्रकाशयत्ययं	१३	३
कुष्णदास	कृष्णदास	१४	२
प्रसादितुम्	प्रसादितम्	१६	५
दामोदरण	दामोदरेण	२१	३
द्लानि	दलानि	,,	६
मूष्पापि	मूष्मापि	२२	१३
प्रसदान्नं	प्रसादान्नं	२५	२
(भडली)	भंडिलः भड्डलिः (भाषा)	२७	१३
अथकैदो	अथैकदो	२८	१५
श्रत्वेति	श्रुत्वेति	२९	१३
रत्य	रेत्य	३१	३

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
तद्व्रयापार	तद्व्यापार	३३	२
ह्मार्दं	हार्दं	,,	१७
श्रतवान्	श्रुतवान्	३४	१८
कान्यकब्ज	कान्यकुब्ज	३५	६
पसे	परो	३५	१७
प्रस्यहं	प्रत्यहं	३६	१०
व्सासो	व्यासो	३७	१९
रोगं निवृत्तम चिरादिति	गमिष्यत्यचिरा द्रोगइति	४४	१२
मद्भ्यहम्	मद्भ्यहम्	४६	१२



શ્રીદ્વા. ગ્રન્થમાલાના ૧૩ મા પુષ્પ તરીકે

प्राचीन वार्ता-रहस्य

શ્રી ગિરધર ગોપાલના સ્મરણાર્થે

પ્રત. ૧૦૦૦

વૈષ્ણવોને વિનામૂલ્ય
અર્પણ કરી છે.

દ્વારકાદાસ

श्रीद्वारकेशो जयति

પ્રસ્તાવના



" વાર્તા-સાહિત્ય "

(ભૌતિક દૃષ્ટિથી)

પુષ્ટિમાર્ગનું દ્વિવિધ સાહિત્ય

પુષ્ટિસંપ્રદાયમાં દ્વિવિધ સાહિત્ય ઉપલબ્ધ થાય છે. એક પ્રમાણાત્મક અને બીજું પ્રમેયાત્મક. અથવા બીજી રીતે કહીએ તો એક શબ્દપ્રમાણવાળું સિદ્ધાન્તાત્મક અને બીજું આપ્ત પ્રમાણવાળું ફલાત્મક સાહિત્ય. શબ્દપ્રમાણાત્મક સાહિત્યમાં સિદ્ધાન્ત અને તેને પ્રાપ્ત કરવાના વિધિ નિષેધ આદિ કર્તવ્યનો સમાવેશ રહેલો છે, જ્યારે આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યમાં લોકવેદાતીત શ્રીકૃષ્ણ અને તેના અલૌકીક આસ્વાદરૂપ સુધા સ્વરૂપનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ યથાર્થ રૂપે કહેલો છે. બીજા પ્રકારે કહીએ તો શબ્દપ્રમાણનું પ્રત્યક્ષ ફલ તે આપ્તપ્રમાણવાળા સાહિત્યમાં નિરૂપેલું છે.

શબ્દના અર્થથી અહીં વેદજ મુખ્ય પ્રમાણ રૂપે કહેલો છે. અને **તે વેદ પ્રતિપાદ્ય સિદ્ધાન્ત જ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણ સ્વરૂપે હોઇ** તે સાહિત્યને શબ્દપ્રમાણાત્મક કહ્યું છે. તેવીજ રીતે આપ્તના અર્થથી અહીં લોકવેદાતીત શ્રીકૃષ્ણના તાદશ ભક્તો જાણવા. અને તેવા આપ્તપુરૂષોએ જે પ્રકારે અને જેવા સ્વરૂપનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ કરી જેમાં તેનું વર્ણન કર્યું છે, તે બધાં વાકયો અને ગ્રન્થો પ્રમાણરૂપ છે. માટે તેવા સાહિત્યને આપ્તપ્રમાણાત્મક કહ્યું છે.

બીજા પ્રકારે આપ્તપુરૂષોમાં પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ નિરંતર સ્થિત હોવાથી તેમનાં વાકયો અને ગ્રન્થોને પ્રમેયાત્મક કહેલા છે. આ રીતે પ્રમાણાત્મક અને પ્રમેયાત્મક અથવા શબ્દપ્રમાણવાળું અને આપ્તપ્રમાણવાળું એમ બે પ્રકારનું સાહિત્ય પુષ્ટિમાર્ગમાં ઉપલબ્ધ થાય છે.

શબ્દપ્રમાણાત્મક સાહિત્ય સિદ્ધાન્તરૂપ છે અને આપ્તપ્રમા-

ણાત્મક સાહિત્ય તે સિદ્ધાન્તના દષ્ટાન્તરૂપ હોઇ ફલરૂપ છે. આ પ્રકારે તે બન્ને સાહિત્યનો પરસ્પર સંબંધ છે.

જેમ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણરૂપે શ્રીકૃષ્ણ છે તેમ પ્રમેયરૂપે પણ શ્રીકૃષ્ણજ રહેલા છે. તો પણ પ્રમાણરૂપ શ્રીકૃષ્ણ સાધનાત્મક હોઈ અનુકરણીય છે, જ્યારે પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ ફલાત્મક હોઈ કેવલ સ્મરણીયજ છે. અર્થાત્ આપ્તજન કથિત પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમાં શ્રીકૃષ્ણે, સ્વભક્તોને સ્વયં અનુગ્રહરૂપ થઈ ફલરૂપ સ્વાનંદનું જે દાન કરેલું જોવામાં આવે છે, તેનું અહર્નિશ સ્મરણ (ચિંત્વન) કરી સાધનદશાવાળા ભક્તો, શબ્દપ્રમાણાત્મક ગ્રન્થોમાં રહેલા સિદ્ધાન્ત રૂપ શ્રીકૃષ્ણના પ્રમાણ સ્વરૂપને લક્ષ્યમાં સાધી, તેમાં કહેલા કર્તવ્યાકર્તવ્યનું નિઃસાધનતાની ભાવનાથી અનુકરણ કરે, તોજ કીટભ્રમર ન્યાયે પુષ્ટિમાર્ગ ફલીત થાય છે. યદિ કોઇ અનધિકાર ચેષ્ટાથી સ્મરણ કરવા યોગ્ય પ્રમેયાત્મક સ્વરૂપને કૃતીથી અનુસરે તો તેને ભગવત્પ્રાપ્તિ રૂપી ફલમાં અનેક પ્રતિબંધ પ્રાપ્ત થાય છે તે ખાસ લક્ષ્યમાં રાખવાની વાત છે.

પ્રમેયમાર્ગનું પુનઃ પ્રાકટ્ય અને તેની વિશિષ્ટતા

જ્યારથી શ્રીઆચાર્યચરણે આપ્તવાક્યના સમૂહરૂપ શ્રીમદ્ભાગવતની સમાધિભાષાને પ્રસ્થાન ચતુષ્ટય રૂપે સ્થાપી ત્યારથી પ્રમેય માર્ગ (પુષ્ટિમાર્ગ)નું પુનઃ પ્રાકટ્ય આ પૃથ્વીમાં થયું. વળી શ્રીઆચાર્યચરણે સમાધિભાષાને કેવલ પ્રસ્થાન ચતુષ્ટયમાં સ્થાન આપીનેજ સંતોષ નથી માન્યો **કિંતુ પ્રસ્થાન ત્રયીના સંદેહના નિવારકરૂપે તેને કહી તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા સહજ સિદ્ધ કરી છે.***

આપ્તવાક્ય ના સમૂહરૂપ શ્રીમદ્ભાગવત, એક ભક્ત (નારદજી) ના વચનને આધિન થઈને જ્ઞાનાવતાર વ્યાસજીને અનુભવમાં આવેલ પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણ હોઇ, શબ્દાત્મક વેદનું તે ફલ છે. અને તેથીજ

---

*वेदाः श्रीकृष्णावाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥
उत्तरं पूर्वसन्देहवारकं परिकीर्तितम् । (શ્રીઆચાર્યચરણ)

શબ્દપ્રમાણ કરતાં પણ આપ્તપ્રમાણ શ્રેષ્ઠ છે તે નિર્વિવાદ સિદ્ધ થાય છે. આ આપ્તવાકયોરૂપ પ્રમેયાત્મક શ્રીકૃષ્ણમાં શબ્દબ્રહ્મની પરતંત્રરૂપે સ્થિતિ સહજ હોવાથી તે દ્વિગુણીત પ્રમાણભૂત છે. બીજી રીતે તે પ્રમેયરૂપ શ્રીકૃષ્ણની આપ્તપુરૂષોમાં નિરંતર સ્થિતિ હોવાથી તેમનાં વાકયો શબ્દપ્રમાણથી વિશેષ બળવત્તર હોયજ. તેમાં આશ્ચર્ય શું ?

પ્રમેયાત્મક સાહિત્યના બે ભેદ.

આ પ્રકારના પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમાં પણ બે ભેદ છે. એક પુષ્ટિનું પ્રમાણભૂત પ્રમેયરૂપ સાહિત્ય અને બીજું કેવલ ભાવાત્મક સાહિત્ય. પ્રમાણભૂત પ્રમેયાત્મક સાહિત્યમાં, સેવનીય શ્રીયશોદોત્સંગ+ અને સ્મરણીય ગોપીકાવલ્લભ (શ્રીનાથજી), ઉભય સ્વરૂપ વિષયક સાહિત્યનો સમાવેશ રહેલો છે. અને બીજા કેવલ ભાવાત્મક સાહિત્યમાં ભાવ સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયકજ સાહિત્યનો સમાવેશ થયેલો છે. ભાવદ્વારા જ સેવનીય યશોદોત્સંગ અને સ્મરણીય ગોપિકાવલ્લભનો આનંદ પ્રાપ્ત થઈ શકતો હોવાથી આ ભાવાત્મક સાહિત્ય પણ ભક્ત અને ભગવાનના પરમાનંદમાં શ્રીઆચાર્યચરણની માફક મધ્યસ્થરૂપ છે.

આ ભાવને શ્રીહરિરાયજીએ કૃષ્ણાસ્ય તરીકે કહેલો છે તેજ સર્વાત્મભાવરૂપ, નિરોધરૂપ, સ્વતંત્ર ભક્તિરૂપ અથવા તો પુષ્ટિ-ભક્તિરૂપ જે કહો તે શ્રીઆચાર્યચરણ જ છે. એટલે શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ પરમભાવરૂપ છે. જેથી આપ્તજનોદ્વારા કહેલું શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ પ્રમેયનું પણ પ્રમેય અને ફલનું પણ ફલ છે. તે ભાવાત્મક શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્ય સંસ્કૃત અને ભાષા બન્નેમાં પ્રાપ્ત થાય છે. અને તે સાહિત્ય શબ્દપ્રમાણાત્મક અને આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યની એકવાકયતાના મધ્યસ્થ રૂપ છે. જે પુરૂષે શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક

+जानित परमंतत्त्व यशोदोत्संगलालितम् ।
तदन्यदिति ये प्राहुरासुरांस्तानहो बुधाः ॥ (શ્રીગુસાંઈજી)

×सदा सर्वात्मना सेव्यो भगवान गोकुलेश्वर ।
स्मर्तव्यो गोपिकावृन्दे क्रीडन् वृन्दावनेस्थितः ॥ (શ્રીગુસાંઈજી)

ભાવાત્મક સાહિત્યનો અનુભવ કર્યો છે તેને કોઈપણ પ્રકારનો વિરોધ શબ્દપ્રમાણાત્મક અને આપ્તપ્રમાણાત્મક સાહિત્યમાં દેખાતો નથીજ. એટલે શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્યની એકવાક્યતા અને મહત્તા, પુષ્ટિમાર્ગના સાહિત્યક્ષેત્રમાં પૂર્ણપણે રહેલી છે. તે વાત તેના અનુભવીથી તો જરાય અજાણી નથીજ.

શ્રીઆચાર્યચરણનું ભાવાત્મક સ્વરૂપ અને તદ્વિષયક સાહિત્ય કેવી રીતે પ્રકટ થયું?

શ્રીઆચાર્યચરણે સ્વયં, પોતાનું સ્વરૂપ મુખારવિન્દના અધિષ્ઠાતા રૂપ વૈશ્વાનર અને વાણીના પતી તરીકેનું સ્વમુખથી વર્ણવ્યું છે. (જેમ શ્રીકૃષ્ણે ગીતા આદિ અનેક સ્થળે પોતાનું સ્વરૂપ પોતે કહેલું છે તેમ) અને પોતાનું આંતરિક ભાવાત્મક હાર્દરૂપ સ્વરૂપ અવ્યક્ત રૂપે શ્રીસુબોધિનીજીમાં પણ સ્થાપ્યું છે. અને તે પોતાના નિગૂઢ સ્વરૂપનો પ્રકટ અનુભવ પોતાના સેવકોને આપે કરાવ્યો છે. તે સેવકોમાં મુખ્ય દમલા, પ્રભુદાસ અને પદ્મનાભદાસ છે. દમલાદ્વારા શ્રીઆચાર્યચરણેજ પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ શ્રીગુસાંઇજીને કરાવ્યો. એટલે પછી શ્રીગુસાંઇજીએ સંસ્કૃતમાં શ્રી આચાર્યચરણના નામ, રૂપ, અને ગુણને (ક્રમશઃ સર્વોત્તમ, વલ્લભાષ્ટક અને સ્ફૂરત્કૃષ્ણપ્રેમામૃત રૂપે) પ્રકટ કરી શ્રીઆચાર્યચરણના ભજનનો માર્ગ ખુલ્લો કર્યો. પદ્મનાભદાસે સ્વાનુભવ પદ્યરૂપે ભાષામાં વર્ણવ્યો. આ રીતે શ્રીઆચાર્યજીનું પરમ ફલાત્મક ભાવસ્વરૂપ પુષ્ટિસૃષ્ટિમાં પ્રકટ થયું. અને અનેક જીવોને યથાધિકાર તેનો અનુભવ થયો. અને તેનાં અનુભવનાં વાક્યો અને ગ્રન્થોનું ભાવાત્મક સાહિત્ય આ રીતે પ્રકટ થયું.

શ્રીઆચાર્યચરણ વિષયક સાહિત્યની પ્રામાણિકતા.

આ શ્રીઆચાર્ય વિષયક તમામ સાહિત્ય આપ્તવાક્યરૂપ હોઇ પ્રમેય કોટીનું છે. જેમ વ્યાસજી, વાલ્મીકિ આદીના આપ્તવાક્ય અને અનુભવ પ્રમાણ સ્વરૂપ, શ્રીભાગવત, રામાયણ આદિને શબ્દપ્રમાણથી યે વિશેષ મહત્ત્વયુક્ત સર્વત્ર માનવામાં આવેલાં છે, તેમ શ્રીગોકુલેશ

પણ ભગવત્સાક્ષાત્કાર યુક્ત હોવાથી તેમની કહેલી આ વાણીરૂપી વાર્તાઓ પણ આપ્તવાક્ય અને અનુભવપ્રમાણરૂપ હોઈ સર્વત્ર પ્રમાણરૂપે ગણાઇ છે. તેથી તે વિશ્વસનીય સત્ય અને સ્વતઃ સિદ્ધરૂપ જ છે.

શ્રીગુસાંઇજીએ માર્ગનું રહસ્ય શ્રીગોકુલેશમાં સ્થાપ્યું હતું. એટલે શ્રીગોકુલેશે શ્રીઆચાર્યચરણના ભજન રૂપ આ રહસ્યને સારી રીતે સમજીને પોતે તેનો અનુભવ કર્યો. ત્યારપછી તે અનુભવ સ્વભક્તોમાં પ્રકટ કર્યો. એટલે શ્રીગોકુલેશે સર્વોત્તમ, અને વલ્લભાષ્ટક ઉપર સ્વતંત્ર ટીકા કરી અને તેમાં શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ બહુજ સ્પષ્ટ રૂપે વર્ણવ્યું. તો પણ તે સંસ્કૃતમાં હોઈ સર્વોપયોગી ન થવાથી તેમજ સંક્ષિપ્ત લાગવાથી શ્રીગોકુલેશે તે શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને ભાષામાં ગદ્યરૂપે વિસ્તારપૂર્વક સ્પષ્ટ કર્યું. જેથી તે સર્વોપયોગી થયું.

આ કલીકાલમાં પ્રમેયાત્મક પુષ્ટિમાર્ગનો અનુભવ શ્રીઆચાર્યચરણની કૃપા વિના અશક્ય હોઈને જ શ્રીગુસાંઇજીએ, શ્રીગોકુલેશે તેમજ શ્રીહરિરાયજીએ શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને સ્પષ્ટ કરવાવાળા અનેક ગદ્યપદ્યાત્મક ભાષા અને સંસ્કૃત સર્વ પ્રકારના ગ્રન્થો કર્યા. અને શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપને સારી રીતે સમજાવ્યું. અને આ ગ્રન્થોમાં વાર્તાને મુખ્ય સ્થાન મળ્યું. તેથી જ શ્રીગોકુલેશે વૈષ્ણવોની વાર્તાને ફલ રૂપે કહી છે.

આપ્તવાક્યોના સમૂહરૂપ વાર્તાઓના આ (ઉપરોક્ત કથીત) ગૂઢ આશયને શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ સારી રીતે જાણ્યો. તેથી વાર્તાના સ્વરૂપને સમજાવવાને માટે આપે સૂત્રાત્મકરૂપે અત્યંત ભગવદ્ભાવ પ્રચૂર એક લેખ લખ્યો (તે અમે વાર્તાની શરૂઆતમાં આપ્યો છે) તે ઉપરાંત વાર્તાના દરેક પ્રસંગો ઉપર સૂક્ષ્મ "ભાવપ્રકાશ" યોજ્યો. અને વાર્તાનો આશય બહૂજ સ્પષ્ટ કર્યો. આ રીતે શ્રીઆચાર્યચરણના જીવનચરિત્રરૂપ આ વાર્તાઓના મહત્ત્વમાં વિશેષ વધારો થયો.

શ્રીહરિરાયજીના મતે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીનુંજ સ્વરૂપ છે. કારણ કે આ વાર્તાઓના એક એક અક્ષરમાં શ્રીઆચાર્યજી ઓતપ્રોત રૂપે બિરાજે છે. **આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીના ત્રિવિધ ઇતિહાસ**

રૂપ છે. ૧ ભૌતિક, ૨ આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિક. ૧ ભૌતિક=બાહ્ય ક્રિયાત્મક જીવનચરિત્રરૂપે, ૨ આધ્યાત્મિક=આંતરજીવનચરિત્ર રૂપ જ્ઞાનાત્મકપણે. ૩ આધિદૈવિક=ભાવાત્મક સ્વતંત્ર ભક્તિરૂપે. આ વાર્તાઓમાં શ્રીઆચાર્યચરણનાં રૂપ, ગુણ, વય, આકાર, જ્ઞાન સામર્થ્ય, ભક્તવત્સલતા આદિ ધર્મો, વાણીમાધુર્ય, નિત્યક્રમ, શાસ્ત્રાર્થશૈલી, સેવા અને કથાની પ્રણાલીકા, આનંદીતસ્વભાવ, રીતભાત, ચાલ, બિરાજવાની શૈલી, પાકક્રિયા, વિવેક, ધૈર્ય, આશ્રય, ઐશ્વર્યાદિ અનેક અલૌકીક ધર્મો, સત્ય, દયા, દીનતા, સેવા અને કથાની તત્પરતા, વિરહ આદિ અનેક નિગૂઢ ભાવો, તેમજ અનેક ચરિત્રોનો સમાવેશ થયેલો છે. એટલે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યચરણના જીવનચરિત્ર રૂપ છે. સારાંશ કે શ્રીઆચાર્યજીનું સાંગોપાંગ આંતર બાહ્ય સ્વરૂપ અને તેના ધર્મો તથા અનેક તત્ત્વો અને ભાવનાઓ આ વાર્તામાં પ્રત્યક્ષરૂપે વિદ્યમાન છે. તે તેના અભ્યાસીને જણાયા વિના રહેતું નથી જ. અને તેથી પણ આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજીનું જ સ્વરૂપ છે તે સ્વયં સિદ્ધ થાય છે. એવીજ રીતે ૨૫૨ ની વાર્તા શ્રીગુસાંઇજીના જીવનચરિત્રરૂપ છે. આ વાતને સમજાવવા જ શ્રીહરિરાયજીના સેવક મહાશય વિઠ્ઠલનાથ ભટ્ટે પણ શ્રીગોકુલનાથજી રચિત ગ્રન્થોનાં નામોનો ઉલ્લેખ કરતાં ૮૪–૨૫૨ વૈષ્ણવોની વાર્તા ન કહેતાં "वल्लभविट्ठल वार्ता प्रकट कीन नृपमान।" એમ સૂક્ષ્મ પ્રકારથી ઉદેપુરના **રાજા માનસિંહને** વાર્તાઓનું સ્વરૂપ સમજાવતાં સં. ૧૭૨૯ માં કહેલુ છે. આજ વાત સદ્‌ગત શ્રીયુત મૂલચંદ્ર તેલીવાળા "શ્રૃંગાર રસમંડન"ની પ્રસ્તાવનામાં આ પ્રમાણે લખે છે:—

"સાંપ્રદાયિક ગાથાઓનો વિચાર કરતાં શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વરને લીલાના સાક્ષાત્ અનુભવમાં શ્રીમદ્ દામોદરદાસજી સહાય થાય તે અનુચિત નથી જ. × × × **આપશ્રીનું (શ્રીગુસાંઇજીનું) વિશેષ ચરિત્ર સાંપ્રદાયિક વાર્તાઓ વિગેરેમાં પ્રસિધ્ધ છે.**"

આ પ્રકારે આ વાર્તાઓ શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીગુસાંઇજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસરૂપ હોઈ રક્ષણીય અને મનનીય છે. તેમજ તે સાંપ્રદાયિક સમગ્ર સાહિત્યમાં સર્વોત્કૃષ્ટ છે.

આ વાર્તાઓમાં ધાર્મિક તત્ત્વો અને રહસ્યોનો એટલો બધો સમાવેશ છે કે તેના શ્રદ્ધાપૂર્વકના શ્રવણ માત્રથીજ હૃદયનો નાસ્તિક અજ્ઞાનાંધકાર સહેજે નષ્ટ થઈ જાય છે અને હૃદય અત્યંત શુદ્ધ બની કમલની માફક ખીલી ઉઠે છે.

યદિ આ વાર્તાઓને શ્રીઆચાર્યજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસમાંથી કાઢી લઈએ તો શ્રીઆચાર્યજીના જીવનચરિત્ર અને ઇતિહાસરૂપે શેષ કંઇ પણ રહેતું જ નથી. માટે શ્રીઆચાર્યચરણના સ્વરૂપના જ્ઞાન અર્થે, સંપ્રદાયની સેવાપ્રણાલીના અને ધાર્મિક સિદ્ધાંત આદિના દૃષ્ટાંતરૂપે આ વાર્તાઓ પૂર્ણ ઉપયોગી છે.

આજસુધીમાં જેટલા મહાનુભાવોએ શ્રીઆચાર્યચરણનાં જીવનચરિત્રો લખ્યાં છે તેમને દરેકને વાર્તાઓમાંના વૈષ્ણવોના ભાવવાહી પ્રસંગોનો આશ્રય લેવો જ પડયો છે. જુઓ *વલ્લભાખ્યાન, પ્રદીપ, દિગ્વીજય, વલ્લભચરિત્ર આદિ ગ્રન્થો.

વાર્તા રચના કાલ

આ વાર્તાની રચના શ્રીગોકુલેશે વિ. સંવત ૧૬૪૨ પછી અને ૧૬૪૫ પહેલાં કરેલી છે. તે એથી સ્પષ્ટ થાય છે કે ૨૫૨ ની વાર્તામાં એક પણ પ્રસંગ સાતે બાલકો અલગ થયા પછીનો પ્રાપ્ત થતો નથી. કાન્હબાઈની વાર્તામાં શ્રીગોકુલનાથજીએ યજ્ઞ કરવાનો વિચાર કર્યો ત્યારે શ્રીગિરિધરજીની આજ્ઞા માંગી છે તે પ્રસંગ આવે છે એટલે તે વખતે સાતે બાલકો ભેગાજ બિરાજતા હતા તે સ્પષ્ટ જ છે. સ. ૧૬૪૫ પછી સાત બાળકો અલગ અલગ રહેવા લાગ્યા. બાકી બીજો એવો એક પણ પ્રસંગ શ્રીગુસાંઈજીની લીલા વિસ્તાર પછીનો પ્રાપ્ત થતો નથી. શ્રીગુસાંઇજીની લીલાવિસ્તારનો પ્રસંગ ચાચાજી અને છીતસ્વામીની વાર્તામાં આપેલો છે. અને શ્રીગુસાંઇજીએ સં. ૧૬૪૨ માં લીલા વિસ્તારી છે તે સ્પષ્ટજ છે.

---

*વલ્લભાખ્યાન અને પ્રદીપના સમયમાં વાર્તાનું સ્વરૂપ ગ્રન્થાકાર રૂપે ન હતું તો પણ વાર્તાના પ્રસંગોની વિખ્યાતી જગપ્રસિદ્ધ હતી તેથી અન્ય સંપ્રદાયના ભક્તમાલ આદિ ગ્રન્થોમાં પણ તેનું અસ્તિત્વ દેખાય છે.

આ વાર્તાની રચના પછી જ શ્રીગોકુલેશે નિજવાર્તા, ઘરૂવાર્તા, અને બેઠકચરિત્ર રચેલાં હોવાં જોઈએ કારણ કે વાર્તાના જ અમૂક પ્રસંગોનું વિશેષ સ્પષ્ટીકરણ ઉપરોક્ત ગ્રન્થોમાં પ્રાયઃ જોવામાં આવે છે. દામોદરદાસ હરસાનીનો પૂર્વપ્રસંગ પાછલથી પ્રાપ્ત થયેલો હોવાથી વાર્તામાં તે દેખાતો નથી પરંતુ નિજવાર્તામાં તે આપેલો છે. આથી પણ એક અનુમાન થઈ શકે છે કે ઉપરોક્ત ત્રણ ગ્રન્થોની રચના પછીથી થયેલી હોવી જોઈએ. અને ભાવસિંધુ તો લગભગ સં. ૧૬૮૦ પછીથી રચાયલો સ્પષ્ટ જ છે. કારણ કે તેમાં ચંદાબાઇ અને જહાંગીરનો પ્રસંગ છે.

આ રીતે વાર્તાનો રચનાકાલ સં. ૧૬૪૨ થી ૧૬૪૫ સુધીનો નિશ્ચિત થાય છે.

કેટલાક સુજ્ઞ ગણાતા પુરૂષો પણ ઘણીવાર એમ કહે છે કે વાર્તામાં લહીયાઓએ સ્વકલ્પિત રોચક પ્રસંગ લખીને વાર્તાને વધારી છે. મૂલ વાર્તા બે હજાર શ્લોકનીજ હતી અને પાછલથી તે દસ હજાર શ્લોક જેટલી થઈ. આ આક્ષેપ કેવલ અજ્ઞાનતાસૂચક અને અન્યાય પૂર્ણ છે તે કહ્યા વિના રહી શકાતું નથી.

લહીયાઓ ઉપરનો મિથ્યાદોષ.

કારણ કે મૂલ વાર્તા સંસ્કૃતમાં રચાયલીજ નથી કિન્તુ વ્રજભાષામાં જ રચાયલી છે. તે અનેક પ્રાચીન ગ્રન્થોની વિદ્યમાનતા અને મહાશય વિઠ્ઠલનાથની વાણીથી પણ સિદ્ધ થાય છે. તેમજ શ્રીગોકુલનાથજી રચિત સંસ્કૃત વાર્તા અદ્યાપિ કોઈને પ્રાપ્ત થઈ પણ નથી. જે સંસ્કૃત વાર્તા સંપ્રદાયમાં પ્રાપ્ત છે તે શ્રીનાથદેવ મઠેશના નામની છે અન્ય કોઈપણ પ્રાપ્ત નથી. એટલે મૂલવાર્તા સંસ્કૃત હતી તે આક્ષેપ મિથ્યા થાય છે.

બીજું તેના પ્રમાણ રૂપે શ્રીહરિરાયજી કૃત ભાવપ્રકાશ સબલ પુરાવો છે. કારણ કે શ્રીહરિરાયજીનું પ્રાકટ્ય વ્રજ સંવત ૧૬૪૭માં છે અને આપ શ્રીગોકુલેશજીના જ શિષ્ય છે તેમજ શ્રીગોકુલેશજીના ગ્રન્થોના પૂર્ણ અભ્યાસી છે. યદિ શ્રીગોકુલેશજીએ વાર્તા સંસ્કૃતમાં રચી હોત તો આપ પણ તેના ઉપરનો ભાવ પ્રકાશ સંસ્કૃતમાંજ

રચત, કિંતુ આપે ભાષામાં રચ્યો છે. અને સંસ્કૃત વાર્તા સંબંધી જરા જેટલોયે કોઈ પણ જગ્યાએ ઉલ્લેખ કર્યો નથી. શ્રીગોકુલેશ સં. ૧૬૯૮ સુધી ભૂતલ ઉપર બિરાજ્યા. એટલે શ્રીહરિરાયજીને શ્રીગોકુલેશનો સહવાસ અને સાંપ્રદાયિક જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવાનો સમય ખૂબજ મળેલો હોવો જોઈએ. તેથી આવી વાતો આપનાથી અજાણી રહેજ નહિ.*

વળી લહીયાઓ એ વાર્તામાં કલ્પિત પ્રસંગો વધારી તેને પેટના અર્થે રોચક બનાવી સંપ્રદાયના સિદ્ધાન્તથી વિરૂદ્ધ કરી છે તેવા પ્રકારનો આક્ષેપ પણ અનુચિત જ છે. અમારી દૃષ્ટિએ વાર્તામાં એક પણ પ્રસંગ વધારેલો અમને લાગતો નથી તેમ સંપ્રદાય વિરૂદ્ધ સિદ્ધાન્તવાળો પણ જણાતો નથી. જે જે વાર્તાઓ ઉપર આક્ષેપો થયા છે તેનો પરિહાર અમે પ્રમાણો દ્વારા કર્યો છે અને આગલ ઉપર કરીશું. આ ભાગમાં તુલસાં અને રજોની વાર્તા ઉપર થયેલા અનુચિત અજ્ઞાનજનક મૂર્ખતા પૂર્ણ આક્ષેપો નો પરિહાર અમે શાસ્ત્રીય પ્રમાણો દ્વારા કર્યો છે †

શ્રીગોકુલેશના સમય સુધી તો એકજ લહીયો મુખ્યતા રૂપે પુસ્તક લખતો અને પોતાના આશ્રિત અન્ય મનુષ્યો પાસે તે પ્રતની અનેક નકલો કરવાવતો હતો. અને તે શ્રીગોકુલેશ તપાસતા હતા.

---

* વિશેષ શ્રીગોકુલનાથજી અને શ્રીહરિરાયજીનું જીવનચરિત્ર ભાગ ૨ માં આપવામાં આવશે.

† રજો એ આચાર્યચરણને અનસખડી અરોગાવી તેમાં વર્ણાશ્રમ વિરૂદ્ધ ભક્તિમાર્ગની દૃષ્ટિથી કંઇએ નથી. કારણ કે તે અનસખડી સ્વયં શ્રીબાલકૃષ્ણ પ્રભુ સાક્ષાત્ રૂપથી મુખમાં અંગીકાર કરતા એટલે તે મહાપ્રસાદના તરીકે હોવાથી ભક્તિમાર્ગમાં તેને બાધ આવતો નથીજ. તે સંબંધી શ્રીનાથ ભટ્ટે પણ भुक्तप्रभोः प्रसादात्तं पक्वान्नं એમ સ્પષ્ટીકરણ કર્યું છે. તેમજ શાસ્ત્રીજી વસંતરામે પણ તે સંબંધી તેજ જવાબ પહેલાં શુદ્ધાદ્વૈતમાં પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત (હાલ મોજુદી અવસ્થાનું) દ્વારા આપી ચુકયા છે. એટલે તે બાબતમાં અમે વાર્તામાં કંઈ લખ્યું નથી. (વિશેષ અન્ય પ્રમાણો રજોની વાર્તામાં જુઓ.)

અને પછીજ તે ગ્રન્થોનો પ્રચાર થતો. એટલે જરાયે પોલ તે સમયમાં ચાલતી ન હતી. તે લહીયાનું નામ "બલીયા" હતું. એ વાત જગપ્રસિદ્ધ છે. એટલે પોતાની અજ્ઞાનતાથી કોઈ પ્રસંગ યા વાર્તા સમજમાં ન આવે તો તે કલ્પિત છે એમ કહેવું તે ખરેખર હાસ્યાસ્પદ છે અને પોતાના જ પાંડિત્યને બટ્ટો લગાડવા જેવું છે. પાંડિત્ય એનું જ નામ છે જે સર્વે ગ્રન્થોની અધિકાર ભેદ અને દષ્ટિભેદ આદિથી એકવાક્યતા કરી આપે.

હવે આપણને જે અનેક પ્રતીઓ હસ્તલિખીત વાર્તાની પ્રાપ્ત થાય છે તેમાં, કોઈ પ્રતી અપૂર્ણ છે તો કોઈ પ્રતીના કેટલાક પ્રસંગોમાં વિવિધતા અને વિશેષતા પણ પ્રાપ્ત થાય છે.

પ્રસંગોની અપૂર્ણતા અને વિવિધતા આ વસ્તુ આક્ષેપકર્તાઓની ઢાલરૂપ હોઈ ભ્રમ ઉત્પન્ન કરવાવાળી વસ્તુ છે. પરંતુ જો પ્રાચીન સમય ને ધ્યાનમાં લઇએ તો સમજી શકાય છે કે તે ભ્રમ મિથ્યા છે. કારણકે પ્રાચીન કાલમાં નિશ્ચિત લિખીયાઓ પાસેથી પુસ્તક લખાવવામાં દ્રવ્યની વિશેષ આવશ્યક્તા પડતી હતી. એટલે દ્રવ્યવાન સિવાય અન્ય તેનો લાભ લઈ શકતા ન હતા. તે સમયમાં વાર્તાનો પ્રચાર અત્યંત હતો તેમ તેના ઉપર જનસમૂહનો પ્રેમ પણ અઢળક જ હતો. તેથી સાધારણ સ્થિતિના લોકો કાં તો વાર્તા સ્વયં ઉતારી લેતા અથવા તો કંઠસ્થ પ્રસંગો ને શેષ રાખી અન્ય પ્રસંગો થોડાક દ્રવ્યમાં ઉતરાવી લેતા યા ઉતારી લેતા. આથી અનેક પ્રકારની પૂર્ણ અપૂર્ણ અને વિવિધતાવાળી પ્રતીઓ આજ આપણા જોવામાં આવે છે તેના પુરાવા રૂપ અમને એક જીર્ણપત્ર પ્રાપ્ત થયેલો તેની નકલ અમે કરી લીધી હતી તે અહીં આપીએ છીએઃ—

શ્રીહરિ શ્રી...જી આગલ સુધ કરશો શ્રીજમનાં પાન કરતાં યાદ કરશો.

સિદ્ધ શ્રીગોકુલમધ્યે શ્રીમહારાણીજીના પયપાનના અભિલાષી ભાઈ જીવનભાઈ જોગ લી. શ્રીવલ્લભદાસાનુદાસ મહાપામર અમૃતના દૈન્યતાપૂર્વક જયજયશ્રી...........

જત તમારો પત્ર મળ્યો મારે એક ૮૪ અને એક ૨૫૨ની વાર્તાનું પુસ્તક જોઈએ છીએ. કૃપા કરીને તમો લેતા આવજો. મારી પાસે દ્રવ્યની અનુકુલતા નથી તો જેમ બને તેમ ટુંકું ઉતરાવી સાર સાર લખાવી જરૂર લેતા આવજો. અમારા મોહનભાઈ લાવ્યા હતા તે કહેતા હતા કે રૂ. ૧૦૦) અંકે સો પુરા આપ્યા છે. પણ ભાઇ મારી પાસે તો રૂ. ૫૦) થી વધારે આપવાની શકતી નથી. માટે તમે ચતુર છો જેમ ઠીક સમજો તેમ લખાવી જરૂર લાવજો......

અહિં મહારાજ પધાર્યા છે તમારી દંડવત કરી છે. હાલ એજ. કામકાજ લખજો. જોઈતું કરતું મંગાવજો. સંવત ૧૭૮૦ ના મિતિ શ્રાવણ વદ ૫ વાર સોમ.

આ પત્રથી આપ જાણી શકો છો કે ઉપરોક્ત અમારૂં કથન સત્ય છે કે નહિ ?

આપણી વાર્તાઓ પ્રાચીન ભારતીય ઐતિહાસિક શૈલીથી લખાયલી છે. એટલે તેમાં વિશેષ ભૌતિક કાલનું નિરૂપણ જોવામાં આવતું નથી. તો પણ આસપાસના પ્રસંગો અને ઇતિહાસ જોવાથી આપણે ભૌતિક કાલનો પ્રાયઃ નિશ્ચય કરી શકીએ છીએ.

વાર્તાની ઐતિહાસિકતા

આપણી ભારતીય પ્રાચીન ઐતિહાસિક લેખન શૈલી એવા પ્રકારની હતી કે જેના અવલોકન દ્વારા ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષને મનુષ્ય સારી રીતે સાધી શકતો હતો. કારણ કે આપણે ત્યાંની ઇતિહાસની વ્યાખ્યાજ આ પ્રમાણે છે કેઃ—

इतिह पारम्पर्य्योपदेशः आस्तेऽस्मिन् । इतिह+आसघञ् । धर्मार्थकाम मोक्षाणामुपदेश समन्वितम् । पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते । इत्युक्त लक्षणे पुरावृत्तप्रकाशके भारतादिग्रन्थे । (शब्दस्तोम महानिधि)

આ વ્યાખ્યાથી એ સિદ્ધ થાય છે કે જેમાં પરમ્પરાગત–ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષનો ઉપદેશ હોય તેજ ભારતીય દૃષ્ટિથી ઇતિહાસ કહેવાય. આજ કાલના કહેવાતા ભારતના સંતાનો પરંતુ મન, વાણી અને

ક્રિયાથી પાશ્ચાત્ય જડવાદ નેજ અનુસરનારા ઉપરની ભારતીય ઇતિહાસની વ્યાખ્યાથી અજ્ઞાન હોઇ જેમાં સંવત આદિ કાલનિર્દેશ હોય તેનેજ ઇતિહાસ માને છે, પછી ભલે તે અન્યથા રૂપે હોય. આ અજ્ઞાનતા મનુષ્યને કેવા અંધકારમય માર્ગે લઈ જાય છે તે અત્યારે સર્વ કોઈ પ્રત્યક્ષપણે જોઈ શકે છે. જો ઉપરની વ્યાખ્યા પ્રમાણ રૂપ ન હોય તો ગીતા, ભાગવત, રામાયણ આદિ મહાન ઐતિહાસિક ગ્રંથો પણ કલ્પિત રૂપે થઈ જાય, તે સર્વથા અવાંચ્છનીયજ છે. અતએવ ધર્મ, અર્થ, કામ અને મોક્ષનો પરમ્પરાગત ઉપદેશ જેમ ગીતા આદિ ગ્રંથોમાં છે તેમ વાર્તાઓમાં પણ સ્પષ્ટ પણે રહેલો છે. તે આપણે સ્થલે સ્થલે અવલોકીશું. અતએવ વાર્તાઓમાં કલ્પિતતા કે અનૈતિહાસિકતાનો જરાય આરોપ આવી શકે તેમ નથીજ. ભારતીય પ્રણાલીથી વાર્તા વિશેષ કરીને ધાર્મિક ઇતિહાસ રૂપ છે જ.

વાર્તા અને ભાષાસાહિત્ય સંબંધી સાંપ્રદાયિક, અન્ય સાંપ્રદાયિક અને તટસ્થ વિદ્વાનોના અભિપ્રાયોઃ-

ભક્ત મહાનુભાવ **કવિ દયારામ** કહે છે કેઃ—

"સકલ તત્વનું તત્વ છે એ સાર માંહે સાર ॥
પાઠ કરતાં માત્રમાં વશ થાય શ્રીનંદકુમાર ॥
શ્રીવલ્લભ વિઠ્ઠલ પ્રભુને પ્રસન્ન કરવા ચ્હાય ॥
નથી અવર ઉપાય બીજો હરિ ભક્તના ગુણ ગાય ॥
શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુના અંતરંગ એ ભક્ત ॥
મુજ ઉપર કરૂણા કરી દ્યો શ્રીવલ્લભ પદ આસક્ત ॥
એ વૈષ્ણવ પદરજ રતીની છે ઘણી મુજને આશ ॥
ગાય ગુણ હરિદાસના દયારામ દાસનો દાસ ॥"

આ પુસ્તકમાં આપેલા ચોરાશી વૈષ્ણવોના શ્રીહરિરાયજી કૃત લીલાના સ્વરૂપોના નામ સંબંધી અને શ્રીહરિરાયજીએ રચેલા વાર્તા ઉપરના ભાવપ્રકાશ અને લેખ સંબંધી **શ્રીવલ્લભજી મહારાજ** પોતાના ધોળમાં આ પ્રમાણે કહે છેઃ-

" ચોરાશી ચિત લાવીને કરે પાઠ નિત્ય ધરી નેમ,
પુષ્ટિપંથ પ્રભુ પ્રસન્ન થાયે હ્રદે બાઢે પ્રેમ. ૧૨૨
કૃપા શ્રીહરિરાયજી કરી દીન જાણી દાસ,
મૂલ ચોરાશી ભક્તનાં તે નામ કર્યાં પ્રકાશ. ૧૨૩
શ્રીઆચાર્યજી મહાપ્રભુનાં અંગ દ્વાદશ જેહ,
ધર્મ સાથે ધર્મી કહીએ સપ્ત દ્વાદશ તેહ. ૧૨૪
ચોરાશી વ્રજ કોશ માટે ચોરાશી એ ભક્ત,*
પ્રેમલક્ષણા પૂરેપૂરી શ્રીવલ્લભપદ આસક્ત. ૧૨૫
એ વૈષ્ણવ પદ કમળ રજ રતિ તણી છે અતિઆશ,
ગાયે ગુણ હરિદાસના પદરજ **શ્રીવલ્લભ દાસ**"-(રસમય ધોળ સાગર)

ગોસ્વામિ બાલકોના અભિપ્રાયો:—

૧ "**૮૪ અને ૨૫૨ એ પુષ્ટિમાર્ગના કાયદાઓ** છે. જેના જાણવાથી પુષ્ટિપ્રભુની પ્રાપ્તિ રૂપી મુકદમામાં સહેજે ફલિભૂત થઇ શકાય છે." (**શ્રીતિલકાયત શ્રીગોવર્ધનલાલજી**)

૨ "વાર્તા અમારૂં ગૌરવ છે. તેમાં અમારા પૂર્વજો સાથે પરબ્રહ્મ શ્રીનાથજી એક સંબંધીની માફક બોલતા, ચાલતા, માગતા અને અરોગતા હતા. આથી અમારા કુલનું વિશેષ ગૌરવ બીજું કયું હોઇ શકે ?" (સુરતીસ્થ **ચિ. ગોવિંદલાલ બાવાસાહબ**ના સ્વતત્ર ઉદ્દગાર)

૩ " સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતમાં જો સમજ ન પડે તો વાર્તાઓ અહર્નીશ વાંચવી. માર્ગના તમામ સિદ્ધાંતોનું મૂલ વાર્તાઓ છે." **(શ્રીદ્વારકેશલાલજી)**

૪ સંપ્રદાયના સંસ્કૃત સાહિત્યના પ્રખર વિદ્વાન અને મર્મજ્ઞ તેમજ સેવારસિક મહાનુભાવ **શ્રીગોકુલદાસજી વિદ્યાસુધાકર મુખ્યાજી** (કોટા–બડે મથુરેશજીના) સમગ્ર સાંપ્રદાયક ભાષાસાહિત્યને માટે આ પ્રમાણે લખે છે:—

"हम लोग तो वार्ता भावना को मानवेवारे है क्योंकि वार्ता भावना ही

---

* શ્રીહરિરાયજીના લેખ અને ભાવપ્રકાશનું એક વિશેષ પ્રમાણ.

पुष्टिमार्ग को प्रचार करवेवारे है × × × प्राचीन वार्ता भावनान की पुस्तक में **जो विरोध मालुम पडे है वह अपनी अल्प बुद्धि को दोष है.** वार्ता भावना में उत्तम मध्यम ओर प्रथमाधिकारी के योग्यतानुसार कर्तव्याकर्तव्य को निरुपण है" × × × × ×

સંપ્રદાયના પ્રખર જ્ઞાતા શ્રીયુત **શાસ્ત્રીજી કણ્ઠમણિજી** વાર્તા કીર્તન આદિ ભાષાસાહિત્ય માટે આ પ્રમાણે કહે છે:—

"संप्रदायकी एक भाषानिधि ८४ वैष्णव वार्ता तथा २५२ वैष्णवकी वार्ता प्राचीन अष्टसखाओ के कीर्तन तथा चरित्र आदि हैं **जिनके लिये संप्रदायानुयायीओ के गर्व होना चाहिए. इसकी अनभिज्ञतासे मान-हानि करना हमारे लिये पाप है. हमे इनके अवलोकनसे वास्तविक तत्त्वकी प्राप्ति करनी चाहिये. इसका समुचित रुपेण रक्षण नितान्त आवश्यक है."** × × ×

(વિશેષ અભિપ્રાયો "ભાષાસાહિત્યનું ગાંભીર્ય" નામના પુસ્તકમાં જુઓ.)

બીજા પણ વાર્તા અને ભાષાસાહિત્યના ગૌરવને વધારનાર વિદ્વાનોના અન્ય અભિપ્રાયો ઘણા છે. **પરંતુ સ્થલ-સંકોચથી આટલા જ આપ્યા** છે. હવે અન્ય સંપ્રદાયી વિદ્વાન અને સાક્ષર પુરૂષો આપણા ભાષાસાહિત્યને માટે શું લખે છે? તેનું ટુંક વૃત્તાંત અહીં નોંધ્યું છે:—

શ્રીયુત **આચાર્ય શ્રીરસિક મોહનજી વિદ્યાભૂષણ** આપ્તવાક્યનું પ્રમાણ અને તેની ભગવત્સ્વરૂપથી અભિન્નતા આ પ્રમાણે કથે છે:—

"इन वक्तव्यों म पूर्ण विश्वास करना बडा कठिन है। सन्तो और ऋषियो द्वारा व्यक्त सत्य सर्वातिरिक्त है; **वह उन लोगोंकी विचार शक्तिसे परे है जिनको अपने हृदयमें भगवत्कृपा रुपी ज्वाला के स्फुलिंग प्राप्त नहिं हुये हैं।** हम साधारण मनुष्य इस सत्यकी आत्मामें कठिनता से ही प्रवेश कर सकते हैं। हमारी जानकारी में तो नाम कुछ अक्षरों से बना है, एसा नाम स्वयं ब्रह्म से अभिन्न केसे हो सकता है? हम इसके लिये कोई कारण नहिं बता सकते। वस्तुतः युक्तिवादी की सम्पूर्ण सांसारिक विधियाँ इस सत्य को प्रकट करने में

असमर्थ हैं। इस जगतमें बहुत सी ऐसी चीजें है विशेषतः वे वस्तुयें जो सर्वातिरिक्त हैं जिनकी व्याख्या साधारण बुद्धि से नहीं की जा सकती। एसी ही बातों के लिये **सन्तों ओर ऋषियों के शब्द जिन्हें 'आप्तवाक्य' कहा जाता है, प्रमाण माने जाते हैं।"**

શ્રીયુત સુપ્રસિદ્ધ **સાહિત્ય સંશોધક મિશ્રબંધુઓ** વાર્તાઓ માટે આ પ્રમાણે લખે છે:—

"विट्ठलनाथजी के पुत्र गोकुलनाथजीने ८४ ओर २५२ वैष्णव की वार्ता नामक गद्य में जो दो बृहत् ग्रन्थ लिखे उनके देखनेसे विदित होता है कि **ये भक्तगण सदैव कृष्णानंद में ही निमग्न रहते थे। ८४ एवं २५२ वैष्णव की वार्ताओ में इसी संप्रदाय** (वल्लभीय) **के महात्माओंका वर्णन है."**

("વિનોદ" પ્રૌ. મા. પ્ર. ૧૧ અ.)

શ્રીયુત મિશ્રબંધુઓ વાર્તાને ઐતિહાસિક માને છે. તેઓ તેમના વિનોદમાં લખે છે કે:—"**इनसे** (वार्तासे) **तात्कालिक कई महात्माओंका समय स्थिर हो जाता है**" × × × ×

શ્રીયુત મિશ્રબંધુઓ, આપણા વાર્તા કિર્તન આદિ ભાષાસાહિત્ય માટે કેટલું માન રાખે છે તે જુઓ. તેઓ લખે છે કે:—

"**कविता भंडार आपहीके** (श्रीवल्लभाचार्यजीके) **शिष्यों की रचनासे परिपूर्ण हुआ है॥ व्रजभाषा का जो भाषा कविता पर साम्राज्य सा हो गया है इसका एक प्रधान कारण यह भी है कि आपके संप्रदायवालोंने अपनी पुरी रचना इसीमें की है। महात्मा सूरदास तथा अष्टछाप के अन्य कविगणोंकी रचना व्रजभाषाकी भूषण स्वरुप है। यदि भाषा काव्यको आपके संप्रदाय द्वारा इतना सहारा न मिला होता तो आज शायद व्रजभाषाकी कविता इतनी परिपूर्ण न होती। यह सब आपहीका प्रताप है।"** (भा. १ आदि प्र. २२९ पान)

"इनके (श्रीविट्ठलनाथजी) ओर इनके पिता श्रीमहाप्रभुजी के कारग भाषासात्यिकी बहुत बडी उन्नति हुई॥" (२९१ पान)

"महाप्रभु वल्लभाचार्यजीके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी के ये महाराज (श्रीगोकुलनाथजी) आत्मज थे। इनके दो ग्रन्थ चोरासी वैष्णवोंकी वार्ता ओर २५२ वैष्णवोंकी वार्ता प्रसिद्ध है। × × × × **इनकी लेख प्रणाली प्रसंशनीय हे॥"** × × × ×

આ ઉપરોક્ત પ્રમાણોથી સર્વ કોઈ જાણી શકે છે કે પુષ્ટિમાર્ગનું ભાષાસાહિત્ય, અન્ય સાહિત્યરસિકોની દૃષ્ટિમાં પણ કેટલું ઉત્તમ નિષ્કલંક અને શ્રીઆચાર્યજીના પ્રતાપને પ્રકટ કરવાવાળું છે? આવા શુદ્ધ ભક્તોના ચરિત્રો અને તેમની અનુભવી વાણી ઉપર જેઓ આક્ષેપ કરે છે તેમને કયા શબ્દોથી સંબોધવા તે માટે ભાષામાં કોઈ શબ્દો જ મને તો મળતા નથી. વાર્તા ઐતિહાસિક, નિષ્કલંક અને શુદ્ધ છે. તે સર્વાનુમતે (વિચારકોમાં) નિર્વિવાદપણે સિદ્ધજ છે—

"हिन्दी साहित्य का सक्षिप्त इतिहास"ના લેખક કાશી, હિન્દી યુનિવર્સીટીના પ્રોફેસર શ્રીયુત્ રામચંદ્ર શુક્લ આ પ્રમાણે લખે છેઃ—

"गुरु नानकजीके जन्मके थोडे ही दिन बाद स्वामी वल्लभाचार्य का जन्म हुआ। यह तैलग ब्राह्मण थे। जिनका जन्म १४७९ ई० में हुआ था। × × × इनकी अब तक पूजा होती है। × × × पद इन्होंने लिखे हों अथवा न लिखे हों किंतु हिन्दी विशेषतः **व्रजभाषा सदा इनकी कृतज्ञ रहेगी। क्योंकी इन्होंने उसे प्रोत्साहित किया और इनके शिष्योंने उसे गौरव के शिखर पर पहुँचा दिया."** पा. ३९

"इस कालके वैष्णव संप्रदायने एक नए ढंग का सर्वोत्तम साहित्य निकाला। यह साहित्य मुख्यतः व्रजभाषा में है जिसकी मधुरता जगत प्रसिद्ध है॥" पा. ४२

"इस समय दो और भक्तोंका उल्लेख कर देना उचित ज्ञात होता है। एकका नाम विठ्ठल विपुल था। × × × दूसरे स्वामी गोकुलनाथजी थे। ये गोस्वामी विट्ठलनाथ के पुत्र थे। इन्होंने व्रजभाषा में दो प्रसिद्ध गद्य ग्रंथ लिखे है एक चौरासी वैष्णवों की वार्ता और दूसरी दोसौ बावन वैष्णवोंकी वार्ता, जिन में वैष्णव मतके ८४ और २५२ भक्तोंका

वर्णन है। इन ग्रंथों से उस समय के गद्य लेखनका पता तो लगता ही **है बहुत से भक्तों और भक्त कवियों का समय भी निश्चित होता है। इन पिता-पुत्र स्वामियोने हिन्दी गद्यका भी बडा उपकार किया** किन्तु इनका गद्य व्रजभाषा में था। " पा. ६२

" कृष्ण **भक्तों** में रसखान का नाम विशेष रुपसे स्मरणीय है। जाति के यह मुसलमान दिल्ली के पठान थे किन्तु वास्तव में यह वैष्णव मतके भक्त और **विट्ठलनाथजी के शिष्य थे**। २५२ वैष्णवोंकी वार्ता में इनका भी चरित्र दिया हुआ है पहले इनका आचरण ठीक न था किन्तु वैष्णव हो जाने पर यह सुधर गये। इन्होने श्रृंगाररस की बडी उत्तम कविता की है और प्रेम का बहुत ही उत्कृष्ट वर्णन प्रेमवाटिका नामक ग्रंथ में दिया है। इनका सुजान रसखान नामक ग्रथ बडा प्रसिद्ध है। यह श्रीकृष्ण के आनंदमें मग्न रहते थे। और उच्च कोटिके कवि थे। "

" वैष्णव संप्रदाय भी धन्य है जिसने एक मुसलमान को भी कृष्ण भक्ति का इतना उत्कृष्ट कवि बना दिया और उसको अपने में मिला लिया। "

યાદ રાખો કે જો વાર્તા-કીર્તન આદિ પ્રકટ ન હોતે તો આ અન્ય તટસ્થ પુરૂષો દ્વારા વૈષ્ણુવ સંપ્રદાયનું ગૌરવ જાહેરમાં ન આવત.

" શાસ્ત્રસ્થિતિ " નામની પુસ્તિકામાં વાર્તા વિરૂદ્ધ જે ગંદા અભિપ્રાયો જે જે વ્યક્તિઓએ આપ્યા છે તેઓ આ ઉપરોક્ત સાંપ્રદાયિક અને અન્યસાંપ્રદાયિક એવં તટસ્થ **વિદ્વાનોના** અભિપ્રાયો આગળ કેટલા ટકી શકે છે ? તે વાંચકો જ નિર્ણય કરી લે. અસ્તુ.

હજુ ભાષા અને ભાષાસાહિત્ય માટે ઘણું લખવાનું રહી જાય છે પરંતુ હાલમાં સમય અને સ્થલ સંકોચથી તે અપૂર્ણજ રાખ્યું છે. અમે બહુજ જલ્દી વાર્તા ભાગ ૨ જો "**શ્રીવિઠ્ઠલેશ્વર ચરિતામૃત અને અષ્ટછાપ**" **એ** નામનો મોટો ગ્રન્થ બહાર પાડવાનો વિચાર રાખ્યો છે. તેમાં ઉપરોક્ત વિષયોનો સમાવેશ કરવામાં આવશે.

શ્રી દ્વારકેશો જયતિ

" વાર્તા-માહાત્મ્ય "

(આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિથી)

હવે આધ્યાત્મિક દૃષ્ટિથી જોઈએ તો પણ આ વાર્તાનું મહત્ત્વ અત્યંત છે. જરા પણ અતિશયોક્તિ વિના અમે એમ કહી શકીએ છીએ કે વાર્તા વિના સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતોની પૂર્ણતા થતી નથી જ. કારણ એ છે કે કોઈ પણ વસ્તુ અથવા પ્રતિજ્ઞારૂપ સિદ્ધાંતને સિદ્ધ કરવાને હેતુ અને દૃષ્ટાંત એ બેની આવશ્યકતા રહેલી છે. તે બે વિના પ્રતિજ્ઞાની પૂર્તિ થતી નથી જ. જેમકે વેદમાં શ્રુતિ કહે છે કે "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" આ તો વેદે પ્રતિજ્ઞા અથવા સિદ્ધાંત રૂપે કહ્યું કે આખું જગત બ્રહ્મરૂપ છે. એ પ્રતિજ્ઞાના હેતુમાં વેદ કહે છે કે " तज्जलानिति " એટલે દરેક વસ્તુની ઉત્પત્તિ અને લય બ્રહ્મમાંજ થાય છે માટે તે જગત બધું બ્રહ્મરૂપ છે. અહિં સુધી તો પરોક્ષવાદ થયો પરંતુ આ પ્રતિજ્ઞાનું પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત વેદમાં નથી કિંતુ શ્રીભાગવતમાં છે. (શ્રીકૃષ્ણે મૃતિકા-ભક્ષણ સમયે પોતામાં સર્વ બ્રહ્માંડને દેખાડયું છે તે.) એટલે શ્રી ભાગવત, વેદ પ્રતિપાદ્ય સિદ્ધાન્તના પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંતરૂપ છે માટે વેદરૂપ વૃક્ષના ફલરૂપે તેને ગણવામાં આવ્યું છે. પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત વિના સિદ્ધાન્તની પૂર્તિ થતી જ નથી. એટલે પ્રત્યક્ષ દૃષ્ટાંત વિના એ સિદ્ધાન્ત જલ્દી દરેક મનુષ્યના ગળે ઉતરે નહિજ. માટે દૃષ્ટાંતની ખાસ જરૂરત છે. વેદમાં દૃષ્ટાંત નથી માટે એ પરોક્ષવાદી છે. વેદની પ્રતિજ્ઞાઓના દૃષ્ટાંતોરૂપે શ્રીમદ્દભાગવત છે. માટેજ શ્રીઆચાર્ય-ચરણે શ્રીમદ્દભાગવત શાસ્ત્રને પ્રસ્થાન ચતુષ્ટયમાં ગણ્યું છે અને તેનું મહત્ત્વ વેદ કરતાં પણ વધુ રાખ્યું છે. કારણ કે તે (શ્રીભાગવત) દ્રષ્ટાંતરૂપ હોઈ પ્રત્યક્ષવાદી છે. જેથી તે વિશેષ પ્રમાણરૂપ છે. આ કારણને લઇનેજ શ્રીઆચાર્યચરણે વેદ ઉપર ભાષ્ય નહિં કરતાં શ્રીમદ્-ભાગવત ઉપર ટીકા કરી, તેને (શ્રીભાગવતને) સંસારભરમાં ઉચું પદ આપ્યું. અને પ્રત્યક્ષ દ્રષ્ટાંતરૂપ હોઈ તેને પુરૂષોત્તમરૂપ ગણ્યું.

તેજ પ્રકારે આપણી આ વાર્તાઓ પુષ્ટિસિદ્ધાન્તની પૂર્તિમાં પ્રત્યક્ષ દષ્ટાંતરૂપે રહેલી હોઇ સર્વ સિદ્ધાન્તાત્મક ગ્રંથોમાં તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા સહજ સિદ્ધ થાય છે.

યદિ વાર્તાઓ સંપ્રદાયમાં ન હોત તો પુષ્ટિસંપ્રદાયના સિદ્ધાન્તોની પુષ્ટિમાં ઉણપજ રહેત. તે ઉપરોક્ત કથનથી સર્વ કોઈ જાણી શકે છે. વાર્તાઓ પ્રત્યક્ષવાદી હોવાથી તે સિદ્ધાન્તોના તાદશ ફલરૂપ છે.

આ વાર્તાઓ આપ્તવાક્ય રૂપ છે તે વાત પહેલાં સિદ્ધ થઈ ચુકી છે. એટલે તે શબ્દાત્મક પ્રમાણથી પણ ઉચું પદ પ્રાપ્ત કરે છે.

પ્રમાણમૂર્દ્ધન્ય આપ્તવાક્ય રૂપ વાર્તાઓ

ન્યાય દર્શનમાં કહેલાં અનુમાનાદિ અન્ય પ્રમાણો અંતમાં શબ્દ પ્રમાણમાંજ વિલીન થતાં હોવાથી અહીં અન્ય પ્રમાણોના કથનની આવશ્યકતા રહેતીજ નથી. અને શબ્દપ્રમાણ કરતાં આપ્તપ્રમાણ દ્વિગુણીત બલ યુક્ત છે તે આગલ કહી ગયા છીએ. એટલે આ આપ્તવાક્યના સમૂહરૂપ વાર્તાઓ પ્રમાણમૂર્દ્ધન્ય હોઈ સિદ્ધાન્ત સમજાવવામાં સર્વોત્કૃષ્ટ પદને પ્રાપ્ત કરે છે તે નિર્વિવાદ છે.

આ વાર્તાઓમાં જે આધ્યાત્મિક અદ્વિતીય તત્ત્વજ્ઞાન રહેલું છે તે હરેક જ્ઞાનવાન પુરૂષ વાંચીને સહજ સમજી શકે તેમ છે. એટલે હાલ સ્થલ સંકોચથી અહીં વિશેષ લખતા નથી. વાર્તા ભાગ ૨ જા માં તેનો પૂર્ણપણે ઉલ્લેખ કરવામાં આવશે.

નિર્ગુણ-સગુણ (ભક્તોનો) ભેદ

સર્વાત્મભાવવાળા આત્મારામ ભકતો તે નિર્ગુણભકતો અને ક્રિયા-પ્રાધાન્ય કામભાવવાળા (દ્વૈતભાવવાળા) ભકતો તે સગુણભક્તો જાણવા. આ વસ્તુ સમજવા માટે શ્રીહરિ૦કૃત "सर्वात्मभाव निरूपणम्" ગ્રન્થ જુઓ.

નિર્ગુણ ભકતો, અન્ય ભક્ત નિરપેક્ષ હોવાથી સ્વતંત્ર કહેવાય છે અને તેઓ કેવલ ભાવમાંજ વિલસે છે. જ્યારે

સગુણ ભક્તો, અન્ય ભક્ત સાપેક્ષ હોઈ દ્વૈતભાવનાવાળા હોય છે. એટલે તેઓ બાહ્યક્રિયાપ્રાધાન્ય લીલામાં વિલસે છે. હાલતો આટલું જ જાણવું બસ છે. આ સંબંધી વિશેષ વાર્તા ભાગ ૨માં આપવામાં આવશે.

આ વાર્તામાં આવેલાં ઐતિહાસિક સ્વરૂપોની યાદી

વાર્તા સં.	સ્વરૂપોનાં નામ.	કોનાં સેવ્ય.	હાલ ક્યાં બિરાજે છે.
૩	શ્રી દ્વારકાનાથજી	શ્રી મહાપ્રભુજી	કાંકરોલી
૪	શ્રી મથુરાનાથજી	,,	કોટા
૫	છોટા મથુરેશજી	,,	,,
૮	શ્રી બાલકૃષ્ણજી	,,	મુંબઈ



॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

" વાર્તા—રહસ્ય "

વાર્તાના સ્વરૂપની પરંપરા અને તેની સર્વોત્કૃષ્ટતા:-

(આધિદૈવિક દૃષ્ટિથી)

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे ।
रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः ॥ (निबंध)

રૂપ અને નામ એમ બે પ્રકારે ક્રીડાકર્તા પુરુષોત્તમનું સ્વ
બીજ રૂપનામાત્મક સ્વરૂપ તે ગાયત્રી, વૃક્ષરૂપ નામાત્મક સ્વ
તે વેદ, અને ફલરૂપ રસરૂપ નામાત
સ્વરૂપ તે શ્રીમદ્‌ભાગવત. આસ્વાદ
પ્રતાપે કરીને બીજથી અને વૃક્ષથી
રસાત્મક ફલનો સમુત્કર્ષ સર્વા

શ્રીમદ્‌ભાગવતના સ્વરૂપની પરંપરા

ગોચર છે. તેથી એક રીતે બીજાત્મક ગાયત્રીથી અને કલ્પદ્
વેદથી પણ નિર્ગલિત તત્ફલ રસાત્મક શ્રીમદ્‌ભાગવતનો
સહજ સિદ્ધ થઈ રહે છે.

કાવ્યમાં લોકોને સમજાવવા માટે રૂપક બતાવાય છે
કલ્પદ્રુમ આદિ શબ્દો અલંકારરૂપે કહેવામાં આવ્યા નથ
કે શ્રીમદ્‌ભાગવત તો સ
સારરૂપ હોવાથી સર્વોદ્ધા
તેમાં આવા અલંકારોની
ઠીક નથી. પણ સાક્ષાત્

શ્રીમદ્‌ભાગવતનું અલૌકિકત્વ અને નિત્યત્વ

વાનના જ્ઞાનના અવતારરૂપ હોવાથી તેમના જ્ઞાનમાં
કલ્પવૃક્ષરૂપે સ્ફુરી, તે પ્રમાણથી જ તેના શબ્દો અ
થાય તો પ્રમાણ ન ગણાય, તેથી (વ્યાપી) વૈકુણ્ઠમ

તેના ફલરૂપ શ્રીમદ્ભાગવત પણ ત્યાં નિત્ય છે, જેને વ્યાસરૂપે ભગવાન કરુણા કરી સર્વોદ્ધારાર્થ પધાર્યા ત્યારે સાથે લાવ્યા છે. રસરૂપ હોવાથી તેમના અંતઃકરણમાં સ્થિત હતું, તે સ્વપુત્ર શુકના અંતઃકરણમાં સ્વાન્તઃકરણદ્વારા આપ્યું. અને તે શુકદેવજીદ્વારા પૃથ્વી પર આવ્યું. અતઃ આ શ્રીમદ્ભાગવત અલૌકિક નિત્ય અને અનાદિ છે.

દ્વાદશસ્કંધાત્મક શ્રીભાગવતમાં દશવિધા સર્ગાદિ આશ્રયાન્તા લીલાનું સુનિપુણ પ્રતિપાદન છે. આ દશવિધા લીલાએ કરીને પણ

શ્રીમદ્ભાગવતનું આધિદૈવિક સ્વરૂપ અને તેની લીલા

વિશિષ્ટ શુદ્ધ પુરુષોત્તમનું હૃદય તો નિરોધલીલા જ છે. તેથી નિરોધલીલા પ્રતિપાદક દશમસ્કન્ધ હૃદયવત્ પરમ નિગૂઢ છે. ૮૭ અધ્યાયના આ હૃદયાત્મક પરમ નિગૂઢ નિરોધસ્કન્ધમાં જન્માદિ પાંચ પ્રકરણ છે.

તે પાંચ પ્રકરણ મધ્યે દ્વિતીય પારિભાષિક તામસ પરંતુ વસ્તુતઃ નિર્ગુણ પ્રકરણમાં નિરોધદાનમાં મુખ્ય અધિકારી શ્રીવ્રજજનોનો જ પ્રસંગ પ્રશંસાયો. વસ્તુતઃ તો પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રભુનો પ્રાદુર્ભાવ જ સાધનનિષ્ઠને અર્થે નથી, પરન્તુ કેવલ નિઃસાધનને જ અર્થે છે, તેથી કેવલ નિઃસાધન સ્વરૂપાકાંક્ષી શ્રીવ્રજજનનાં પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ પણ સર્વેશ્વર સર્વાત્મા પ્રાદુર્ભૂત પ્રભુસ્વરૂપ સ્વતઃજ થઈ જાય છે. એ સિદ્ધાન્ત સ્પષ્ટ કરવાને આ તામસ પ્રકરણના પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ એમ ચાર અવાન્તર વિભાગ છે.

નિજ સ્વરૂપપ્રાકટ્યથી અનન્તર પ્રમાણાત્મક બાલલીલાનો સ્વીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને પ્રેમનું દાન કરે છે, પ્રમેયાત્મક ગોચારણાદિ લીલાનો અંગીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને આસક્તિનું દાન કરે છે, અને સાધનાત્મક શ્રીગોવર્ધનોદ્ધારણાદિ લીલાનો અંગીકાર કરીને શ્રીવ્રજજનને વ્યસનનું દાન કરે છે. આ પ્રકારે નિઃસાધન

શ્રીવ્રજજનને પ્રમાણરૂપ પ્રેમ, પ્રમેયરૂપા આસક્તિ અને સાધન-રૂપ વ્યસનનું-સર્વાત્મભાવનું-પણ સ્વરૂપતઃ દાન કરીને બ્રહ્માનંદથી પણ અધિક પરમ વિમલ ભજનાનન્દાત્મક પુષ્ટિમહારસરૂપ શ્રી રાસોત્સવાદિ અવિચલ નિત્યલીલામાં મધ્યપાતી પ્રવેશરૂપ ઉત્કૃષ્ટોત્કૃષ્ટ ફલનું સહજ દાન કરે છે.

નિરોધના આ પ્રકારના દ્વિતીય તામસપ્રકરણના મધ્યમાં મધ્ય-મણિવદ્ દ્વિતીય અવાન્તર પ્રમેયપ્રકરણના અન્તમાં સર્વાન્તર મધ્ય-નાયક અસ્મત્સર્વસ્વ શ્રીવેણુ-નિનાદનો સર્વોપકારક પ્રાદુર્ભાવ થાય છે. જે સ્વરૂપાત્મક સુધા શ્રીઆચાર્યચરણના અવલંબન વિના પુષ્ટિમાર્ગીય પ્રભુના પણ રસાત્મક સ્વરૂપમાં આધિદૈવિકતા ન સમર્પાતાં અગ્રિમા સર્વ લીલાનો આવિર્ભાવ સુદુર્ઘટ થઈ જાય.

સુધાનું મધ્યત્વ અને આધિપત્ય

આ પ્રકારે સુધાએ કરીને જ રસાત્મક ફલસ્વરૂપ શ્રીભાગ-વતનો ઉપર્યુક્ત કથિત બીજરૂપ ગાયત્રી અને કલ્પવૃક્ષ રૂપ વેદથી પણ સમુત્કર્ષ સિદ્ધ થાય છે. તે સુધાનું સ્વરૂપ તે શ્રીસુબોધિનીજી અને તેનો મનથી અનુભવાતો નિર્ગુણ ભાવાત્મક વિલાસ તેજ આ વાર્તાઓ. જેવા પ્રકારે શ્રી ભાગવત વૈકુણ્ઠમાં નિત્ય ફલરૂપે બિરાજે છે અને તે શ્રીશુકદ્વારા ભૂતલમાં પણ સર્વોદ્ધારાર્થ પ્રકટયું, તેવા જ પ્રકારે આ મૂર્તિમંત સુધા અને તેનો ભાવાત્મક નિર્ગુણ વિલાસ નિત્યલીલામાં પરમ રસ રૂપે-ભાવરૂપે-સ્થિત છે. અને તે શ્રીગોકુલેશદ્વારા ભૂતલમાં દૈવ-જનોદ્ધારાર્થ પ્રકટયો છે. શ્રીશુક અક્ષરબ્રહ્માત્મક છે ત્યારે શ્રી ગોકુલેશ સાક્ષાત્ શ્રીગોકુલેશસ્વરૂપ છે. અતઃ શ્રીશુકદ્વારા પ્રકટિત ફલમાં સુધા અવ્યક્ત રૂપે છે. જ્યારે અહીં વ્યક્ત અને નિરાવરણ ક્રીડારૂપ છે.

વાર્તાનું અલૌકિક સ્વરૂપ અને તેની પરંપરા

આથી જ વાર્તાઓ રૂપી શ્રીમદાચાર્યચરણનો આધિદૈવિક નિર્ગુણ ભાવાત્મક વિલાસ, એ ફલનું યે ફલ, રસનો યે રસ, ગાયત્રીની યે ગાયત્રી, દર્શનનું પણ દર્શન અને તત્ત્વનું પણ તત્ત્વ છે. જેથી શ્રીગોકુલેશે વાર્તાને શ્રીસુબોધિનીજીની કથાના પણ ફલ રૂપે વર્ણવી છે.

વાર્તાની સર્વોત્કૃષ્ટતા

શ્રીભાગવત રસાત્મક ફલ છે અને તે ફલના રસના આસ્વાદ–સુધા–ના પરમ ભાવરૂપ આ વાર્તાઓ છે. જેમ શ્રીભાગવત સારસ્વતકલ્પીય અવતારલીલાના પ્રતિપાદનરૂપ છે, તેમ આ વાર્તાઓ પણ નિત્યલીલાસ્થિત ભાવાત્મક સ્વરૂપની ભાવમયી લીલાના પ્રતિપાદન રૂપ છે. જેમ શ્રીભાગવતના શ્રવણમાત્રથી સમગ્ર લીલાસહિત શ્રીકૃષ્ણ હૃદયમાં પધારે છે, તેમ આ વાર્તાઓના શ્રવણમાત્રથી જ શ્રીકૃષ્ણની લીલાના અનુભવમાં મુખ્ય એવા પરમફલરૂપ ભાવનું દાન થાય છે. અર્થાત્ શ્રીવલ્લભાધીશનું ભાવાત્મક સ્વરૂપ હૃદય-સ્થિત થાય છે.

આ પ્રકારે વાર્તાના સ્વરૂપની પરંપરા કહીને હવે તેમાં રહેલા મૂર્તિમંત સુધાસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો સૂક્ષ્મ ઉલ્લેખ કરીએ છીએ.

શ્રીઆચાર્યજીનું આધિ-દૈવિક સ્વરૂપ.

“પૂર્ણ બ્રહ્મ શ્રીલક્ષ્મણસુત” અતએવ આપ પૂર્ણ બ્રહ્મ **शृंगाररसरसो हरिः रसो वै सः** રૂપસુધાનું સ્વરૂપ છે. તે મુખ્ય સુધા પુરુષાકાર છે. “**बर्हापीडं नटवरवपुः**” આ શ્લોકપ્રતિપાદિત સ્વરૂપ છે, દેહભાવરહિત રસસ્વરૂપ છે. જેમ દેહમાં વીર્ય મુખ્ય તેમ ભગવત્સ્વ-રૂપમાં સુધા. જેમ દેહમાં વીર્યસાર મસ્તકમાં રહે તેમ અહીં સુધા, “આનંદમાત્રકરપાદમુખોદરાદિ” સ્વરૂપના સારભૂત હોઈ અધરમાં સ્થિત છે.

આ પ્રકારે શ્રીઆચાર્યજીનું સુધાસ્વરૂપ કેવલ **ભક્તમાત્રૈક**–અનુભવગમ્ય છે. તેમાં અત્યંતાંતરંગ કોટિમાં વિરલ પદ્મનાભદાસાદિનો અનુભવ પ્રમાણસ્વરૂપ છે—

આ સુધાસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજી વિના પુષ્ટિપ્રભુની સર્વ રસમયી લીલાનો પ્રાદુર્ભાવ જ સુદુર્ઘટ છે. તે–સુધા–વિપ્રયોગાત્મક અને સદાનંદરૂપ હોવાથી કૃષ્ણસ્વરૂપ છે. અતઃ શ્રીગુસાંઈજી વલ્લભાષ્ટકમાં "**वस्तुतः कृष्ण एव**" એમ આજ્ઞા કરે છે.

શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપની મુખ્યતા.

આ સુધા મુખ્ય સાત સ્વરૂપે વિલસે છે, તેનો વિલાસ સ્વતંત્ર નિરપેક્ષ અને સ્વછન્દ છે. તેનાં સાત સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે.

શ્રીઆચાર્યજીનાં મુખ્ય સાત સ્વરૂપ અને તેમની સ્થિતિ.

૧ મુખ્ય પુરુષાકારસુધા. ૨ આનંદસ્વરૂપ-ભગવદ્‌ભાવરૂપ કૃષ્ણ સ્વરૂપ–૩ પરમાનંદસ્વરૂપ–ગૂઢસ્ત્રીભાવરૂપ સ્વામિનીસ્વરૂપ–૪ કૃષ્ણાસ્યસ્વરૂપ–ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ–૫ વૈશ્વાનરસ્વરૂપ–તાપાત્મક–૬ વલ્લભસ્વરૂપ–લીલામધ્યપાતી દાસ્યરૂપ–અને ૭ આચાર્ય સ્વરૂપ–સન્મનુષ્યાકૃતિ, ભક્તિમાર્ગાબ્જમાર્તંડ અને વાક્‌પતિસ્વરૂપ.

આ સાતે સ્વરૂપથી શ્રીઆચાર્યજીનો ભિન્ન ભિન્ન પ્રકરણનો સ્વતન્ત્ર વિહાર સાંપ્રદાયિક સમગ્ર ગદ્યપદ્યાત્મક ભાષાસાહિત્યમાં વિશેષતઃ વાર્તા–કીર્તનમાં બિરાજે છે. અતઃ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીનુંજ સ્વરૂપ છે.

જે પ્રકારે દ્વાદશસ્કન્ધાત્મક શ્રીભાગવત "**द्वादशो वै पुरुषः**" શ્રુત્યનુસાર દ્વાદશ અંગરૂપ શ્રીહરિનું સ્વરૂપ છે, તે પ્રકારે આ વાર્તાઓ પણ દ્વાદશ અંગ અને તેના ૭ ધર્મ અને એક ધર્મી મળી ૮૪ લીલાત્મક રૂપ શ્રીઆચાર્યજીનુંજ સ્વરૂપ છે.

આ પ્રકારે વાર્તાની સમુત્કર્ષતા (ઉત્તમતા) સહજ સિદ્ધ છે.

શ્રીઆચાર્યજીના દ્વાદશ અંગ અને તેની ભાવાત્મક લીલાનું કોષ્ઠક:—

શ્રીઆચાર્યજીનાં અંગ.	લીલા	વૈષ્ણવોનાં નામ.
હૃદય (મધ્ય)	નિરોધ લીલા	શ્રીદામોદરદાસ હરસાનીજી.
શિર	(પુષ્ટિ) મુક્તિ	શેઠ પુરુષોત્તમદાસ.
૨ હસ્ત	ઊતિ (પુષ્ટિ)આશ્રય	પદ્મનાભદાસ–ગદાધરદાસ
૨ સ્તન	મન્વંતર(પુષ્ટિ)ઈશાનુકથા	નારાયણદાસ–ગર્જનધાવન
૨ સાથલ	સ્થાન (પુષ્ટિ) પોષણ	પૂરણમલ્લ–કન્હૈયાશાલ
૨ કર	સર્ગ (પુષ્ટિ) વિસર્ગ	માધવભટ્ટ–યાદવેંદ્રદાસ
૨ પાદ	અધિકાર(પુષ્ટિ) સાધન	પ્રભુદાસજલોટા–દિનકરશેઠ

ઉપર્યુક્ત પ્રત્યેક અંગસ્વરૂપ વૈષ્ણવોના સાત ભેદ છે. તેમાં ૧ ધર્મી અને ૬ ધર્મો. ઐશ્વર્ય, વીર્ય, યશ, શ્રી, જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય છે. તે તે ધર્મ અને ધર્મીવાળા વૈષ્ણવોની વાર્તાઓમાં સમજાવવામાં આવ્યું છે.

આ પ્રકારે સમગ્ર વાર્તારૂપ શ્રીઆચાર્યજીની ભાવાત્મક લીલાને જે ધીર પુરુષ શ્રદ્ધાપૂર્વક હૃદયમાં ધારણ કરે છે; તેના ઉપર શ્રી આચાર્યજી પ્રસન્ન થાય છે અને તે ભક્તના હૃદયમાં સ્થિત થઈ પોતાના પરમ નિગૂઢ સ્વરૂપનો અનુભવ કરાવે છે.

તેવા ભક્તોનો મહિમા કોણ કહી શકવાને સામર્થ્યયુક્ત છે?

શ્રીભાગવતમાં લૌકિકી, પરમત અને સમાધિભાષા રહેલી છે. તેજ ત્રણ ભાષાઓ વાર્તાઓમાં ભૌતિક ઇતિહાસ–લૌકિકી–શાસ્ત્રાર્થ–પરમત અને રહસ્ય–સમાધિ–રૂપે રહેલી છે. વાર્તાઓમાં પહેલી બે ભાષાઓ સૂક્ષ્મ રૂપે છે. જ્યારે ત્રીજી સમાધિરૂપ રહસ્યભાષા પૂર્ણપણે છે. શ્રીગોકુલનાથજીએ વાર્તાઓની

વાર્તાની ત્રણ ભાષા.

ત્રણે ભાષાના ત્રણ ઐતિહાસિક ગ્રંથો કરેલા છે અને તે *નિજવાર્તા, ઘરૂવાર્તા, અને બેઠકચરિત્ર એ નામથી પ્રસિદ્ધ છે. જેથી આ ત્રણે ગ્રન્થ વાર્તાની ટીકારૂપ છે.

શ્રીઆચાર્યજીનુ સ્વરૂપ ભાવાત્મક છે. અને તે ભાવનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે છે :—

ભાવ એટલે કેવલ (ધર્મી) વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ અને તેજ–પુષ્ટિમાર્ગમાં–કૃષ્ણાસ્ય (શ્રીઆચાર્યચરણ) કહેવાય છે. અને તેજ પુષ્ટિ-ભક્તિ અથવા સ્વતન્ત્ર ભક્તિ તરીકે પ્રસિદ્ધ છે. આ ભાવનું રમણ પણ ભાવાત્મકજ છે. જેથી તે ક્રિયાપ્રાધાન્ય અને ઇન્દ્રિયપ્રાધાન્ય એવા કામભાવ-વાળી સંયોગાત્મક લીલાથી પર છે. આ ભાવ ભાવનાથી જ સિદ્ધ થાય છે. અન્ય ભક્તસાપેક્ષ નિત્યલીલા એજ આ સંયોગાત્મક લીલા જાણવી. તેના રસનો અનુભવ અલૌકિક ઇંદ્રિય અને ક્રિયાદ્વારા અનુભવાય છે. જ્યારે સર્વાત્મભાવવાળી અન્યભક્તનિરપેક્ષ નિત્ય લીલા–ભાવાત્મકલીલા–ના રસનો અનુભવ કેવલ ભાવનાદ્વારા જ પ્રભુ કરાવે છે. આ ભાવપ્રાપ્તિમાં કેવલ વિરહની ભાવના જ એક માત્ર સાધનરૂપ છે. આમાં લીલાની ભાવના, સ્વરૂપની ભાવના સાધનરૂપ મટી જઈ ફલરૂપ થાય છે. આમાં જ્ઞાન ગુણગાન આદિ બાધક છે. અને આ કેવલ–ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક--ભાવનો અનુભવ એજ પરમ ફલ જાણવું.

ભાવનું સ્વરૂપ અને તેનું સર્વોત્કૃષ્ટ ફળ

આ ભાવ પ્રથમ તાપરૂપ થઈ ભક્તના લૌકિક દેહને સ્વ તાપ-દ્વારા શુદ્ધ કરી અલૌકિક કરે છે. આજ દેહમાં નવો દેહ કરે છે. અગ્નિ જેમ સ્વપ્રવેશથી કાષ્ઠને તેજોમય બનાવી દે છે, તેમ આ તાપ

* નિજવાર્તા=ઇતિહાસરૂપ, ઘરૂવાર્તા=રહસ્યભાષા. બેઠકચરિત્ર=(વિશેષતઃ) પરમતરૂપ.

પણ ભક્તના દેહને યથાસ્થિત રાખી અલૌકિક તેજોમય–આધારભૂત–બનાવે છે. વિપ્રયોગાગ્નિસ્વરૂપાત્મક હોવાથી દેહનો નાશ થતો નથી. જ્યારે દેહ તેજોમય થઈ આધારભૂત બને છે ત્યારે તે ભાવાત્મક વિપ્રયોગાગ્નિ ભક્તના સમગ્ર આકારમાં સર્વલીલાવિશિષ્ટ સ્વરૂપે પ્રવેશ કરે છે. દૃષ્ટાંત રૂપેઃ—ભક્તના હસ્તમાં હસ્ત રૂપે, પાદમાં પાદ રૂપે એમ સર્વ અંગોમાં જાણવું. ત્યારે તે ભક્ત અલૌકિક તદ્રૂપતાને પામે છે. આ પ્રવિષ્ટ વિરહાત્મા પ્રભુ મહાદુઃખે અનુભવાય છે. આ ભાવ સ્થિર થયા પછી તેમાં વિચિત્રતા પ્રાપ્ત થાય છે અને તે બે પ્રકારની છે. વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય.

જેમ મહાસમુદ્રમાં ડુબેલાને સમુદ્રની લ્હેરોમાં મજ્જન ઉન્મજ્જન થાય છે, તેમ વિરહભાવરૂપી રસસિન્ધુમાં ડુબેલા આ રસિક ભક્તને વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય સહજ સિદ્ધ થઈ જાય છે. આ ભક્તને પ્રભુ વિના જરાયે ચેન પડતું નથી. તે વિકલ થઈ તદ્રૂપ બની જાય છે. અતઃ તે ભક્ત તે વિપ્રયોગાગ્નિમાં પ્રવેશ કરે છે. આનું નામજ ભાવાત્મક રમણ કહેવાય છે. ત્યારે ભક્ત અસ્વાસ્થ્યે કરીને સ્વયં કૃષ્ણ–સદાનંદ–રૂપનો અનુભવ કરે છે. *

આ ભાવ તેજ સર્વાત્મભાવ કહેવાય છે. જેમાં દેહાદિકની સ્ફુરણા નથી થતી એટલે પ્રભુમાં અનન્ય ભાવ થાય એનેજ સર્વાત્મભાવ કહેવામાં આવે છે. આ અનન્ય

સર્વાત્મભાવનું સ્વરૂપ

ભાવમાં હું સમગ્ર પ્રભુનો છું એવી શુદ્ધ અદ્વૈતની ભાવના રહેલી છે. આમાં ઇંદ્રિયોના વિષયોનો સારી રીતે ત્યાગ છે. આમાં દેહ ઇંદ્રિય આદિના પૃથક્ત્વનું ભાનજ રહેતું નથી.

આ સર્વાત્મભાવ, સ્વરૂપાનંદ અને ભાવાનંદથી પણ ઓળખાય

---

* श्याम रटत श्यामा श्याम भईरी । इत कृष्ण उत कृष्ण जित देखो तित कृष्ण मयीरी ।

છે. આના રમણમાં જેટલી ક્રિયા આદિ છે તે કેવલ ભાવમાત્રજ જાણવી. અને આ આનંદ આત્માદ્વારાજ અનુભવાય છે. આ ભાવ આનંદરૂપ હોઈ રસરૂપતાને પામેલો છે અને તે રસસ્વરૂપાત્મક છે. અને તે રસ–શૃંગારરસાત્મા હરિરૂપ છે. આ સ્વરૂપના પ્રત્યેક અવયવ મુખ–ચરણ આદિ સર્વ આનંદરૂપ છે. તેના ઐશ્વર્યાદિ બધા ધર્મો પણ આનંદાત્મકજ છે. આ પ્રભુના ધર્મો અને શક્તિઓ પણ પ્રભુરૂપ છે. સર્વ સ્વરૂપાત્મક આનંદ છે. આ શૃંગારરસના દ્વિવિધ ભેદ છે. સંયોગ અને વિપ્રયોગ. ઉભય રસ શૃંગારરસરૂપજ છે. સંયોગ રસ ધર્મસહિત હોવાથી ક્રિયાત્મક છે અને તે લોકવેદમાં પ્રસિદ્ધ છે. જ્યારે વિપ્રયોગરસ ધર્મીરૂપ, ભાવાત્મક અને કેવલ છે તેથી તે અનુભવથીજ જાણી શકાય છે.

આ ભાવાત્મક રસરૂપ પ્રભુના વ્રજમાં રહેલા ભાવાત્મક સર્વ પદાર્થો હમેશાં એક ભાવથી યુક્ત છે. અને તે સર્વે ભગવદ્રૂપ છે. તેની સર્વ સામગ્રી ભાવરૂપજ છે.

ગંગાજીની માફક ભાવનાં ત્રિવિધ સ્વરૂપ છે. આધિદૈવિક, આધ્યાત્મક અને આધિભૌતિક.

ભાવનું વ્યાપકત્વ, વર્ચસ્વ અને સર્વોત્કૃષ્ટત્વ

આધિદૈવિકઃ–સ્વયં ભક્તિ (ભાવ) રૂપ છે. અને ભક્તિ એજ પુષ્ટિ છે. આધ્યાત્મિકઃ–ભાવનારૂપ છે. અને તે માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ છે. આધિભૌતિકઃ–ક્રિયારૂપ છે અને તે કર્મસ્વરૂપ છે, જેમ ગંગાજીના આધિભૌતિક સ્વરૂપમાં આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિકની સ્થિતિ છે, તેમ ક્રિયામાં (કર્મરૂપમાં) ભાવના–માહાત્મ્યજ્ઞાન–અને ભાવની–ભક્તિની–સિદ્ધિ રહેલી છે. આ ક્રિયા તે કર્મરૂપ હોઈ સદાચારથી યુક્ત શ્રીકૃષ્ણની સેવા તેજ છે. એટલે ભૌતિક તનુજાવિત્તજારૂપ ક્રિયાત્મક સેવામાં સ્વરૂપના

માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ આધ્યાત્મિક ભાવનાના સંબંધે કરીને, તે ભૌતિક-સેવામાં આધિદૈવિકી ભાવાત્મક–માનસી–સેવાની સિદ્ધિ રહેલી છે. તનુજાવિત્તજા વિના માનસી અપ્રાપ્ય છે.

આ પ્રકારે અંતરંગલીલાસંબંધી ભાવનાં ત્રણ સ્વરૂપ કહ્યાં. હવે બહિરંગલીલાસંબંધી ભાવનાં ત્રણ સ્વરૂપ આ પ્રકારે છેઃ—

આધિભૌતિકમાં કલ્પનારૂપે ભાવની સ્થિતિ છે.

આધ્યાત્મિકમાં વાસનારૂપે ભાવની સ્થિતિ છે.

આધિદૈવિકમાં સત્યરૂપે ભાવની સ્થિતિ છે.

ભૌતિક સ્થૂલદેહાદિકલ્પનાદ્વારાજ સર્વત્ર કાર્યની સિદ્ધિ કરી શકે છે, અતઃ તે કલ્પના તે એક સત્તારૂપ છે. કલ્પનારૂપી સત્તાત્મક ભાવ વિના કોઈ પણ કાર્યની ઉત્પત્તિ કે સિદ્ધિ નથીજ. આધ્યાત્મિક સૂક્ષ્મદેહાદિ (પરલોકમાં પાપપુણ્યનો ભોગકર્તા)માં વાસનાનીજ ચૈતન્યાત્મક રૂપ સ્થિતિ છે. એટલે સૂક્ષ્મદેહ વાસનારૂપેજ અંતઃ સ્થિત છે. અને તે તત્ત્વરૂપ વાસના પોતાના બલથી કલ્પનાને ઉત્પન્ન કરી સર્વ કાર્ય કરાવે છે. આ રીતે તેનું પ્રધાનપણુ અને ચૈતન્યાત્મક રૂપ કહ્યું. આધિદૈવિક તે સત્ય આત્મારૂપ છે. આત્મા એ આનંદરૂપ છે અને તેની સત્તા સર્વત્ર છે. જગત તો તેની એક માત્ર કણિકાથી ચાલી રહ્યું છે. આ રીતે તે ભાવ સતચિદાનંદ કૃષ્ણરૂપ છે. અને તેના આનંદના સારભૂત કૃષ્ણાસ્ય–શ્રીવલ્લભાચાર્ય છે. અતઃ કૃષ્ણા-સ્યજ અંતરંગ બહિરગલીલામાં મધ્યપાતિ છે. તેમના વિના કોઇપણ લીલા સંભવતીજ નથી. અતઃ બાહ્યાભ્યતર જગત બ્રહ્મરૂપ હોઈ કૃષ્ણાસ્યના આધારથીજ સ્થિત છે.

આ રીતે ભાવસ્વરૂપ–કૃષ્ણાસ્યરૂપ–શ્રીવલ્લભનું વ્યાપકત્વ, વર્ચસ્વ, અને સર્વોત્કૃષ્ટત્વ કહ્યું.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

मंगलाचरणम्

श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

ये नित्यं परिभावयन्ति चरणौ श्रीवल्लभस्वामिनो
ये वा तद्गुणगानसेवनपरा ये सन्निधिस्थायिनः ।
ये वा तद्गतभावभावितमनोमोदान्विताः सन्ततं
तेषामेव सदास्तु दास्यमपरं किं वा फलं जन्मनः ॥१॥

અર્થઃ—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશનાં ચરણોનું ધ્યાન કરે છે, જેઓ તેના ગુણગાનમાં અને સેવનમાં તત્પર છે, જેઓ તેના સાન્નિધ્યમાં રહેનારા છે. વળી જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીમાં રહેલ ભાવથી ભાવનાવાળા મનના આનન્દથી હમેશાં યુક્ત છે, **તે ભગવદીયોનું દાસ્ય મને સદા થાઓ. જન્મનું બીજું શું ફળ છે?**

ये कृष्णास्यकृपायुताः प्रतिदिनं तन्मार्गचिन्तापराः
ये वा लौकिकवैदिकादि सकलं तत्कर्तृकं मन्वते ।
येषामन्यदुपास्यमेव न परं चित्ते समारोहति
स्वीयत्वेन वृतास्त **एव सततं मद्रक्षका भूतले ॥२॥**

અર્થઃ—જેઓ શ્રીકૃષ્ણ પ્રભુના મુખારવિન્દાવતાર શ્રીમહાપ્રભુજીની કૃપાથી યુક્ત છે. પ્રતિદિન તે મહાપ્રભુજીના માર્ગનો વિચાર કરવામાં તત્પર છે, અને જેઓ લૌકિક વૈદિક સઘળુ તેમણે કરેલું જ માની રહ્યા છે, અને જેઓના ચિત્તમાં બીજું ઉપાસ્ય ચઢતું જ નથી. જેઓનું પ્રભુએ સ્વકીયપણાથી વરણ કરેલ છે. **તે ભગવદીયોજ ભૂતલમાં મારા રક્ષક થાવ ॥ ૨ ॥**

ये तद्वाक्यविचारमात्रचतुरा गूढार्थबोधे रताः
ये विश्वासयुताः कृतौ च कथिते श्रीवल्लभस्वामिनः।
ये तद्वक्त्रदिदृक्षया हृदि सदा तप्ता विरक्ताः सुखे
तद्दास्यं प्रतिजन्म मे फलतु, किं सिद्धैः फलैरन्यतः ॥३॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશની કૃતિમાં તથા કથનમાં વિશ્વાસ વાળા છે, જેઓ તેના મુખારવિન્દનાં દર્શનની ઈચ્છાથી સદા હૃદયમાં તપ્યા કરે છે, અને સંસારના સુખમાં વિરક્ત છે, તેવા ભગવદીયોનું દાસ્ય પ્રતિજન્મ મને ફલીભૂત થાઓ, **બીજા સિદ્ધ થતાં ફલોથી શું?** ॥ ૩ ॥

ये श्रीवल्लभपादसेवनकृते दीनाः स्वदेहादिको–
पेक्षास्तत्परचेतनास्तदुदितं सर्वं स्वतः कुर्वते ।
येषां बुद्धिरहर्निशं समधिका तत्तोषणे सादरा–
स्तेषामेव सतां सदा चरणयोः पातः परं मे फलम् ॥४॥

અર્થ:—જેઓ શ્રીવલ્લભાધીશનાં ચરણકમલના સેવન માટે દીનતાવાળા છે, પોતાના દેહાદિકની ઉપેક્ષા કરનારા છે, તે શ્રીમહાજીમાં પરાયણ બુદ્ધિવાળા, તેઓશ્રીએ આજ્ઞા કરેલું બધું પોતે જાતે કરે છે; અને જેઓની બુદ્ધિ તે મહાપ્રભુને પ્રસન્ન કરવામાં અધિક આદરવાળી છે, તે **સત્પુરુષોના ચરણમાં પડવું તેજ મારે પરમ ફળ છે.**

ये वा तत्प्रियनन्दसूनुचरणासक्ताः पुनः स्वामिनो
दास्यं शुद्धतया तदीयहृदयाभिप्रायमातन्वते ।
ये जीवत्फलमेतदेव निखिलं बुद्ध्या सदा मन्वते
तेषामेव पदाम्बुजे मम रतिः सेवाफलं जायताम् ॥५॥

અર્થ:—જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીના પ્રિય નન્દનન્દનના ચરણોમાં આસક્ત છે. ફરી શ્રીઠાકુરજીનું દાસ્ય તેમના હૃદયના અભિપ્રાયને જાણીને શુદ્ધપણાથી કરે છે. અને જેઓ જીવવાનું બધું ફળ આજ છે એમ બુદ્ધિપૂર્વક માને છે, **તે ભગવદીયોનાં ચરણ કમલમાં સેવાના ફલરૂપ રતિ (પ્રેમ) મને થાઓ** ॥ ૫ ॥

ये तद्बोधनचातुरीकलनतः सन्तुष्टचित्ताः सदा
ये वा मानससेवनां तदुदितां मुख्यां परां जानते ।
ये 'दोषः सकलो निवृत्त' इति तद्विश्वासतो मन्वते
तेषामेव ममास्तु पादकमलद्वन्द्वे परा रेणुता ॥६॥

અર્થ:—જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીની સમજાવવાની ચાતુરીના વિચારથી સદા સન્તુષ્ટ ચિત્તવાળા છે અને જેઓ તે શ્રીમહાપ્રભુજીએ કરેલ માનસી સેવાને કેવલ મુખ્ય માને છે, જેઓ "મારો બધો દોષ નિવૃત્ત થયો છે" એમ તેઓશ્રી ઉપરના વિશ્વાસથી માને છે. **તે ભગવદીયોનાં બન્ને ચરણકમલમાં મને રજપણું થાઓ.**

ये गोपीपतिपादरेणुभजने श्रीवल्लभैकाश्रिता
ये वा दास्यपरम्परामुपगताः प्राप्ताः परां दीनताम् ।
ये "स्वीयं सकलं तदीय"मिति हृत्पङ्केरुहे मानयन्त्ये—
तेषामहमस्मि दासपदवीं प्राप्तः सदा जन्मनि ॥७॥

અર્થ:—જેઓ ગોપીપતિ શ્રીકૃષ્ણના ભજનમાં શ્રીવલ્લભાધીશના આશ્રયવાળા છે. જે દાસ્યની પરમ્પરાને પામ્યા છે, શ્રેષ્ઠ દીનતાને પ્રાપ્ત થયા છે. જેઓ હૃદયમાં બધું તે પ્રભુનું છે એમ માની રહ્યા છે. **સદાય જન્મમાં** (જન્મોજન્મે) **એવાઓની** દાસપદવીને **હું પ્રાપ્ત થયો છું.**

ये तद्रूपमहर्निशं स्वहृदये तापात्मकं सुन्दरं
साकारं सरसं रसात्मकतया ख्यातं हि जातं भुवि ।
नित्यं तत्परिचिन्तयन्ति सततं सङ्कीर्त्तयन्त्यादरात्
तेषां दैन्यभरेण मे प्रतिभवं दास्यं हि भूयात्फलम् ॥८॥

અર્થ:—જેઓ તાપાત્મક સુન્દર સાકાર સરસ રસાત્મકપણાથી પૃથ્વીમાં પ્રકટેલા અને પ્રસિદ્ધ, તે મહાપ્રભુજીના સ્વરૂપનું રાત્રિદિવસ ચિન્તન કરે છે અને આદરથી હમેશાં ગાય છે. **દીનતાના ભારથી પ્રતિભવ** (પ્રતિજન્મ) **તે ભગવદીયોનું** દાસ્યજ **મને થાઓ.** ૮

॥ इति श्रीहरिदासोक्तं दास्याष्टकं सम्पूर्णम् ॥

॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अथ चोरासी वैष्णवकी वार्ता श्रीगोकुलनाथजी कीए ताको भाव श्रीहरिरायजी कहत हे सो लिख्यते ॥

समग्र वार्ता के उपर **श्रीहरिरायजीकृत भावात्मक लेखः-**

चोरासी वैष्णव को कारण यह हे जो दैवी जीव चोरासी लक्ष योनि में परे हें ॥ तिनमें ते निकासिवे के अर्थ चोरासी वैष्णव कीए ॥ सो जीव चोरासी प्रकारके हें ॥ राजसी तामसी सात्विकी निर्गुण ए चारि प्रकार के गिरे ॥ तामें ते गुणमय राजसी तामसी सात्विकी रहन दीए ॥ सो श्रीगुसांईजी उद्धार करेंगे ॥ श्रीआचार्यजी विना श्री गोवर्द्धनधर रह न सके तो अपने अंतरंगो निर्गुण पक्षवारे चोरासी वैष्णव (प्रकट) कीए ॥ सो एक एक लक्ष योनिमें तें एक एक वैष्णव निर्गुण वारे के उद्धार वैष्णवद्वारा कीए ॥ ओर रसशास्त्रमें रसादिक विहारके आसन चोरासि वैष्णव कीए हे सो वर्णन कीये हें ॥ न्यारे न्यारे अंग के भाव-रूप ॥ चोरासि वैष्णव रसलीला संबंधी निर्गुण हे श्री ठाकुरजी के अंगरूपे[2] ॥ तातें शास्त्र रीतिसों आसन चोरासी या भावसों अलौकिक हें ॥ ओर श्री आचार्यजी के अंग द्वादश हें सो स्वरूपात्मक हें । एक

---

१ राजसी तामसी चैव सात्विकी निर्गुणा तथा । एवं चतुर्विधा गोप्यः...फल० प्र अ० ३ को० ३

२ व्रज वृंदावन गिरि नदी पशु पंछी सब संग ।
इनसों कहा दूरावनो यह सब मेरो अंग ॥
(श्रीहरि०) याकी एकवाक्यता.

एक अंग में सात सात धर्म हें ॥ ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ए छह धर्म, एक धर्मी ॥ ए सातमें या प्रकार बारह सते चोरासि वैष्णव श्री आचार्यजी के अंग रूप अलौकिक सर्व सामर्थ्यरूप हें ॥ ओर साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम की लीला चोरासि कोस व्रजमें हें ॥ सो एक एक जीवकों अंगीकारि करि ॥ देवि जीव जो चोरासि लक्ष योनिमें गिरे हें तिनको उद्धार करि चोरासि कोस व्रजमें जो जीव (जा) लीला संबंधी हें ॥ तिनकों तहां प्राप्त करन के अर्थ चोरासि वैष्णव अलौकिक प्रगट कीए ॥ यहभाव तें चोरासि वैष्णव श्रीआचार्यजी के हे सो एक दिन श्रीगोकुलनाथजी चोरासि वैष्णव की वार्त्ता करत कल्याण. भट्ट आदि वैष्णव के संग रसमग्न होइ गए सो श्रीसुबोधिनीजी की कथा कहन की सुधि नांही ॥ सो अर्द्ध रात्रि होई गई ॥ तब एक वैष्णवने श्रीगोकुलनाथजी सों बिनती करि ॥ जो महाराजाधिराज आज कथा कब कहोगे ॥ अर्द्धरात्रि गई ॥ तब श्रीमुखतें श्रीगोकुलनाथजीनें कही ॥ आज कथाको फल कहत हें ॥ वैष्णव की वार्तामें सगरो फल जानीयो ॥ वैष्णव उपरांत और कछु पदारथ नाहि हें ॥ यह पुष्टि भक्तिमारग हें सो वैष्णवद्वारा फलित होयगो ॥ श्रीआचार्यजी हू यही कहते दमला तेरे-लिए मारग प्रगट कीयो हें ॥ तातें वैष्णव की वार्त्ता हे सो सर्वोपरि जानियों ॥ या प्रकार चोरासि वैष्णव श्रीआचार्यजी के निर्गुण पक्ष के मुखिया जानने ॥

अब रई राजसी तामसी सात्विकी गुणमय* तिनके उद्धारार्थ श्रीगुसांईजी नें चोरासि वैष्णव राजसि कीए ॥ चोरासि वैष्णव तामसि

* देखो निर्गुण सगुण भेद "वार्तामाहात्म्य"

कीए ॥ चोरासि वैष्णव सात्विकी कीए ॥ ये तिनों जूथ मिलिके दोयसे बावन भए ॥२५२॥ श्रीगुसांईजीके अंगसंबंधी हैं ॥ या प्रकार श्री आचार्यजी श्रीगुसांईजी के सेवक को भाव कहें ॥

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

શ્રીહરિરાયજીકૃત સમગ્ર વાર્તાઓ ઉપરના ભાવાત્મક લેખનું ટિપ્પણ

શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ ભગવદ્‌લીલાનું અસ્તિત્વ બતાવતાં, ચાર પ્રકારના જીવોનું આ લેખમાં નિરૂપણ કરે છે. ૪ પ્રકારો—૧ નિર્ગુણ, ૨ રાજસ, ૩ તામસ, ૪ સાત્વિક. નિર્ગુણ ભક્તોનો શ્રીઆચાર્યચરણદ્વારા ઉદ્ધાર નિરૂપેલો છે. જ્યારે શેષ ત્રણ ગુણમય ભક્તોનો ઉદ્ધાર શ્રીગુસાંઈજીદ્વારા કહેલો છે,

જ્યારે શ્રીગોવર્દ્ધનધરે શ્રીઆચાર્યજીને દૈવી જીવોના ઉદ્ધારાર્થે ભૂતલમાં પ્રકટ થવાની આજ્ઞા આપી ત્યારે શ્રીઆચાર્યજી વિના શ્રીગોવર્ધનધર લીલામાં રહી ન શક્યા.* તે વખતે નિજ અંતરંગ–આધિદૈવિક ભાવરૂપ નિર્ગુણ ચોર્યાશી વૈષ્ણવોને પણ શ્રીઆચાર્ય-ચરણમાં જ અંગરૂપે સ્થાપી (પ્રકટ કરી) પૃથ્વી ઉપર તે તે ભાવરૂપ આધિદૈવિક વૈષ્ણવોના ભૌતિક સ્વરૂપના ઉદ્ધારાર્થે પ્રાકટ્ય કર્યું.

અતઃ તે અંતરંગી ચોર્યાશી વૈષ્ણવો શ્રીઆચાર્યજીના દ્વાદશ અંગ અને તેના સાત–૬ ધર્મ, ૧ ધર્મી–ભેદથી ભૂતલ વિષે શ્રીઆચાર્યચરણમાં જ ભાવરૂપે પ્રકટ થયા.

આ પ્રકારે ચોરાશી વૈષ્ણવોના ભૌતિક–લક્ષ ચોર્યાશી યોનિ સ્થિત–અને આધિદૈવિક–અંગરૂપ–એમ બે સ્વરૂપ અહીં નિરૂપ્યાં છે.

---

* પ્રત્યક્ષવિરહ (નંદદાસકૃત વિરહમંજરી)

રસશાસ્ત્રમાં નિરૂપેલાં રસાદિક વિહારનાં–તે શ્રીઠાકુરજીના સંબંધથી અલૌકિકતાને પ્રાપ્ત થયેલાં–ચોર્યાશી આસનોનાં સ્વરૂપ શ્રીઠાકુજીના અંગરૂપ એવા ઉપર વર્ણવેલા આધિદૈવિક ચોર્યાશી વૈષ્ણવોનાં છે.

અતએવ આ રસમય લીલા ચોર્યાશી કોસ વ્રજમાં સ્થિત છે. તે લીલાના સંબંધી ભૌતિક ચોર્યાશી સાધનરૂપ ભક્તોના તેમના જ આધિદૈવિક સ્વરૂપ દ્વારા, ઉદ્ધાર કરી તે તે લીલામાં પ્રાપ્તિ કરાવવી એ શ્રીઆચાર્યચરણના પ્રાકટ્યનું મુખ્ય કારણ છે અને તે પ્રાપ્તિના ફલાત્મક સાધનનું નિરૂપણ કરવું તે આ વાર્તા પ્રકટ કરવાનો મુખ્ય ઉદ્દેશ છે. આ માર્ગમાં સાધન અને ફલનું અભેદપણું કહેલું હોવાથી આ વાર્તાઓ પરમ ફલરૂપ છે. આજ પ્રકારે શ્રીગુસાંઇજીના અંગસંબંધી ૨૫૨ સગુણ ભક્તોનું ભૌતિક અને આધિદૈવિક સ્વરૂપ નિરૂપેલું છે.

શ્રીહરિરાયજી કૃત ભાવાત્મક લેખનું સ્વારસ્ય:–

જેવા પ્રકારથી શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીમદ્‌ભાગવતના ચાર અર્થ રૂપ આનંદમય શ્રીહરિ અને તેની લીલાનાં દર્શન નિબંધમાં કરાવ્યાં છે તેવા જ પ્રકારે શ્રીહરિરાયજીએ આ વાર્તાઓના ચાર અર્થરૂપ પરમાનંદસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજી અને તેમની ભાવાત્મક લીલાનાં દર્શન આ લેખમાં કરાવ્યાં છે. શ્રીભાગવતના શેષ ત્રણ અર્થરૂપ શ્રીહરિનાં સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીસુબોધિનીમાં સ્થાપ્યાં છે, તેમ શ્રીહરિરાયજીએ વાર્તાના અર્થરૂપ શેષ ત્રણ સ્વરૂપ "ભાવપ્રકાશ" માં સ્થાપ્યાં છે.

આ લેખમાં દર્શાવેલાં શ્રીઆચાર્યજીનાં ચાર સ્વરૂપો આ પ્રમાણે છે:—

૧ " तातें अपने अंतरंगी निर्गुण पक्षवारे चोरासि वैष्णव (प्रकट) कीए "

અંતરંગી=આધિદૈવિક, નિર્ગુણ પક્ષવારે વૈષ્ણવ=દેહભાવરહિત

પુરુષાકાર સુધા—**बर्हापीडं नटवरवपुः**—સ્વરૂપ સાથે ભાવાત્મકરીતે વિલસનારા ભક્તોને પ્રકટ કર્યા.

જ્યાં જે પ્રકારના ભાવના ભક્તોનું પ્રાકટ્ય હોય, ત્યાં તે પ્રકારના ભાવાત્મક પ્રભુનું પ્રાકટ્ય અવશ્ય રહેલું જ છે. તેથી અહીં સુધાસ્વરૂપનું પ્રાકટ્ય કહેલું છે.

२ " ओर रसशास्त्रमें रसादिक विहार के आसन (रूप) चोरासी वैष्णव कीए हे । न्यारे न्यारे अंग के भावरूप । चोरासि रसलीला संबंधी निर्गुण हे । "

અહીં આસનશબ્દથી પાત્રરૂપતા કહેલી છે. રસની સ્થિતિ સ્ત્રીઓમાં જ છે જેથી તે રસના પાત્રરૂપ છે. અને લીલાશબ્દથી સંયો-ગત્વ પણ સિદ્ધ જ છે. આ લીલાની સ્થિતિ સ્વામિનીભાવ વિના નથી. અતઃ અહીં "**स्वामिनोभावसंयुक्त**" ઇત્યાદ્યુક્ત શ્રીઆચાર્યજીનું પરમાનંદરૂપ ગૂઢસ્ત્રીભાવ સ્વામિનીસ્વરૂપનું પ્રાકટ્ય કહેલું છે.

३ " ओर श्रीआचार्यजी के अंग द्वादश हे सो स्वरूपात्मक हे ।

અહિ દ્વાદશ અંગ શબ્દથી સાકાર પુરુષોત્તમનું પ્રતિપાદન છેઃ કારણ કે "**द्वादशो वै पुरुषः**" પુરુષ નિશ્ચયે દ્વાદશાંગ છે એમ શ્રુતિ કહે છે. અને તે પુરુષોત્તમ આનંદરૂપ છે. તેથી શ્રીઆચાર્યજીનું નામ પણ "**आनंद**" એમ છે. અને તે ભગવદ્‌ભાવરૂપ છે. જેથી શ્રીહરિરાયજી આજ્ઞા કરે છે કે "**भगवद्भावभावितः**"।

४ " चोरासि कोस व्रजमें जो जीव जा लीला को संबंधी हे तिनकों तहां प्राप्त करन के अर्थ चोरासि वैष्णव अलौकिक प्रगट कीए ॥"

અહિં કેવલ વિપ્રયોગાત્મક કૃષ્ણાસ્યસ્વરૂપ કહેલું છે. વિપ્રયોગ વિના કોઈ પણ વસ્તુની પ્રાપ્તિ નથી જ. અતઃ આપે વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપે ભૂતલ ઉપર પધારીને, દૈવી જીવોને સ્વતાપાત્મક સ્વરૂપનું દાન કરી શુદ્ધ કર્યા અને ભગવદ્‌લીલાના સંબંધને પ્રાપ્ત કરાવ્યા.

આ પ્રકારે આ લેખમાં શ્રીઆચાર્યજીનાં ચાર સ્વરૂપો કહ્યાં છે.×

॥ श्रीद्वारिकेशो जयति ॥

કુંજ પ્રકરણ —: समस्त लीला प्रकरण:—

ચોર્યાશી કોસ વ્રજમાં ચોરાસી કુંજ મુખ્ય છે.

રસિક પુરુષો અને મહાત્માઓના નિકુંજાદિવર્ણનમાં અનેક મત છે. તેને પરસ્પર વિરુદ્ધ જોઇને શંકા કરવી નહિ. કારણ કે આ નિકુંજલીલા ભાવસિદ્ધ છે.જેનો જેવા ભાવનો અધિકાર હોય તેને તેવા પ્રકારના ભાવાત્મક સ્વરૂપનાં દર્શન થાય છે. ગ્હસ્યપુરાણમાં ૯૩ કોટિ રાસલીલાનું વર્ણન છે. અને ૯૩ કોટિ કુંજો પણ છે. વૃંદાવન બે છે. એક પૃથ્વી ઉપરનું અને બીજું ગોલોકનું નિત્યવૃંદાવન–આ નિત્ય વૃંદાવનનો જ આવિર્ભાવ ભૌતિક વૃંદાવનમાં ભગવત્ક્રીડાર્થ થયેલો છે. એટલે આ ભૌતિક વૃંદાવન પણ તદ્રૂપ જ છે. એવા જ પ્રકારે શ્રીગોકુલ ગોવર્ધન આદિ છે. જેથી વારાહપુરાણમાં તીર્થરાજ પ્રયાગના સમક્ષ પ્રભુએ વ્રજને પોતાનું ઘર કહેલું છે.

આ નિત્યલીલાના શ્રીમદ્ગોકુલ આદિ સ્થલોના ભૌતિક ગોકુલ આદિ ધામોમાં આવિર્ભાવનો પ્રકાર શ્રીગુસાંઇજીએ વિદ્વન્મંડનમાં નેત્રના દૃષ્ટાંતથી સમજાવ્યો છે.

જેમ અસલ નેત્રેન્દ્રિય આ દેખાતા પ્રાકૃત ચક્ષુની અંદર રહેલી છે, (આ વાત આજના ડૉકટરી વિજ્ઞાનથી સિદ્ધ થાય છે.) અને તેથી જ આ નેત્રમાં તેની તદ્રૂપતા હોઇને આ ભૌતિક નેત્રદ્વારાજ સર્વ વસ્તુ પ્રત્યક્ષ થઇ શકે છે. તેવા જ પ્રકારે આ દેખાતા ભૌતિક

× આ, શ્રીહરિરાયજીના ભાવરૂપ લેખનું મૂલ સાધનપ્રકરણ છે. તેમાં વ્રતચર્યાપ્રસંગના “ वयस्यैरागतस्तत्र ” આદિ શ્લોકોનાં શ્રીસુબોધિનીજીમાં આધિદૈવિક ભાવરૂપ અંતરંગ ભક્તોની અંગરૂપે સ્થિતિ આદિનો પ્રકાર શ્રીઆચાર્યચરણે 'સમજાવ્યો છે. જીજ્ઞાસુઓએ ત્યાં જોવું. સ્થલસંકોચથી અહિં તે ન લખતાં ખાલી સૂચના માત્ર કરી છે.

શ્રીમદ્‌ગોકુલ આદિના સેવનથી જ સર્વ લીલાનો સાક્ષાત્કાર થઈ શકે છે. કારણ કે તે નિત્યલીલાના શ્રીમદ્‌ગોકુલ આદિ નિત્ય ધામોથી તદ્રૂપતાને પ્રાપ્ત થયેલાં છે.

આવા જ પ્રકારે શ્રીહરિરાયજીના સમગ્ર વાર્તા ઉપરના લેખમાં રહેલાં વૈષ્ણવોનાં બે સ્વરૂપો જાણવાં. ભૌતિક અને આધિદૈવિક સ્વરૂપોની ભાવ અને અંગરૂપે સ્થિતિ હોવાથી તેમના સન્મુખ થતાં માત્રથી જ ભૌતિક સ્વરૂપમાં શ્રીઆચાર્યજી દષ્ટિદ્વારા તેમના આધિદૈવિક મૂલ સ્વરૂપોનો પ્રવેશ કરાવે છે. તેથી વૈષ્ણવો અલૌકિકતાને પ્રાપ્ત થાય છે–

આ ભાવાત્મક સ્વરૂપોના સ્થાપનનો પ્રકાર વ્રતચર્યાપ્રસંગનાં શ્રીસુબોધિનીજીમાં શ્રીઆચાર્યચરણે સારી રીતે સમજાવ્યો છે. પૂતના દ્વારા શોષેલાં કુમારિકાઓના પુંભાવરૂપ સ્વરૂપોને શ્રીઠાકોરજીએ દષ્ટિદ્વારા કુમારિકાઓમાં સ્થાપી રસયોગ્ય કર્યાં છે. અસ્તુ.

૯૩ કોટિ કુંજોમાં ચોર્યાશી કુંજ મુખ્ય છે. માટે તે તે કુંજના અધિકારી નિર્ગુણ ચોરાશી સેવકો શ્રીઆચાર્યચરણે અંગીકાર કર્યા.

હવે ચોર્યાશી કુંજોનાં નામ લખીએ છીએ :—

૧ પ્રીતિકુંજ, ૨ પ્રેમકુંજ, ૩ કંદર્પકુંજ, ૪ લીલાકુંજ, ૫ મજ્જનકુંજ, ૬ વિહારકુંજ; ૭ ઉત્કણ્ઠ કુંજ, ૮ મોહન કુંજ, ૯ યુગલ કુંજ, ૧૦ હાવકુંજ, ૧૧ ભાવકુંજ, ૧૨ કટાક્ષકુંજ, ૧૩ અલક કુંજ, ૧૪ મુક્તાકુંજ, ૧૫ ભ્રૂકુંજ, ૧૬ વેણીકુંજ, ૧૭ રોમરાજિકુંજ ૧૮ નીવીકુંજ, ૧૯ કટિક્ષીણકુંજ, ૨૦ માનકુંજ, ૨૧ ભ્રમનકુંજ, ૨૨ તિષ્ટનકુંજ, ૨૩ સંગીતકુંજ, ૨૪ આલસ્યકુંજ, ૨૫ કલકૂજિત કુંજ, ૨૬ વિવિધાકાર કુંજ, ૨૭ દુકુલકુંજ, ૨૮ નેત્રકુંજ, ૨૯ કુંડલકુંજ, ૩૦ હારકુંજ, ૩૧ તામ્બૂલકુંજ, ૩૨ આડકુંજ, ૩૩ લાવણ્યકુંજ, ૩૪ હાસ્યકુંજ, ૩૫ ઉત્સાહકુંજ, ૩૬ ઉગ્રતાકુંજ, ૩૭ કોકિલાલાપકુંજ, ૩૮ ગ્રીવકુંજ, ૩૯ આલિંગનકુંજ, ૪૦ ચુમ્બનકુંજ, ૪૧ અધરપાન

કુંજ, ૪૨ દર્શનકુંજ, ૪૩ દર્પનકુંજ, ૪૪ પ્રલાપકુંજ, ૪૫ ઉન્માદકુંજ ૪૬ દર્પકુંજ, ૪૭ ઉત્સાદનકુંજ, ૪૮ ઉત્કર્ષકુંજ, ૪૯ દીનકુંજ, ૫૦ અધીનકુંજ, ૫૧ સુરતકુંજ, ૫૨ આકર્ષણકુંજ, ૫૩ ઉચ્ચાટનકુંજ, ૫૪ મૂર્છાકુંજ, ૫૫ વશીકરણકુંજ, ૫૬ સ્તમ્ભનકુંજ, ૫૭ પ્રિયાસ્કન્ધારોહણકુંજ, ૫૮ આવેશકુંજ, ૫૯ વાર્તાલાપકુંજ ૬૦ પર્યંકકુંજ, ૬૧ પ્રિયાચરણતાડકાનકુંજ, ૬૨ નખક્ષતકુંજ, ૬૩ દન્તક્ષતકુંજ ૬૪ ક્ષપિતરંગકુંજ, ૬૫ વિગતાભરણકુંજ, ૬૬ ભૂષણકુંજ, ૬૭ કંપકુંજ, ૬૮ રતિપ્રલાપકુંજ, ૬૯ તુત્તલગિરકુંજ, ૭૦ પ્રિયાવાસભવનકુંજ, ૭૧ મદનગુણકુંજ, ૭૨ આસક્તપુંજકુંજ, ૭૩ પરમરસકુંજ, ૭૪ પીડાવાદાકુંજ, ૭૫ સુરતશ્રમનિષેધકુંજ, ૭૬ હુતુકકુંજ, ૭૭ વાગ્વિભ્રમ કુંજ, ૭૮ વ્યવસ્તભાવકુંજ, ૭૯ કામટંકકુંજ, ૮૦ કિંકિનીરવકુંજ, ૮૧ વીરવિપરીતકુંજ–સુરતાન્તકુંજ, ૮૨ કલિકાકૌતુકકુંજ, ૮૩ સુરતકુંજ, ૮૪ સહજપ્રેમકુંજ.

આ પ્રકારે ભાવાત્મક ચોર્યાશી કુંજો કહી આ કુંજોમાં એક એક કુંજમાં બધી કુંજો અન્તરભાવથી રહે છે. અને કોઈ કોઈ જગાએ પ્રકાશિત થઈને રહે છે.

હવે બીજું કેટલુંક મુખ્ય લીલાનું રહસ્ય વર્ણન કરીએ છીએ. પ્રથમ શ્રીઠાકોરજી અને શ્રીસ્વામિનીજીના સ્વરૂપને જાણવાને અર્થે તેમનાં રહસ્યરૂપ સ્વરૂપોનું વર્ણન કરીએ છીએ :—

વ્રજમાં સપ્તાવરણસ્વરૂપ શ્રીઠાકોરજીનાં બિરાજે છે તે આ પ્રકારે:– વાસુદેવ, સંકર્ષણ, પ્રદ્યુમ્ન, અનિરુદ્ધ, કાલાત્મા, સંયોગરસાત્મક, અને વિપ્રયોગરસાત્મક, જ્યારે પૂર્ણ પ્રભુનું પ્રાકટ્ય થાય (સારસ્વતકલ્પમાં) ત્યારે ૭ સ્વરૂપ શ્રીમથુરાજીમાં પ્રકટ થાય છે અને વિપ્રયોગરસાત્મક સ્વરૂપ વ્રજમાં પ્રકટે છે. તે સાતે સ્વરૂપની સ્થિતિ આ પ્રકારે જાણવી :—

પૂતનાવધમાં સંકર્ષણ. ધર્મપાલનમાં અનિરુદ્ધ–લઘુરાસસમયે પ્રથમ ધર્મનો ઉપદેશ કર્યો ત્યારે અને દ્વારકામાં.

કામચાર પ્રદ્યુમ્ન–કુબ્જાને ત્યાં પધાર્યા ત્યારે.

રાજલીલામાં વાસુદેવ–મુચુકુંદપર કૃપા કરી ત્યાં.

મહાભારતમાં કાલાત્મા–(કાલાત્મા=**काल के काल ईश ईशान के**)

'**कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।**'
ગીતા ૧૧–૩૧

नंदस्त्वात्मज उत्पन्ने સંયોગાત્મક સ્વરૂપ–તેજ વસુદેવજીને ત્યાં પ્રાકૃત શિશુ થયા '**बभूव प्राकृतः शिशुः**'

વિપ્રયોગાત્મસ્વરૂપ વ્રજમાં સ્થિત છે. મથુરા પધારતી સમયે શ્રીસ્વામિનીજીના હૃદયઅંતર્ગત વિપ્રયોગાત્મક સ્વરૂપ પ્રવેશ્યું–આ સ્વરૂપ મથુરા નથી પધાર્યું. સદા તે તો વ્રજમાં જ બિરાજે છે.

અન્ય કલ્પોમાં આ સાતમાંથી એક અથવા બે એમ પ્રાકટ્ય થાય છે માટે તે અંશાત્મક રૂપે પ્રકટે છે, પૂર્ણ રૂપે નહિ. શ્રીભાગવતમાં સારસ્વતકલ્પની લીલા છે. માટે "**कृष्णस्तु भगवान् स्वयं**" એમ કહેલું છે.

આવીજ રીતે શ્રીસ્વામિનીજીનાં સાત સ્વરૂપ છે :—

૧ શ્રીશક્તિ, ૨ ભૂશક્તિ, ૩ લીલાશક્તિ, ૪ મનોરથાત્મક, ૫ સ્વામિન્યાત્મક, ૬ સંયોગાત્મક, ૭ વિયોગાત્મક.

સારસ્વત કલ્પમાં સાતે રૂપથી પ્રકટે છે. અન્ય કલ્પમાં એક બે રૂપે પ્રકટે છે—

પ્રથમના પાંચ સ્વરૂપનું કીર્તિજીને ત્યાં પ્રાકટ્ય છે શ્રીઠાકુરજીના પ્રાકટ્યના પછી પદર દિવસે અને જ્યારે શ્રીઠાકોરજીનું પ્રાકટ્ય થયું ત્યારે તેની સાથે માયાવૃત સંયોગરસાત્મક સ્વરૂપ પ્રકટયું (નંદાલયમાં) અને વિયોગરસાત્મક સ્વરૂપ બે વર્ષ પહેલાં સેવાકુંજમાં પ્રકટયું છે.

જ્યારે કીર્તિજી પોતાને ત્યાંથી શ્રીસ્વામિનીજીને નંદાલયમાં

પધરાવી લાવ્યાં ત્યારે શ્રીઠાકોરજી માતાની ગોદમાં હસ્યા. તે સમયે પાછળનાં બન્ને રસાત્મક સ્વરૂપો પહેલાના કીર્તિજીની પાસેનાં આધારભૂત પંચવર્ણાત્મક સ્વરૂપમાં સ્થાપન (શ્રીઠાકોરજીએ) કર્યાં. આ પ્રકારે બન્નેનાં વિપ્રયોગરસાત્મક સ્વરૂપ પરસ્પર હૃદયમાં વિદ્યમાન છે. [**सौंदर्यपद्य**નું ચિંતન અહીં કરવું] જ્યારે શ્રીઠાકોરજી મથુરાજી પધાર્યા ત્યારે તે વિપ્રયોગરસાત્મક સ્વરૂપ શ્રીસ્વામિનીજીના હૃદયમાં પૂર્ણરૂપે સ્થાપ્યું. મથુરામાં આ સ્વરૂપનું ગમન નથી.

શ્રીસ્વામિનીજીનું મનોરથાત્મક જે સ્વરૂપ છે તેમાં અન્ય (સ્વામિની)ના પ્રભુથી રમણ કરવાના મનોરથ તથા વરદાન આદિથી જે સ્વામિની પ્રકટે છે તે મળી રહે છે. અને સ્વામિન્યાત્મક સ્વરૂપમાં પ્રતિકુંજ પ્રતિમંડલ પ્રતિયૂથમાં જે સ્વામિનીજીના અંશ સ્વરૂપ હોય છે તેમની એકતા છે.

પુષ્ટિ સંપ્રદાયના મતે અષ્ટ સખીનાં નામ આ પ્રકારે છે;— શ્રીચન્દ્રાવલીજી, શ્રીલલિતાજી, શ્રીવિશાખાજી, શ્રીચમ્પકલતાજી, શ્રીચન્દ્રભાગાજી, શ્રીરાધાસહચરી, શ્રીશ્યામાજી અને શ્રીભામાજી આ આઠમાં શ્રીચન્દ્રાવલીજીને સ્વામિનીત્વ છે અન્ય સાતને સખીત્વ છે. તેથી પંચાધ્યાયીમાં અન્તર્ધાન અને આવિર્ભાવ અને મહારાસમાં **काचित् काचित्** કરીને સાત જ ગણાવ્યાં છે. *

(શ્રીચંદ્રાવલીજીના પ્રાકટ્ય આદિનો સર્વ પ્રકાર ભગવદિચ્છા હશે તો હવે પછી ગ્રન્થ પ્રકટ થશે તેમાં આપીશું. મુદ્રણખર્ચની પૂર્તિ થઈ નથી એટલે વાંચકોએ આટલાથી સંતોષ માનવો.)

રસિક ભક્તો માટે ધ્યાનાર્થ લલિતાજીનાં સ્વરૂપ, સેવા આદિનું કોષ્ટક આપ્યું છે.

---

* આ સમસ્ત પ્રકરણ યુગલસર્વસ્વ અને અન્ય પ્રાચીન પુસ્તકોમાંથી ઉદ્ધૃત કર્યું છે.

નામ	લીલાનું સ્વરૂપ.	રંગ		
દામોદરદાસ હરસાની	લલિતાજીનું સ્વરૂપ	ગોરોચનપ્રભા ઉજ્વલલાલાશયુક્ત		
વસ્ત્રનો રંગ.	મુખ્ય સેવા	ચાતુર્ય	ભાવ	વાદ્ય
મયૂર પિચ્છ	પાનની બીડી	મધ્યામુખ્ય સ્નેહવર્દ્ધન	સખ્ય	બીન

श्रीद्वारकेशो जयति ॥

દામોદરદાસ હરસાનીજીની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય.

આ સમગ્ર વાર્તા શ્રીભાગવતના દશમસ્કંધનિરોધરૂપ અને તેના પરમ ફલ–ભાવ–રૂપ છે. આમાં પરમ નિર્દુષ્ટ શબ્દાત્મક આંતર રમણનું વર્ણન છે, જેથી તે તામસ ફલપ્રકરણના પણ ફલ–ભાવ–રૂપ છે. આ વાર્તાનું મૂલ યુગલગીતમાં છે. આ પરમ ફલરૂપ શબ્દાત્મક લીલા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયમાં સ્થિત છે. અતઃ આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના પરમ નિગૂઢ હૃદયરૂપ છે, અને તેમાં ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક નિરોધનું સ્વરૂપ રહેલું છે.

एवमेव स्थितिर्ज्ञेया स्वामिनीहृदयेषु हि ।

सैवास्मदाचार्यवर्यै'र्नमामी'त्यत्र रूपिता ॥ (स्व. मा. से. फ. नि.)

શ્રીભાગવતના દશમસ્કંધના પારિભાષિક તામસ, પરંતુ વસ્તુતઃ નિર્ગુણ પ્રકરણમાં પ્રમાણ, પ્રમેય, સાધન અને ફલનું નિરૂપણ છે. તેમ અહિં પણ તે ચારેનું નિરૂપણ છેઃ—

પ્રસંગ ૧માં બ્રહ્મસંબંધની આજ્ઞા સમયેઃ—

"**साक्षाद्भगवता प्रोक्तं**" ત્યાં ભગવદાજ્ઞા, એ આ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમાણરૂપે સ્વીકારાઈ છે.

"प्रमाणं भगद्वाक्यमाविर्भूयोदितं हि यत् । (स्व. मा. म. नि.)

તે આજ્ઞાસમયે સાક્ષાત્ પ્રભુનું પ્રાકટ્ય તેજ આ પુષ્ટિમાર્ગમાં પ્રમેયરૂપ કહેવાય છે. "**प्रमेयो हरिरेवात्र**"

તે સમયે પુષ્ટિમાર્ગનો પ્રાદુર્ભાવ-ગદ્યમંત્રરૂપે "**भगवन्नामोपदेशकः**" (સં. વા.) – તેજ સાધનરૂપ કહેલ છે. "**साधनं भगवन्मार्गः**", અને તેજ ફલરૂપે છે. કારણ કે આ માર્ગમાં ફલ અને સાધન એક જ છે. "**फलं साधनमेव हि**"

બીજા પ્રકારે ભગવત્પ્રાકટ્ય એજ ભક્તિમાર્ગમાં ફલ કહેવાય છે. **भक्तिमार्गे भगवतः प्राकट्यं फलमुच्यते**" આથી અહીં ભગવાનનું સાક્ષાત પ્રાકટ્ય એ ફલ જાણવું.

આ પ્રકારે બ્રહ્મસંબંધના પ્રસગમાં ચારે વસ્તુનું નિરૂપણ કર્યું છે.

આ નિરોધ તેજ ફલરૂપ આધિદૈવિક માનસી છે. **चेतस्तत्प्रवणं सेवा मानसी फलरूपिणी। प्रोक्ता निरोधरूपा ॥२॥ (स्व. मा. से. फ. नि०**) અને તેનું દાન શ્રીઆચાર્યચરણે દામોદરદાસજીને કર્યું છે. "**रसभावभृतां नित्यं**" **(सं. वा.)**જેથી દામોદરદાસ શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયનું સ્વરૂપ છે, અને તેમની વાર્તા તે પરમ ફલરૂપ નિરોધલીલાનું સ્વરૂપ છે.

આ નિરોધાત્મક પુષ્ટિમાર્ગનું પ્રાકટ્ય કેવલ દામોદરદાસજીના અર્થેજ છે. આ માર્ગના અધિકારી સર્વ દૈવી જનોના મૂલ આધિદૈવિક રૂપ દામોદરદાસજી જ છે. માટે શ્રીઆચાર્યજી આજ્ઞા કરે છે કે "**दमला, यह मार्ग तेरे लिए प्रकट कीयो हे**" "**पुष्टिपथस्तव हितार्थं वै प्रकटितः**" **(सं. वा. શ્લો. २५)**

જેઓમાં આવા પ્રકારની (ભાવાત્મક નિરોધરૂપ) પ્રભુની સ્થિતિ હોય તે સ્વતંત્ર–નિર્ગુણ–ભક્તો કહેવાય. અને આજ પ્રકારે તે પુષ્ટિભક્તિ–આધિદૈવિક નિરોધરૂપા માનસી–પણ સ્વતન્ત્ર કહી કહી શકાય. "**स्वतंत्रभक्तास्ते**" **(स्व० मा० से० फ० नि०)**

આવા સ્વતન્ત્ર ભક્તિવાળા ભકતોમાં મૂર્તિની માફક પ્રભુનો આવેશ થાય છે, અને તે ભકતો નિત્ય અને મૂર્તિની માફક સેવનીય

હોય છે. દામોદરદાસજીનું આવા પ્રકારનું સ્વરૂપ છે. માટે જ શ્રી ગુસાંઈજી આજ્ઞા કરે છે કે:–" **वार्ताम्प्रायस्तवास्यतः** " **(सं. वार्ता)**

પ્રશ્ન:—જ્યારે તમો દામોદરદાસજીની વાર્તાને નિરોધલીલા કહો છો, તો શ્રીમદ્‌ભાગવતમાં દશમસ્કંધ સમગ્ર નિરોધરૂપ હોઈ તેમાં જન્મપ્રકરણ–રાજસ પ્રકરણ સાત્ત્વિક પ્રકરણ ગુણ પ્રકરણ આદિ છે, તે આ વાર્તામાં કયાં છે ?

ઉત્તર:—તમારો પ્રશ્ન યથાર્થ છે. પરંતુ પ્રશ્નનો જવાબ શ્રીહરિરાયજીકૃત ભાવરૂપ લેખમાં આવી ગયેલો છે. તેમાં લખ્યું છે કે ૮૪ વૈષ્ણવો નિર્ગુણ છે, અને શ્રીઆચાર્યજીના અંગના ભાવરૂપ છે. તેથી તેમની વાર્તાઓ પણ તે તે અંગની લીલાના ભાવરૂપ છે. એટલે નિર્દુષ્ટ શબ્દાત્મક રમણરૂપ છે. એમાં ગુણમય ક્રિયાપ્રાધાન્ય સંયોગાત્મક લીલાની સંભાવના હોય જ નહિ. આ વાર્તાઓમાં કેવલ ભાવાત્મક પ્રભુની જ સ્થિતિ છે. જેથી આ નિરોધલીલારૂપ દામોદરદાસજીની વાર્તા ભાવાત્મક હોઈ પરમ ફલરૂપે કહી છે.

બીજું જન્મપ્રકરણ સંબંધી એવું કહેવાનું છે કે–આ વાર્તામાં ભાવાત્મક શ્રીગોપીજનવલ્લભનું સાક્ષાત્ પ્રાકટ્ય પણ બ્રહ્મસંબંધના પ્રસંગમાં આવી ગયું છે. વળી વિશેષમાં જેમ શ્રીકૃષ્ણના જન્મનો અલૌકિક પ્રકાર (**कालः परमशोभनः**)શ્રીભાગવતમાં વર્ણવ્યો છે. તેમ સ્વયં પરમ ભાગવત શ્રીદામોદરદાસજીએ શ્રીગુસાંઇજી સમક્ષ શ્રીઆચાર્યજીના અલૌકિક પ્રાકટયના પ્રકારનું વર્ણન કરેલું છે, અને તેનો શ્રીગુંસાંઈજીએ શ્લોકબદ્ધ " સહસ્રકૃત ? " નામનો ગ્રન્થ પણ રચેલો છે. (જુઓ સંવાદ) તે ગ્રન્થ શ્રીગોકુલનાથજી પાસે હતો. આપના લીલામાં પધાર્યા બાદ બલીયા (?) ના હાથ લાગ્યો (હાલ અપ્રાપ્ય છે.) એથી સંભવ છે કે શ્રીગોકુલનાથજીએ ભાવરૂપ શ્રીઆચાર્યજીના જન્મનો પ્રકાર વાર્તામાં યોજ્યો નહિ હોય.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

दामोदरदास हरसानी की वार्ता.

जन्म (१) शरण आये पहेले को प्रकार *

– भौतिक स्वरूपको प्रसंगः –

पाछे आप श्रीआचार्यजी आगे पधारे ॥ तहां एक बडो नगर–वृद्धनगर (वर्धा)–आयो ॥ सो वा ठोर एक बडो नगरशेठ हतो ॥ सो क्षत्री हतो ॥ वाके चार बेटा हुते ॥ सो तीन बेटा तो बडे हते ॥ ओर सबतें छोटे दामोदरदास हते ॥ सो उन चारि भाईनने बिचार कियो ॥ जो होंई तो यह द्रव्य अपनो अपनो हम चारों भाई बांटि लेई ॥ काहेते जो द्रव्य हे सो क्लेश को मूल हे ॥ पाछे हमारो आपस में हित न रहेगो ॥ दामोदरदास तो छोटे हते ॥ सो इनसें कहे ॥ क्यों बाबा तू अपने बांटेको द्रव्य लेईगो ॥ तब दामोदरदास कहे में तो कछु समुझत नांहि ॥ तुम बडे हो ॥ आछो जानो सो करो ॥ तब इनने द्रव्य सब घरमेंसु काढी ॥ वाके चारि बांट किए॥ सो चारि चिट्ठी लिख के वाके उपर डारि ॥ सो जा जाके नाम की चिट्ठी आई ॥ सो सो वाने लीयो ॥ तब दामोदरदास सें कही ॥ तुमारो द्रव्य जहां तुम कहो वहां धरे ॥ ता समें दामोदरदास गोखमें बैठे हते ॥ सो गोख के नीचे राज-मारग हतो ॥ सो ता समें श्रीआचार्यजी महाप्रभु वा मारग होई निकसे ॥ सो उपरतें दामोदरदास की दृष्टि परी ॥ सो तत्काल ऊठी दोरे ॥ न कछु द्रव्य की सुधि रही । न कछु घर की सुधि रही ॥ सो आवत ही श्री आचार्यजी महाप्रभु को साष्टांग दंडवत् कीये ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु

---

* कांकरोली सरस्वती भंडार में प्राप्त प्राचीन स्फुट लेखसुं उद्धृत.

श्रीमुखतें कहें ॥ जो दमला तू आयो ॥ तब इनने कही, महाराज, हों कब को मारग देखुं हूं ॥ सो श्रीमहाप्रभुजी के चरणारविंद के पाछे पाछे दामोदरदास चले ॥ सो पाछे भाई कहन लगे ॥ जो दामोदरदास कहां गए ॥ तब काहुने कही जो या मारग में एक लरिका × जात हुते ॥ तिन के पाछे पाछे दामोदरदास जात हे ॥ तब ये तीन्यों भाई उहां ते चले ॥ सो आगे वा नगर के बाहर एक स्थल हुतो ॥ तहां श्रीआचार्यजी आप विराजे हे ॥ आगे दामोदरदास बेठे हे ॥ तब इह देखत ही तिन्यों भाई चकित होय गये ॥ सो ईनकों श्रीआचार्यजी के दर्शन साक्षात तेजपुंज के भए ॥ सो इनतें कछु बोल्यो न गयो ॥ अपुने मन में विचारे जो कदाचित कछु बोलेंगे ॥ तो इह अग्नि हम को भस्म कर डारेगी ॥ तब दामोदरदास भाईन कों देखिकें कह्यो ॥ जो जाउ ॥ सो भाईन दामोदरदास को स्वरूप ता समय तेजोमय देखें ॥ सो भय खाय के पीछे फिर आए*[1] ॥ जो दैवी जीव होते तो शरन आवते ॥ श्रीआचार्य-जी को नाम दैवोद्धारप्रयत्नात्मा हे ॥ तब दामोदरदास को संग लेकें श्रीआचार्यजी आगें पधारे ॥ दामोदरदास कछु ब्याहे तो हते नांहि ॥ जो इनकों स्त्री आदि आइ के प्रतिबंध करे ॥ बहोत दिना के बिछुरे हते ॥ सो आय मिले ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभु की संग दामोदरदासजी चले ॥ सो आगे फेर विद्यानगर कछुक दिन में पधारे ॥

× संवत १५४६ में श्रीआचार्यजी वा समय ११ वर्षके हते ।

*१ આ ત્રણ ભાઇઓ ઉદ્વેગ, પ્રતિબંધ, અને લૌકિક ભોગનાં સ્વરૂપો છે. દામોદરદાસ નિરોધરૂપ માનસી સેવાનું સ્વરૂપ છે. જેથી તે આધિદૈવિકી સેવામાં ઉદ્વેગ આદિ ત્રણે વસ્તુ પ્રતિબંધરૂપ હોઈ શ્રીઆચાર્યજીએ પોતાના આધ્યાત્મિક અગ્નિસ્વરૂપનાં દર્શન દેઈ તે ત્રણેને ભય ઉત્પન્ન કરાવી દૂર કર્યા.

દામોદરદાસજીનો શેષ રહેલો ભૌતિક ઇતિહાસ.

દામોદરદાસજીના પિતાનું નામ થીરદાસ * અને માતાનું નામ જસોદા હતું. થીરદાસનો જન્મ સંવત ૧૪૫૫ માં થયો હતો. તેઓ શ્રીરંગપટ્ટમમાં રહેતા હતા. લગભગ સં. ૧૫૦૦ સુધી તેમને કોઈ સંતાન ન હતું. થીરદાસ દ્રવ્યપાત્ર અને ધર્મનિષ્ઠ હતા. તેઓ જ્ઞાતિએ ક્ષત્રિય હતા. થીરદાસની અટક 'હરિશરણી' હતી. તેઓ શ્રીરંગ-પટ્ટમમાં એક પ્રતિષ્ઠિત વ્યક્તિ તરીકે ગણાતા હતા. ગામમાં તેમણે બે ધર્મશાળાઓ પણ બંધાવી હતી. તે ધર્મશાળામાં ઉતરતા સાધુ યાત્રીઓનો તેઓ સારી રીતે સત્કાર કરતા હતા, તેમજ તેઓ મહાત્માઓની સેવા અને સંગમાં પણ પ્રીતિવાળા હતા.

એક દિવસે કોઈ એક મહાપુરુષ તેમને ત્યાં આવેલા. થીરદાસે તે મહાપુરુષની સારી સેવા કરી. ત્યારે મહાપુરુષે પ્રસન્ન થઈ તેમને ત્યાં ચાર પુત્રો થવાનું વરદાન આપ્યું. અને ચોથો પુત્ર હરિભક્ત થશે તેમ કહ્યું. એ પ્રમાણે થીરદાસની નિષ્કામ સેવાથી પ્રસન્ન થઈ વરદાન આપી તે મહાપુરુષ ગામમાંથી ચાલી નીકળ્યા.

થીરદાસે પુત્ર થવાની આશા છોડી દીધી હતી. તેમને પ્રાપ્ત થતી વૃદ્ધાવસ્થા જોતાં તે વાત બનવી અસંભવ જેવી હતી. છતાં હરિની સમાન કોટિના ભક્તો હરિની માફકજ સમાન ધર્મવાળા હોય છે, જેથી તેઓ અન્યથા પણ કરી શકે છે. તે ન્યાયે મહાપુરુષના થયેલા વરદાનથી થીરદાસને ચાર પુત્રરત્નોની પ્રાપ્તિ થઈ. પહેલા પુત્ર ચતુરદાસ થયા. બીજાનું નામ ભગવાનદાસ ધર્યું. ત્યારબાદ ત્રીજા પુત્રની ઉત્પત્તિ થઈ. જ્યારે થીરદાસ ૭૪ વર્ષના થયા અને તેમનાં

---

* શ્રીવલ્લભચરિત્રના કર્તા સ૦ લલ્લુભાઇ જ્જ પિતાનું નામ કપુરચંદ લખે છે. "સંવાદમાં" થીરદાસ છે અને તે દામોદરદાસજીએ સ્વયં કહેલું હોવાથી વિશેષ પ્રમાણરૂપ કહી શકાય. સંભવ છે કે મૂલનામ થીરદાસ હોય અને પ્રખ્યાત નામ કપુરચંદ પણ હોય.

સ્ત્રી જશોદા ૫૦ વર્ષનાં થયાં ત્યારે તેમને ત્યાં સંવત ૧૫૩૧ ના માઘ સુદ ૪ ના દિવસે ચોથા પુત્ર તરીકે મહાનુભાવ હરિભક્ત દામોદરદાસજીનું પ્રાકટ્ય થયું. તેઓ જન્મતાં જ પ્રસન્નવદન અને અંતર્દૃષ્ટિવાળા થયા. વળી તેઓના કપાલમાં દિવ્ય ભગવત્તેજ બિરાજતું હતું. થોડા દિવસ બાદ માતા જશોદા શ્રીહરિના ચરણારવિંદને પ્રાપ્ત થયાં. ત્યારથી દામોદરદાસનું લાલનપાલન સ્વયં થીરદાસજ કરતા હતા. તેઓનો દામોદરદાસ પ્રત્યે અત્યંત પ્રેમ હતો. એક ક્ષણ પણ દામોદરદાસજી વિના થીરદાસ રહેલા ન હતા. થીરદાસને જેસી અને રંગો નામનાં બે કન્યારત્નો પણ હતાં.

સંવત ૧૫૩૪ ના કાર્તિક માસમાં અનેક સાધુ સંતોનો એક જબ્બરદસ્ત જમૂહ યાત્રા કરવા નિકળેલો. તેમની સાથે થીરદાસ પણ દામોદરદાસજીને તેમની ભાઈ ભોજાઈને સોંપી યાત્રા કરવા નિકળી પડયા. યાત્રાની પહેલી મજલે થીરદાસને રાતના એક સ્વપ્ન થયું. તેમાં ભગવાને થીરદાસને આજ્ઞા કરી કે, મારી અલૌકિક ભેટ રૂપ તારા ચોથા પુત્ર દામોદરદાસને લઇને તું ચંપારણ્ય જા. દામોદરદાસ વિના તારી યાત્રા સંપૂર્ણ થશે નહિ. સવારે થીરદાસ પોતાના ગામમાં આવ્યા. ત્યાં દામોદરદાસજીને રોતા જોઈ થીરદાસે દામોદરદાસની ભોજાઈને રોવાનું કારણ પૂછયું ત્યારે ભાઈ ભોજાઇએ કહ્યું કે—જ્યારથી તમો ગયા છો ત્યારથી દામોદરદાસ રોયા જ કરે છે. કોઈ પણ ઉપાયે તે રોતા બંધ થતા નથી. સારૂં થયું કે તમો તરત જ ઘેર પાછા આવ્યા. હવે તમારે જ્યાં જવું હોય ત્યાં દામોદરદાસને લઇને જ જાઓ. પછી થીરદાસ દામોદરદાસને લઇને યાત્રાએ ગયા. રસ્તામાં સાધુ સંતોના સમૂહને મળ્યા. કેટલાક દિવસ પછી તેઓ ચંપારણ્ય પહોચ્યા. સંવત ૧૫૩૫ ના વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના દિવસે શ્રીઆચાર્યજીનો પ્રાદુર્ભાવ થયો. તે અલૌકિક પ્રાકટ્યઉત્સવનો અનુભવ સાડા ચાર વર્ષના બાલક દામોદરદાસને થયો. બીજા પણ

કેટલાક સત્પુરુષોને તે પ્રાકટ્યનો અનુભવ થયો. થીરદાસ લક્ષ્મણભટ્ટજીનો પ્રભાવ જોઈને તેમના શિષ્ય થયા. પછી કેટલાક દિવસ ત્યાં રહીને તેઓ પાછા શ્રીરંગપટ્ટમમાં આવ્યા. ત્યાં ઉપદ્રવ થવાથી કેટલાક વર્ષ બાદ થીરદાસ સહકુટુંબ વૃદ્ધનગર (વર્ધા) આવીને રહ્યા. ત્યાં તેઓ કાપડનો ધંધો કરતા. આ રીતે થોડાક સમય સુધી થીરદાસ વર્ધામાં રહ્યા. પછી સંવત ૧૫૪૫ માં થીરદાસે પોતાના દેહનો ત્યાગ કર્યો.

થીરદાસના બાર મહિનાનાં ક્રિયાકર્મ કર્યા બાદ તેમના ચારે પુત્રો અલગ થયા. દામોદરદાસ નાના હોવાથી તેમની દેખરેખ તેમના મામા રાખતા. જ્યારે ચારે ભાઈ અલગ થયા ત્યારે કલેશનું મૂળ જે દ્રવ્ય તેના ચાર ભાગ કર્યા.

આ સમય દરમિયાન દામોદરદાસજી રાજમાર્ગ ઉપર આવેલા પોતાના મકાનના ગોખલામાં બેસી રહેતા અને પૂર્વે મળેલા અલૌકિક સ્વરૂપના ધ્યાનમાં મગ્ન રહેતા. લૌકિક કોઈ પણ પ્રકારની વાત તેઓ જાણતા ન હતા.

એક દિવસે જ્યારે દામોદરદાસજી રાજમાર્ગ ઉપર આવેલા પોતાના મકાનના ગોખલામાં બેઠા હતા. તેવામાં બાલસ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યચરણ ત્યાં થઈ પધાર્યા. (સંવત ૧૫૪૬ પછી અને સં. ૧૫૪૭ પહેલાં) દામોદરદાસજીને આપનાં દર્શન થતાં માત્ર તેઓએ આપના ચરણકમલમાં સાષ્ટાંગ દંડવત્ કર્યા* શ્રીઆચાચાર્યચરણે તેમનો હાથ પકડી ઉઠાવી અને આજ્ઞા કરી કે "દમલા તું આયો?" પછીનો બધો પ્રસંગ વાર્તામાં છે. ત્યાં જુઓ)

× શ્રીઆચાર્યજીના આસુરવ્યામોહલીલા પછીનો શેષ પ્રસંગઃ-

---

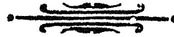
* સંવાદ, દિગ્વિજય આદિ ઘણાં ગ્રંથોમાથી કરેલું સંશોધન.

× કલ્પદ્રુમ આદિ ગ્રંથોમાંથી.

જ્યારે શ્રીઆચાર્યજીએ આસુરવ્યામોહલીલા કરવાનો વિચાર કર્યો ત્યારે સં. ૧૫૮૨માં આપશ્રી દામોદરદાસજીને લઇને વ્રજમાં શ્રીનાથજી પાસે પધાર્યા. શ્રીનાથજી પાસે શ્રીઆચાર્યચરણે આ સમયે દામોદરદાસના દેહની સ્થિતિ રહે એમ ત્રણ વાર માગ્યું; તે વરદાન પ્રાપ્ત કરીને દામોદરદાસને શ્રીમદ્‌ગોકુલમાં વાસ કરાવ્યો. નિર્વાહ અર્થે ચરણપાદુકાજી પધરાવી આપ્યાં. (સાંભળવા પ્રમાણે આ પાદુકાજી શ્રીનાથજીની પાસે બિરાજે છે) પછી શ્રીઆચાર્યચરણે અડેલ પધારી કેટલાક સમય પશ્ચાત્ સંન્યાસ ધારણ કર્યો અને વ્યામોહ કર્યો.

તે સમયે દામોદરદાસ અડેલ આવ્યા, અને પછીથી ત્યાંજ એક પર્ણકુટી રચીને રહેવા લાગ્યા. શ્રીઅક્કાજીની આજ્ઞાથી શ્રીગુસાંઇજીએ દામોદરદાસ પાસેથી સેવાપ્રણાલી, ઉત્સવક્રમ અને માર્ગનું રહસ્ય આદિ પ્રાપ્ત કર્યું.

કેટલાક સમય પછી સંવત ૧૬૦૭ માં દામોદરદાસજી ૭૬ વર્ષ ભૂતલ ઉપર સર્વ સમક્ષ બિરાજી સદેહે અંતર્હિત થયા.*



* લૌકિકી ભાષા.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

श्रीकृष्णाय नमः ॥ श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥

अब श्रीआचार्यजीके चोरासि वैष्णव की वार्तामें गूढ आशय श्रीगोकुलनाथजी कहे हें ॥ तहां श्रीहरिरायजी कछुक भाव प्रकट करत हे ॥

पुष्टिमार्गीय वैष्णव के (अर्थ) जनाइवे के अर्थ ॥[1]

अब प्रथम सेवक सो श्रीआचार्यजी महाप्रभु के दामोदरदास जिनको श्रीआचार्यजी दमला कहते ॥

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश

सो यातें ॥ दमला सो अमला ॥ मल करिकें रहित ॥ तहां यह संदेह होई जो साधारन वैष्णवमें मल नांहि ॥ तो दामोदरदासमें केसें संभवे ? दामोदरदास के दरसन तें इनके नाम लिए तें पाप जाय तो इनको नाम दमला सो अमला कहें ॥ ताको प्रयोजन कहा ? यह संदेह होई ॥ तहां कहत हें ॥ यह भक्तिमारग में श्रीठाकुरजीमें प्रीति होइ तहां तांई अमल हे ॥ जब श्रीठाकुरजी तें अधिक *श्रीआचार्यजी में प्रीति होई तब अमला कहिए ॥ दामोदरदास को एक दृढ भाव श्रीआचार्यजी में हे ॥ जो दामोदरदास की गोद में माथो धरके श्रीआचार्यजी पोढे हते ॥

---

१ सं. १७५२ में लिखित पुस्तक को अक्षरशः उतारो ।

* धर्मी विप्रयोगात्मक स्वरूप में प्रीति, माने सर्वात्मभाव होय सो अमला

सो श्रीगोवर्धनधर साक्षात् पधारे ॥ तब बरजे, "निकट मति आवो, महाप्रभुजी जगेंगे" एसो दृढ भाव हे ॥ जो ऊठि के श्रीठाकुरजी को दंडोत हू न कीए ॥ ओर श्रीगुसांईजी पूछे ॥ श्रीठाकुरजीसों बडे क्यों कहे ? तब दामोदरदासने कहि ॥ दान बडो के दाता बडो ? दाता जहां देई तहां दान चलो जाई ॥ जहां चाहे तहां दाता दानकुं राखे॥ यह भाव दृढ हे जातें श्रीआचार्यजी दमला कहतें ॥ जो कोइ प्रकारसों अन्यसंबंध[1]को गंध हूं नांहि हें ॥ तातें अमला हें ॥ ओर इनको नाम दामोदरदास यातें हे जो पुरुषोत्तमसहस्त्रनाम में श्रीआचार्यजी कहें हे॥ " दामोदरो भक्तवश्यो ॥" ओर श्रीसुबोधिनीजी में विस्तार करिके लिखे हे ॥ जो पुरुषोत्तम साक्षात् भक्तन के वस देखाए ॥ सो अपनो बंधन छोडि न सके ॥ ओर जसोदाजी को व्रजभक्तन को (स्वरूप) दिखाए॥ जसोदाजी इतनें भक्त हे जो श्रीठाकुरजी कों बांधे सो उन भक्तन की संमति देखि के बंधाने जो दाम व्रजभक्त लाए हे ॥ परंतु जसोदाजी को बंधन छुडाइवे कि सामर्थ नांहि हें ॥ तातें जमलार्जुन वृक्ष गिरें ॥ तब सोर भयो ॥ तब व्रजभक्तननें दाम छोरे हे ॥ तातें श्रीठाकुरजीसों जसोदाजी बडे ॥ श्रीदामोदरजी सों व्रजभक्त वडे, सो भक्तवत्सलता प्रगट करी तेसें ही दामोदरदास नाम करि दामोदरदास कें—अनन्य भक्त के—वस श्रीआचार्यजी हें ॥ तातें कहतें "दमला यह मारग तेरे लिये प्रगट कीयो हें ॥" तातें यह आयो जो ओर भक्त बहोत हें परंतु तेरे में बस हों यह जनाए ॥

---

१ अन्यसंबंध=संयोगात्मक कामभाव [देखो प्रसंग १० के रहस्यमें]

आर दामोदरदास को अलौकिक सरूप हैं सो ललिताजी को प्रागटय हे ॥ उहां सगरी रहस्य लीला में श्रीस्वामिनीजी की आज्ञाकारी जेसें ललिताजी तेसें हि इहां श्रीआचार्यजी की आज्ञाकारनी ललितारूप दामोदरदास ॥ जो जनमते ही तें बाल ब्रह्मचारी सखीरूप गृहस्थाश्रम को जानत नाहीं ॥ सो ललिताजी को भाव यह कीर्तन में जाननो ॥

दामोदरदासको अलौकिक आधिदैविक स्वरूप
(जन्म ३)

राग केदारो ॥

हँसि हँसि दूध पीवत नाथ ॥

मधुर कोमल बचन कहि कहि प्रान प्यारी साथ ॥ १ ॥
कनक कटोरा भर्यों अमृत दियो ललिता हाथ ॥
लाडिली अचवाय पहले पाछें आप अघात ॥ २ ॥
चिंतामनि चित बस्यो सजनी निरखि पिय मुसक्यात ॥
स्यामा स्याम कि नवल छबि परी रसिक बल बल जात ॥ ३ ॥

याको यह भाव कहत हें ॥ जो दोऊ स्वरूप रतन खचित सज्या पर बिराजे हें ॥ तहां ललिताजी कनककटोरा में दूध ओटि कें मिश्री सुगंध डारि ले आई ॥ तव ललिताजीने बिचार कीए जो दोउ स्वरूप बिराजे हें ॥ पहले में श्रीस्वामिनीजी के हाथ में देउगी तो श्रीठाकुरजी कौं पान कराय कें पान करेगी ॥ तहां मनोरथ सिद्ध न होइगो ॥ तातें

श्रीठाकुरजो के हाथ में देउगी ॥ तब पहले पान श्रीस्वामिनीजी करेंगी ॥ तातें दूव को कटोरा श्रीठाकुरजीके हाथ में दीयो ॥ तव लाडिली अचवाय पहले पाछे आप अघात ॥ काहेतें इनके हाथसों वे अरोगे ॥ उनके हाथ सों चिंतामनिरूप श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजीके हृदय में हे[1] ॥ तातें श्रीस्वामिनीजी के पान कीए श्रीठाकुरजी तृपत होत हे ॥ या प्रकार ललिताजी की प्रीतिचातुर्य देखि कें श्रीठाकुरजी मुसिकानें ॥ यह नवल छवि दूध पान करिवे के समय की सोभा उपर में (श्रीहरिरायजी) बलिहारी जात हों ॥ या प्रकार को भाव दामोदरदास कौं श्रीआचार्यजी महाप्रभूनमें हे ॥ तातें न्यारी श्रीठाकुरजी की सेवा नांहि पधराई ॥ श्रीआचार्यजी महाप्रभु ठाकुर हे * ॥ इनकी "मानसी सा परा मता" मानसी सेवा के अधिकारी हें ॥ लीलारसमें मगन रहत हें ॥

वार्ताप्रसंग १

आध्यात्मिक स्वरूप

(जन्म २)

पाछे एक समें श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप व्रजमें पाउ धारें ॥ तब दामोदरदास साथ हे ॥ श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप दामोदरदासकु दमला कहते ॥ ओर कहेते जो "दमला यह मार्ग तेरे लीये प्रगट कीयो हें" ॥ सो श्रीगोकुल में चोतरा एक गोविंदघाट उपर हतो ॥ सो ता ठोर छोंकर के नीचे श्री

---

१ पुंरूपं च पुनस्तदंतरगतं प्रावीविशत्स्वप्रिये । (सौ० पद्य)

* पुंभावरूप विप्रयोगात्मक स्वरूप (त्रिविधभावना)

२ हृदयगत धर्मी विप्रयोगरूप भावात्मक लीला "नमामि हृदये शेषे" यह भावमय लोला ।

आचार्यजी आप विश्राम करते ॥ सो ताके पास श्रीद्वारिका-नाथजी को मंदिर हे ॥ तहां श्रीआचार्यजी को चिंता उपजी[३]॥ जो श्रीठाकुरजीने आज्ञा दीनी हें ॥ जो जीवन को ब्रह्मसंबंध करवाओ ॥ तातें श्रीआचार्यजीने विचार्यो जो जीव तो दोष सहित हे ॥ ओर श्रीपूर्णपुरुषोत्तम तो गुननिधान हे ॥ एसें संबंध केसें होय ? तातें चिंता उपजी ॥ सो अत्यंत आतुर भए ॥ ता समें श्रीठाकुरजी तत्काल प्रगट होइके श्रीआचार्यजी महाप्रभु सों पूछी ॥ जो तुम चिंता–आतुर क्यों हो ? तब श्री आचार्यजी महाप्रभु आप कहे ॥ जो जीवको स्वरूप तो तुम जानत ही हो, दोषवंत हे ॥ जो तुमसो जीवन को संबंध केसे होइ ? तब श्रीठाकुरजी कहें जो तुम (जा) जीवनकू ब्रह्म-संबंध करो ताको हों अंगीकार करुंगो ॥ तुम जीवन को नाम देउगे तिनके सकल दोष निवृत्त होइगे ॥ तातें तुम जीवन को अंगीकार करो ॥

श्रीहरिरायजीकृत भावप्रकाश: जीवन के उद्धारिवे की चिंता भई ॥ ताको कारन यह ॥ जो उत्तम वस्तु को अंगीकारि कराए सुख लेई ॥ प्रीतम को मध्यम वस्तु दोषसहित जीव केसे अंगीकार कराइए ? यह मारगकी रीति हे ॥ तथा जगत में महात्मी जीव हे ॥ जो आप ब्रह्मसंबंध करावे तो लोक में जीवको दृढ विश्वास कोइ एक को होइ ॥

---

३ यहां श्रीआचार्यजी की बेठक हे (ऐतिहासिकतत्त्व) संभव हे यह जगह पहले द्वारकाधीशके मंदिरमें मिलि गई हो ।

तातें श्रीठाकुरजी के मुखतें ब्रह्मसंबंध की आज्ञा कराए ॥ तामें जीवनको विश्वास दृढ कराए जो श्रीआचार्यजी को वचन दीये हें ॥ जाको ब्रह्म संबंध होइगो ताकों न छोडेंगे ॥ यह माहात्म्य तें जीव ब्रह्मसंबंध सब करेंगे ॥ तातें श्रीठाकुरजी सो कहवाए ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

ए वातें श्रावन सुदि एकादशी[1] के दिन मध्यरात्र कों भई ॥ प्रातःकाल पवित्रा द्वादशी हती ॥ तातें पवित्रा सूत को सिद्ध करी राख्यो हतो ॥ सो पवित्रा ता समे के अक्षर हे ताको श्रीआचार्यजीने "सिद्धान्तरहस्य" ग्रन्थ कीयो हे ॥[2]

[3]ता समें दामोदरदास नेक दूरि सोये हते ॥ तातें दामोदरदास सो श्रीआचार्यजीने पूछी जो दमला, तें कछु सून्यो ? तब दामोदरदास नें कह्यो जो महाराज मेने श्रीठाकु-रजी के बचन सुने तो सही ॥ परि समुझ्यो नाही ॥ तब श्री आचार्यजी आप कहे ॥ जो मोको श्रीठाकुरजीने आज्ञा कीनी हे ॥ जो तुम जीवनको ब्रह्मसंबंध करवावो ॥ तिनको हों अंगीकार करूंगो ॥ और जीनको तुम नाम देउगे ॥ तिनके सकल दोष निवर्त्त होइगे । ताते ब्रह्मसंबंध अवश्य करनो ॥

---

१ વ્રજ સં. ૧૫૫૦ના શ્રાવણ સુદ ૧૧ ના રોજ

૨ આ પ્રસંગની સત્યતારૂપે ગ્રન્થ વિદ્યમાન છે.

૩ અહીં હાલ પણ દામોદરદાસજીની બેઠક છે,

श्रीहरिरायजी कृत भाव प्रकाश

दामोदरदास ने कही मेनें श्रीठाकुरजी के वचन सुने परि समुज्यो नाही ॥ ताको कारन यह जताए जो एकादसाध्यायमें भगवद्गीतामें श्रीठाकुरजी के बचन हे सो अपुने पढिके समुझो चाहे सो समुझे न जाई[२] ॥ जब गुरु कृपा करे तब समुझो जाई[३] ॥ तातें श्रीठाकुरजी के कहेतें दामोदरदास समुझे तब श्री ठाकुरजीके सेवक भए ॥ तातें दामोदरदास श्रीआचार्यजी के सेवक हे ॥ जब श्रीआचार्यजी समजावें तब ही समुझे ॥ यह कही (यह) जताए ॥ जो हृदय में दृढ ज्ञान गुरुकी कृपाहितें होई ॥ स्वामी सेवक भाव प्रगट दिखाए ॥ जो दामोदरदास कहे समुझे ॥ तो श्रीआचार्यजी की बराबरि ज्ञान कह्यो जाई तातें कहे में समुझ्यो नांहि ॥ अथवा कहे में समुझे नाहीं मेरे समुझवे को कहा प्रयोजन हे? आप कहे ताके समुझवे को प्रयोजन मोकों हे ॥

वार्ताप्रसंग १ शुरु

(ख) ओर कथा कहेत में श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों कहते ॥ जो दमला बडी बार भई हे श्रीठाकुरजी का वार्ता नांहि करी ॥

---

१ न तु मां शक्यसे... એ શ્લોકનો ફલિતાર્થ—ગીતામાં શ્રીકૃષ્ણ ઉપદેશક રૂપે હોવાથી ગુરુરૂપે કહ્યા.

२ तत्स्वरूपं तु दुर्ज्ञेयं स्वसामर्थ्येन सर्वथा ॥
(શ્રીહરિ૦ કૃત૦ માર્ગસ્વરૂપ નિ૦)

३ ज्ञातं तत्फलदं, तत्र हेतुस्तद्गुरुसंश्रयः ॥
(શ્રીહરિ૦ કૃત૦ સ્વમાર્ગમર્યાદા નિ૦)

ताको तात्पर्य यह हे जो श्रीठाकुरजी की बार्त्ता आपु श्रीस्वामिनी रूप, दामोदरदास ललितासखी रूप ।। सो ललिता सो एकांत रहस्यबार्ता श्रीठाकुरजी के मिलन को प्रसंग प्रथम जा प्रकार लीला करी हे सो नाही करी ।। सो करन के लिए सबन के आगे एसें कहते ।। (जो) कथा कहत समें ।। श्रीठाकुरजी की वार्ता नाहीं करी ।।

श्रीहरिरायजी कृत भाव प्रकाश

इति प्र. १. समाप्त.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

દામોદરદાસ હરસાનીજીની વાર્તાના પ્રસંગોનું પરિશિષ્ટ રહસ્ય.

પ્રસંગ ૧ બ્રહ્મસંબંધનો:—

આ ભાવાત્મક પુષ્ટિમાર્ગના પ્રભુ કૃષ્ણ પણ "**रसो वै सः**" એ શ્રુતિને અનુસાર ભાવાત્મક રસ રૂપજ છે. એટલે તેમના સંબંધી આ પુષ્ટિમાર્ગની સર્વ વસ્તુ ભાવરૂપ રસરૂપ જ—જાણવી. આ ભાવાત્મક સ્વરૂપનો સંબંધ પણ ભાવાત્મક જ છે. (**मुख्यो हि ब्रह्मसम्बन्धः, स भावात्मक एव हि**) તેમજ આ પુષ્ટિમાર્ગના પ્રકટકર્તા, શ્રીકૃષ્ણના મુખારવિંદરૂપ ભક્તોના અનુભવમાં આવેલા શ્રીઆચાર્યજીનું સ્વરૂપ પણ ભાવાત્મક જ છે. એટલે આ સમગ્ર ભક્તિમાર્ગ પણ ભાવાત્મક જ છે. (**तेन भावात्मको मार्गः**-) અતઃ આ માર્ગનાં પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલ પણ ભાવાત્મક શ્રીકૃષ્ણ જ છે. અને તે શ્રીગોકુલનાથજીએ આ પ્રસંગમાં સૂક્ષ્મરૂપે કહેલાં છે. (જુઓ દામો૦ ની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને રહસ્ય.)

હવે આ પ્રસંગમાં એક શંકા થાય છે કે:—

પૂર્વપક્ષી:—જેઓ પોતાના અને બ્રહ્મના સ્વરૂપને અજ્ઞાનથી ભૂલી ગયેલા છે, અને અવિદ્યાથી દોષને પ્રાપ્ત થયા છે, એવાને માટે બ્રહ્મસંબંધની આવશ્યકતા છે એ તમારૂં કહેવું ઠીક છે. પરંતુ દામોદરદાસજી તો શરણે આવ્યા પહેલાં જ પોતાના અને શ્રીઆચાર્યજીના અલૌકિક સ્વરૂપને (જન્મથી જ) જાણતા હતા. તેમજ તેઓની અંતર્દૃષ્ટિ હોઈ અલૌકિક ભગવત્સંબંધને પ્રાપ્ત થયેલાજ હતા. તે તેમના ભૌતિક ઇતિહાસમાં કહેલું છે. ત્યારે એમને બ્રહ્મસંબંધ લેવાની શી આવશ્યકતા? અને શ્રીઆચાર્યજીએ એમને પ્રથમ બ્રહ્મસંબંધ કેમ કરાવ્યું?

સિદ્ધાન્તી:—તમારો પ્રશ્ન યથાર્થ છે. પરંતુ આ ભાવાત્મક ભક્તિમાર્ગનું બ્રહ્મસંબંધ પણ ભાવાત્મક છે. અને આ નિર્દોષ ભાવાત્મક સંબંધમાં શૃંગારરસના આધારભૂત સ્થાયીભાવની સ્થિતિ છે. " **शृंगार रससंस्थानं स्थायी भावः प्रभुर्मतः ।** " માટે આ બ્રહ્મસંબંધ તે સ્થાયીભાવના આલમ્બન ભાવરૂપ જાણવું. પુષ્ટિમાર્ગમાં જે શ્રીકૃષ્ણ તત્ત્વરૂપે છે, તે રસરૂપ કહેવાય છે. " **रसो वै सः** " **इति श्रुत्या रसात्मा स विनिरूपितः ॥** અને તે સ્વામિનીજીના હૃદયમાં સ્થિત સ્થાયી ભાવાત્મક પ્રભુ કૃષ્ણ છે. " **तदेकहृदयस्थायी तद्भावः कृष्ण एव हि** " અને તે રસાત્મક કૃષ્ણની સેવાજ પુષ્ટિમાર્ગમાં છે, તે સેવાનો અધિકાર બ્રહ્મસંબંધદ્વારા પ્રાપ્ત થાય છે. માટે આ બ્રહ્મ-સંબંધ તે રસાત્મક સ્થાયીભાવરૂપ પ્રભુનો આલંબન ભાવ જાણવો. આલંબન વિના રસની સ્થિતિ નથી. માટે શ્રીઆચાર્યજીએ બ્રહ્મસંબંધ રૂપી આલંબન દ્વારા સમગ્ર દૈવી જીવોના આધિદૈવિક મૂલભૂત દામોદર-દાસજીના હૃદયમાં પ્રમાણ તરીકે ભાવાત્મક સ્થાયીભાવરૂપ રસાત્મા પ્રભુને સ્થાપ્યા.

આ પ્રકારે દામોદરદાસજીના હૃદયમાં સર્વ પ્રથમ નિરોધાત્મક પુષ્ટિમાર્ગના ભાવાત્મક સ્વરૂપની સ્થિતિ કરી અને તેમની દ્વારા સમગ્ર પુષ્ટિસૃષ્ટિમાં રસરૂપ સ્થાયી ભાવ કૃષ્ણની સ્થાપનાર્થે તેમને સર્વ પ્રથમ બ્રહ્મસંબંધ કરાવવાનું કોઈ પ્રયોજન રહેતું નથી જ.

આ પ્રસંગમાં (બ્રહ્મસંબંધના) શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીઆચાર્યજીના વલ્લભ (લીલામધ્યપાતી દાસ્યરૂપ) સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. અને તેના રહસ્યનું સૂક્ષ્મસ્વરૂપ શ્રીહરિરાયજીએ. " **प्रीतमको मध्यम वस्तु दोषसहित जीव कैसे अंगिकारि कराइये.** " આ શબ્દોમાં સમજાવ્યું છે.

આ દાસ્યરૂપ સ્વરૂપને શ્રીદ્વારકેશજી ભાવનાવાળા શેષ માહાત્મ્ય રૂપે ઓળખાવે છે, અને તે આ પ્રમાણે:—

ફલપ્રકરણમાં ભગવાને ગોપીજનોને કહ્યું કે, '**न पारयेहं निरवद्य संयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः**' દેવતાની આયુષ્ય લઈને તમારૂં ભજન કરીએ તો પણ પાર ન આવે. આ શ્રીમુખથી આજ્ઞા કરી, પરંતુ કૃતિમાં ન આવી. શ્રીમુખથી કહ્યું માટે શ્રીમુખાવતારનું પ્રાકટ્ય થાય ત્યારેજ વચનનું પ્રતિપાલન થાય. માટે શ્રીમુખાવતાર શ્રીવલ્લભાધીશે પ્રગટ થઈ સેવા કરી. સેવાના અધિકારી તો વ્રજભક્તો છે, માટે તેમના ભાવનું અનુસરણ કર્યું. (**सेवारीत प्रीत व्रजजनकी जनहित जग प्रगटाई**) આ પ્રકારે દાસ્યભાવ કર્યો. તેથી આપ આજ્ઞા કરે છે કે, '**इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः** ॥ અહિં સેવા તે શ્રીગોપીજનોના હૃદયસ્થિત ભાવાત્મક સ્વરૂપ કૃષ્ણ (શ્રીગોપીજનવલ્લભ) ની માટે "**कृष्णसेवा सदा कार्या**" એમ આજ્ઞા કરી છે.

શ્રીઆચાર્યજીનું શેષ માહાત્મ્ય સ્વરૂપ.

આ શેષ ભાવનો અનુભવ (આપ) "**नमामि हृदये शेषे**" એ વાક્યમાં કરે છે.

આ સ્વરૂપની કૃપાજ પુષ્ટિમાર્ગમાં ફલરૂપ છે, અને તે અત્યંત દુર્લભ છે.

શ્રીઆચાર્યજી તૃતીય સ્વરૂપે (**रूपं तत्त्रितयात्मकं**) જેમ લીલાના મધ્યપાતી છે. તેમ ભૂતલમાં પણ વલ્લભસ્વરૂપે દૈવી જીવોના સમુદ્ધારક છે.

જેમને અલૌકિક આભરણ હોય તેજ ઉદ્ધારક થઈ શકે—તે અલૌકિક આભરણ ("**हियें हार बिनु डोर**" એ દષ્ટાંતરૂપ) શ્રીઆચાર્યજીમાં સૂચન કરવાને અર્થે શ્રીગુસાંઈજીએ આપનું નામ સર્વોત્તમમાં "**अप्राकृताखिलाकल्पभूषितः**" એમ યોજયું છે. તેમજ

સપ્તશ્લોકીમાં " श्रीभागवतप्रतिपदमणिवरभावांशुभूषिता मूर्तिः " એમ કહેલું છે.

આ પ્રકારે લીલાસંપાદનકર્તાઅને જીવોના ઉદ્ધાર કર્તા દાસ્યરૂપ શ્રીવલ્લભનું સ્વરૂપ આ બ્રહ્મસંબંધના પ્રસંગમાં નિરૂપ્યું છે.

वार्ता प्रसंग २

ओर श्रीआचार्यजीनें श्रीठाकुरजीकी पास तीन वार यह मांग्यो ॥ जो मेरे आगे दामोदरदास की देह न छुटे ॥ ताको हेतु यह हे जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप संन्यास ग्रहण करिवेको बिचार मनमें करे ॥ ता समें श्रीगोपीनाथजी तथा श्रीगुसांईजी दोउ भाई बालक हते ॥ तातें मार्गकी वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभु दामोदरदासको समझाईके थापी ॥ दामोदरदास सों कछु गोप्य न राख्यो ॥ ओर श्रीआचार्यजी श्रीभागवत अहर्निश देखते, कथा कहते ओर दामोदरदास सुनते ॥ ओर मार्गको सब सिद्धांत भगवद्लीलारहस्य श्रीआचार्यजीने दामोदरदासके हृदय विषे स्थाप्यो[1] ॥ दामोदरदासके हृदे विषें मार्ग स्थापि केतेक दिन पाछे श्रीआचार्यजी आप संन्यास ग्रहण कीयो ॥ तब केतेक दिन पाछें श्रीगुसांईजीनें श्रीअक्काजीसों पूछी ॥ जो आचार्यजीने मार्ग प्रकट कीयो हे सो उच्छवको कहा प्रकार

---

१ અહીં શૃંગારરસનો સ્થાયી ભાવ જણાવ્યો છે. અહીં આ વાકચનું અનુસંધાન કરોઃ—दमला प्रभुदास बडभागी ताको पुनि पुनि आप सिखावे ॥

हे ॥ हम तो कछु जानत नाही ॥ तब श्रीअक्काजीने कह्यो ॥ जो मारग तथा उत्सव को प्रकार सब दामोदरदास सों कहे हे ॥ सो उनसों तुम पूछो ॥ तुमसों दामोदरदास सब कहेंगे ॥ तब श्रीगुसांईजी दामोदरदास के घर पधारे ॥ तब दामोदरदासने बहुत सन्मान करी भक्तिभावसों घरमें पधराए ॥ ता पाछे श्रीगुसांईजीने उच्छव के प्रकार पूछे ॥ सो दामोदरदासने कहें[1] ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यामें संदेह बहोत हे ॥ जो श्रीआचार्यजी कर्तुं, अकर्तुं अन्यथा कर्तुं सर्वसामर्थ्ययुक्त हे ॥ सो श्रीठाकुरजी पास क्यों मांगे ? ताको अभिप्राय यह हें जो दामोदरदास कों प्रेमलक्षना भक्ति दृढ होई चुकि हें ॥ ओर ललिताजी को स्वरूप हे ॥ सो श्रीठाकुरजी कों परमप्रिय हे ॥ सो ललिताजी मध्याजी हे ॥ दोउ स्वरूप की सेवा में मगन हे ॥ सो श्रीआचार्यजी के दर्शन ओर श्रीठाकुरजीके दर्शन दोउ में भाव हे ॥ जातें श्रीआचार्यजी श्रीठाकुरजी सों कहे जो में दामोदरदास कों जैसे नित्य अनुभव करावत हों तेसें तुमहू नित्य अपने स्वरूप कों अनुभव कराईयो ॥ यह कहिके यह जताए जो दामोदरदास पर अत्यंत प्रीति श्रीआचार्यजी की हें ॥ तातें जाने जो मति कहूं मेरे पाछे दमला कोई बात सों दुख पावे ॥ तातें श्रीठाकुरजी सों कहे ॥

---

१ આ પ્રસંગમાં શૃંગારરસનો સંચારી ભાવ કહ્યો છે.

ओर मारग दामोदरदासके हृदयमें स्थापन किये (सो) श्रीगुसांईजी के लीए ॥ ताको तात्पर्य यह हे जो यद्यपि श्रीगुसांईजी ईश्वर हे, बालक हें, तो कहा भयो ? परंतु श्रीआचार्यजी महाप्रभु अपुनो भक्तिमारग दामोदरदास के हृदयमें स्थापन करते ॥ आपु श्रीमुखतें कहतें "यह मारग दमला तेरे लिए प्रगट कियो हे" तातें वैष्णवके हृदयमें स्थापन करे तो आगे वैष्णव में फेले ॥ जो श्रीगुसांईजीके हृदय में प्रथम धर्म रहे ॥ तो गोकुलमें हि धर्म रहतो ॥ गोकुलमें तो पहलेंहीसों शेष अशेष माहात्म्य धारन कीए हें ॥ काहेतें बिंदुसृष्टि हे । ओर वैष्णव सो तो नादसृष्टि हे ॥ तातें इनकों तो भक्ति दिये तें होई ॥ तातें गोपालदास गाये हें ॥ "भक्तिमारगीय जीव स्वतंतर केवल भक्त न थाय" ॥ तातें भक्तिमार्गीय जीव स्वतंत्र हे ॥ दैवी ॥ परंतु केवल आपतें भक्ति न बढे ॥ तातें श्रीआचार्यजी नवरत्न में कहे हें ॥ "निवेदनं तु स्मर्त्तव्यं सर्वथा तादृशैरपि" या प्रकार भक्तनके हृदयमें राखें[1] ॥ तातें भक्तिमारग प्रकट भयो ॥ नहिं तो ईश्वरमारग कहावतो ॥ (तहां केवल) ईश्वरमारग कहावें ॥ भक्तिमारगमें ईश्वर हू मारग कहावे ॥ जहां भक्ति तहां भगवान ॥ जहां भक्ति नांहि तहां भक्तिमारगकी रीति सों भगवान न रहें ॥ अंतर-जामी व्हे आप रहे ॥ तातें भक्तनको उत्कर्ष जामें होई सो भक्तिमारग कहावें ॥

॥ इति ॥ प्रसंग २ समाप्त ॥

---

१ कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते ॥ દામોદરદાસમાં આ પ્રકારની સ્વતન્ત્ર ભક્તિ સ્થાપી.

પ્રસંગનું પરિશિષ્ટ રહસ્યઃ—

આ પ્રસંગમાં શ્રીગોકુલનાથજીએ આચાર્યસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કર્યું છે. પુષ્ટિમાર્ગના સ્થાપક ભક્તિરૂપ કમલના સૂર્ય શ્રીકૃષ્ણની સેવારૂપ કર્મના પ્રવર્તક, શ્રીકૃષ્ણરૂપ જ્ઞાનના દેવાવાળા–ગુરુરૂપ શ્રીઆચાર્યજીનું સ્વરૂપ છે. આપ પુષ્ટિમાર્ગના સ્થાપનકર્તા હોઈ તે માર્ગની રક્ષાના અર્થે તેમજ પુષ્ટિમાર્ગના કર્મરૂપ શ્રીકૃષ્ણની સેવાની ઉત્સવપ્રણાલી આદિની રક્ષાને અર્થે શ્રીઠાકુરજી પાસે દામોદરદાસની સ્થિતિ માગી.

ત્રણવાર માગવાનું કારણ એ કે જે વાત ત્રણવાર કહેવામાં આવે તે લોકમાં પણ પ્રમાણરૂપ થાય છે. બીજું, મન વાણી અને ક્રિયા એમ ત્રણે પ્રકારે દામોદરદાસને અનુભવ કરાવવાનો શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીઠાકોરજીને સંકેત કર્યો. જેથી સંયોગરસનું દાન થવાથી દેહ ટકી રહે એ મૂળ હેતુ છે.

આચાર્યસ્વરૂપને શ્રીદ્વારકેશજી ભાવનાવાળા અશેષ માહાત્મ્યસ્વરૂપે ઓળખાવે છે તે આ પ્રકારેઃ—

પ્રભુએ પોતાના નિજમાહાત્મ્યને દૈવીજનો પ્રતિ ભૂતલમાં પ્રકટ કરવાના અર્થે નિજ મુખારવિંદરૂપ શ્રીઆચાર્યચરણને ત્રણ પ્રકારે પ્રકટ થવાની આજ્ઞા આપી.

૧ સન્મનુષ્યાકૃતિરૂપે પ્રકટ થાવ, જેથી સુંદર સ્વરૂપ નિરખીને દૈવી જીવો પ્રેમપૂર્વક શરણ આવે.

૨ અતિકરુણાવંત રૂપે પ્રકટ થાવ, જેથી દોષવંત જીવો નિકટ આવી ઉપદેશ લઈ શકે.

૩ હુતાશરૂપે પ્રકટ થાવ જેથી શરણે આવેલા જીવોના પાપપુંજનો દાહ સહજે થઈ જાય.

આ ત્રણ પ્રકારનું જનઉદ્ધરણરૂપ શ્રીઆચાર્યજીનું સ્વરૂપ તે અશેષ માહાત્મ્યરૂપ જાણવું.

આ અશેષ માહાત્મ્યનું સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીએ સકલ બાલકત્વાવચ્છિન્ન વિષે ભૂમિમાં ભક્તિરૂપી ભગવન્માહાત્મ્યના પ્રચારાર્થે સ્થાપન કર્યું છે.

बहुरी एक समय दामोदरदास ओर श्रीगुसांईजी एकांतमें बेठे हते ॥ तब श्रीगुसांईजी दामोदरदाससों पूछे ॥ जो तुम श्रीआचार्यजी को कहा करि के जानत हो ? तब

वार्ता प्रसंग ३

दामोदरदासने कह्यो जो हम तो श्रीआचार्यजी महाप्रभून को जगदीस सो संसार में सब कोऊ कहत हें जो सबतें बडे जगदीस श्रीठाकुरजी हें, तिनतें अधिक करि जानत हें ॥ तब श्रीगुसांईजी दामोदरदास सों कहे ॥ जो तुम एसे क्यों कहत हो ! जो, श्रीठाकुरजी तें बडे हे ? तब दामोदरदास नें श्रीगुसांईजीसों कह्यो जो महाराज, दान बडो के दाता बडो ? काहुके पास धन वहोत हें तो कहा करे ? देई ताको जानिये ॥ ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभुनको सर्वस्व धन श्रीनाथजी हे ॥ सो हम जेसे जीवनको आपु दान कीयो हें ॥ तातें हम श्रीआचार्यजी को सर्व ते बडे करि जानत हें ॥[1]

इति वार्ता प्र. ३ समाप्त ॥

---

१ અહિં શ્રીઆચાર્યજીના સુધાસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન છે. દેહભાવ રહિત પુરુષાકાર સુધાનું સ્વરૂપ આ પ્રમાણે સમજવું:-જ્યાં દેહ અને આત્મા ભિન્ન નથી દેહ એજ આત્મા છે અને આત્મા એજ દેહ છે. દૃષ્ટાંત રૂપેઃ-સિદ્ધ ગવૈયાઓ દ્વારા તાદશ થતું સાકાર રાગનું સ્વરૂપ. આવી જ રીતે આ સુધા ભાવાત્મક સાકારરૂપ છે. તે સાકારપણામાં દેહભાવ નથી તેથી તે નિર્ગુણ છે અને તે પુરુષાર્થરૂપ હોવાથી પુરુ-

बहुरी एक समय श्रीगुसांईजी बेठक म बेठे हते ॥ द्वे चार वैष्णव कुंभनदास गोविंददास

वार्ता प्रसंग ४

आदि एकांत हसिवे खेलिवे के लिये पास बेठे हते ॥ आपु उनसों हँसत खेलत मसकरी करत बहुत ही प्रसन्नता में खेल की वार्त्ता करत हते ॥ ता समें दामोदरदास तहाँ आए ॥ तब श्रीगुसां-ईजी बहुत आदर सन्मान कीए ॥ पाछें दामोदरदास तहाँ आय के दंडवत करि के बेठे ॥ तब श्रीगुसांईजी सों दामोदर-दासने कह्यो जो महाराज, अपनो मारग निश्चिंतताको नांहि ॥ यह मार्ग हें सो तो अत्यंत कष्ट आतुरता को हे, दुःख को हे ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे जो तुम धन्य हो ॥ साँची कहत हो ॥ परि हम को जब श्रीआचार्यजीकी कृपा होइगी तब कष्ट आतु-रता होइगी ॥ यह मार्ग तो श्रीआचार्यजी के अनुग्रह विना ना होई ॥

तब दामोदरदास दंडवत कीए ओर कहें जो हमको राजसों एकबेर बीनती करनी सो करी ॥ पाछे आप प्रभू हो भली जानोगे सो करोगे ॥ परि यह मारग तो या भांतिको हे ॥ तब श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न भए ओर कहें जो हमको

ષાકાર છે. જેમ દેહમાં વીર્ય તેમ આનંદમાં સારભૂત આ સુધા જાણવી. આનંદરૂપ શ્રીઠાકોરજીનું આધિદૈવિક સ્વરૂપ સુધા હોવાથી શ્રીઠાકોરજી કરતાં શ્રીઆચાર્યજી (સુધારૂપ) ને મોટા કહ્યા. અને તે લોકરીતિના દૃષ્ટાંતદ્વારા સિદ્ધ કર્યું. આ પ્રસંગમાં શૃંગારરસનો સ્થાયી રતિભાવ જાણવો.

यह वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभू तुम द्वारा कहे ॥ जो तुम न कहोगे तो ओर कोन कहेगो ? तुम को देखत हैं तब चित्त अतिप्रसन्न होत हे तातें सुखेन कहो॥ आप सरिखे श्रीआ-चार्यजी के सेवक जानिके कहत हैं ॥ पाछें दामोदरदास की शिक्षा अंगिकारि करत भये ॥ तातें बडे सो बडे ॥

यह लोकरीति सों विरुद्ध हे ॥ जो सेवक स्वामीसों शिक्षा करें ॥ यह संदेह होय तहां कहत हे दामोदरदास ललितारूप हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो श्रीचंद्रावलीजी कों (श्रीगुसांईजी) पर-कीयारसभाव हे ॥ परकीयारस में प्रीति बहोत हें, अष्टप्रहर चित्त प्यारे सों लग्यो रहत हे ॥ सो जारभाव को प्रकार दिखाये ॥ जो ओर के संग हांसी केसी ?

(दूसरो हेतु) तथा दामोदरदास की देह मात्र दीसत हे परंतु श्रीआचार्यजी को आवेश अष्ट प्रहर रहत हे ॥ जो सुख सों श्रीआचा-र्यजी बोलत हें ॥ तातें श्रीगुसांईजी कहत हें ॥ जो हमकों यह वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभु तुम द्वारा कहे ॥*

इति प्र. ४. समाप्त.

---

* શુદ્ધપુષ્ટિભક્તોનું સ્વરૂપ સાક્ષાત્ ભગવાનની સમાન જ બધી પ્રકારે હોય છે. જુઓ:—

१ स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा ॥ (पुष्टिप्रवाहमर्यादा)

२ सेवकः सेव्यं यादशरूप पश्यति स्वस्यापि तादृशं रूपं संपाद-
यति। (१-२-२३)

આ શ્રીહરિરાયજીકૃત ભાવપ્રકાશનું મૂળ શ્રીહરિ૦કૃત સ્વમા-ર્ગીયસેવાફલનિ૦ માં છે. જુઓઃ—

एवमेव हि तद्भक्तेः स्वातन्त्र्यं नान्यथा भवेत् ॥ ५ ॥ ત્યાંથી यतो भगवता प्रोक्तं... ત્યાં સુધી (૧૦૩) ના શ્લોકોનો આ ફલિતાર્થ સમજવો. તે શ્લોકોમાં બતાવેલી રાસસ્ત્રીઓની સ્વતત્રભક્તિ શ્રીઆચાર્યજીએ નિજ સેવકોમાં સ્થાપી છે-તેથી શ્રીઆચાર્યજીના સેવકોમાં મુખ્ય દામોદરદાસ આદિ સ્વતન્ત્ર ભક્તો છે અને તેમના અર્થે જ સમર્પણની આજ્ઞા અને પુષ્ટિમાર્ગનું પ્રાકટ્ય છે. એવા શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તોમાં શ્રીમહાપ્રભુજીનો આવેશ નિત્ય હોવાથી શ્રીગુસાંઈજીએ પણ આજ્ઞા કરી કે "जो हमकों यह वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभू तुम द्वारा कहे" (वार्ता-म्प्रायस्तवास्यतः ॥ (संस्कृत वार्ता) તેજ વાતની પુષ્ટિને અર્થે શ્રીહરિરાયજી स्वमार्गीयसेवाफलनि० ના ૧૧ મા શ્લોકમાં આ પ્રકારે આજ્ઞા કરે છે કેઃ-श्रीमत्प्रभोस्तु तद्दानमाचार्येभ्यो न सशयः ॥ શ્રીગુસાંઈજીને જે ભાવપ્રાપ્તિ (સ્વતન્ત્રભક્તિ) થઈ, તે અસ્મદાચાર્યવર્ય શ્રીમદ્ વલ્લભાધીશદ્વારાજ થઈ, તેમાં કશો શક નથી. માટે જ શ્રીહરિરાયજીએ અહીં ભાવપ્રકાશમાં કહ્યું છે કે दामोदरदास की देह मात्र दीखत हे ॥ परंतु श्रीआचार्यजी को आवेश अष्टप्रहर रहत हे ॥ जो मुखते श्रीआचार्यजी बोले हे ॥ આ પ્રમાણે શ્રીહરિરાયજીના સંસ્કૃત ગ્રન્થો શ્રીહરિરાયજીએ વ્રજભાષામાં કરેલા આ ભાવપ્રકાશ સાથે સર્વ સમત રૂપે હોવાથી આ ભાવપ્રકાશની પ્રામાણિકતા પણ સિદ્ધ થાય છે. શું આવાં રહસ્યો અને અન્તરંગી પ્રકારો લીખ્યીયાઓ સમજી શકે?

આ પ્રસંગમાં શ્રીઆચાર્યજીનું ભક્તહૃદયસ્થિત વિપ્રયોગાત્મકૃષ્ણાસ્ય સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન છે. આ પ્રસંગમાં શૃંગારરસનો સંચારી ભાવ કહ્યો છે.

वार्ता प्रसंग ९

(क) ओर एक दिन दामोदरदास के पिता को श्राद्ध दिन हतो॥ ता दिन श्रीगुसांईजी तहां पधारे ॥ वाके पिता को श्राद्ध करवायो ॥ पाछें उत्थापन के समें दामोदरदास दरसनकों आए ॥ तब श्रीगुसांईजी ने कही ॥ जो मोकूँ श्राद्ध की दक्षिणा देउ ॥ तब दामोदरदास ने कही जो दक्षिणा में एक बात कहूंगो ॥ सो सिद्धान्तरहस्य के ड़ेढ श्लोक को व्याख्यान कहे ॥ यह एसी बात हे ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे जो आगे कहो ॥ तब दामोदरदास ने कही जो मेने तो इतनो संकल्प कीयो हे ॥ तब श्रीगुसांईजी चुप करि रहें ॥ पाछें दामोदरदासने मारग की प्रणालिका कही ॥ ॥ श्रीभागवतकी टीका श्रीसुबोधिनीजी श्रीआचार्यजी महाप्रभूनके ग्रन्थनकी टीका ओर रहस्यवार्ता श्रीगुसांईजीकी आगे सब कहें ॥

(ख) ता पाछें श्रीगुसांईजी दामोदरदास को नमस्कार करन न देते॥ यातें जो श्रीगुसांईजी अपने मनमें यों बिचारे जो श्रीआचार्यजी महाप्रभु दामोदरदास के हृदे विषे (सदा) सर्वदा बसत हें ॥ तो इन पास क्यों नमस्कार करन दीजे ? यातें नमस्कार न करन देते ॥ ओर दामोदरदासको श्रीगुसांईजी अपनो चरणोदक हू न देते ॥

पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभूनने दामोदरदासको दरशन

दीनो ओर आज्ञा दीनी जो तू श्रीगुसांईजीको चरणोदक नित्य लिजियो ॥ तब प्रातःकाल दामोदरदास श्रीगुसांईजी के पास आए ॥ चरणोदक माग्यो ॥ तब श्रीगुसांईजीने चरणोदककी नाहीं कीनी ॥ तब दामोदरदासने श्रीगुसांईजी सो कह्यो जो मोकों श्रीआचार्यजीकी आज्ञा भई हे ओर श्रीआचार्यजी को दरशन भयो हे ॥ ओर कह्यो हें जो चरणोदक लीजियो ॥ तब श्रीगुसांईजीने चरणोदक दीनो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

(क) श्राद्ध करायवेको अभिप्राय यह (हे) जो दामोदरदास के पितरन को उद्धार तो होइ चुक्यो ॥ जब ए भक्त में (हे) ॥ मर्यादा-मारग में नृसिंहजीने प्रह्लाद सों कह्यो हें[1] एकीस पुरषा भक्त के तरे ॥ सो दामोदर-दास तो पुष्टिमार्गीय हे ॥ तातें इनके पितर तरे यामें कहा संदेह हे ? परंतु पुष्टिमार्ग के संबंध विना पुष्टिमार्ग में अंगीकार न होई ॥ तातें श्रीगुसांईजी को संबंध श्राद्धद्वारा पाय पुष्टिमार्ग में अंगीकार भयो ॥ जो दामोदरदास के श्राद्ध तें पुष्टिमार्गमें अंगीकार होई ॥ परंतु गुरुकी अपेक्षा हे ॥ गुरु बिना अंगीकार में दृढ अंगीकार नांहि ॥ तातें श्रीगुसांईजीको संबंध कराए ॥

•

तहां यह संदेह होय जो दामोदरदासको श्राद्ध कराए ॥ इनके

---

१ त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ।
यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥ श्री. भा. ७-१०-१८

पितरन को पुष्टिको संबंध भयो ॥ और भगवदीय को नाहिं कराए ॥ सो उनके पितरनको केसें होइगो ? यह संदेह होय तहां कहत हे ॥ यह पुष्टिमार्गीय दैवी जीव के आधिदैविक (मूलभूत) दामोदरदास हे ॥ जहां इनके पितरन को पुष्टिसंबंध भयो तब सगरे पुष्टिमार्गीयके पितरनको पुष्टिसंबंध भयो ॥ जेसे मारग, दामोदरदास के पितरन को पुष्टिसंबंध (भयो) एसे मारग दामोदरदास के लिए ॥ तामें सगरे पुष्टिमारग के (जीवन के) लिए ॥ या प्रकार मूलमें भक्ति ता करि के सबमें फेले ॥ या प्रकार दामोदरदासकी भक्ति करि के जीवमें भक्ति बढि हें ॥ जीवको सामर्थ्य नांहि हें ॥ जो पुष्टिमारगकी भक्ति एक छिन करि शके ॥

ओर दक्षिणामें दामोदरदासने सिद्धांतरहस्य के डेढ श्लोक को व्याख्यान कियो ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे आगे कहो ॥ तब दामोदरदासने कही जो मेंने तो इतनो (ही) संकल्प कीयो हे ॥ ताको कारन यह हे जो सत्यसंकल्प (तो) इतनेही में सगरो मारग हे ॥

(ख) श्रीगुसांईजी चरणोदक दामोदरदास को न देते दंडोत करन न देते ॥ सो यातें जो श्रीस्वामिनीजीकी अनन्य सखी हे ॥ उनही को करे ॥ तातें दामोदरदासने हठ नांहि कीयो ॥ पहले चरणोदक न लीयो ॥ तातें श्रीआचार्यजी (ने) दामोदरदास को समझायो ॥ जो तूं श्रीगुसांईजी को चरणोदक लिजीयो ॥ दंडोत करियो में श्रीगुसांईजी के हृदय में बिराजत हूं ॥ मेरो स्वरूप मोतें प्रगटे हे ॥ तब दामोदरदास

श्रीगुसांईजीसें यह भेद कहे[1] ॥ तब श्रीगुसांईजी कहे लेहू ॥ प्रसन्न होइके चरणोदक दीये ॥ जाने जो श्रीआचार्यजी के भावतें लेत हें ॥ मेरे भावतें नांहि ॥

याही तें श्रीगोपीनाथजी यद्यपि (श्रीआचार्यजी के बडे पुत्र) श्रीगुसांईजी के बडे भाई हे ॥ परंतु काहू वैष्णवने चरणोदक नांहि लियो ॥ या भावतें श्रीगुसांईजी के सात बालक ओर वल्लभकुलके चरनोदकमें श्रीआचार्यजीको भाव जनायो ॥ तातें चरनोदक लेनो ॥ दंडोत करनो ॥ यह सिद्धांत जनायो ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

---

१ भेद શબ્દથી લીલાના પ્રાકટ્યનો ભેદ સમજવો. " સંવાદ " માં દામોદરદાસજીએ શ્રીગુસાંઈજીને આ પ્રકાર સમજાવ્યો છે. તેનો ભાવાર્થ આ પ્રમાણે છેઃ-જ્યારે દામોદરદાસ શ્રીગુસાંઈજીના ચરણમાં પડ્યા ત્યારે શ્રીગુસાંઈજીએ તેમને શ્રીહસ્તથી ઉઠાડી અને પોતાને નમન આદિ ન કરવાની આજ્ઞા કરી. ત્યારે દામોદરદાસજીએ આ ભેદ કહ્યો કેઃ-લીલામાં મારૂં પ્રાકટ્ય આપથી જ છે. (લલિતાજીનું પ્રાકટ્ય ચંદ્રાવલીજીથી જ છે.) આ અર્થ અહિં ન લઈએ તો શ્રીગોપીનાથજી પણ શ્રીઆચાર્યજીના પુત્ર હતા. તેથી તેમનું ચરણોદક લેવામાં કશો વાંધો ન જ હોય. પરંતુ જે ભગવદ્ભક્તોને મૂલ લીલાનું જ્ઞાન અને પોતાના સ્વરૂપનો અનુભવ છે તેઓની સર્વ ક્રિયા વાણી અને ભાવના પોતાના મૂલ સ્વરૂપ રૂપે જ સ્થિત રહે છે અને તે મૂલ સંબંધથી જ તે સર્વ કાર્ય અહીં પણ તે પ્રમાણે કરે છે. શ્રીગોનાથજીનું મૂલ સ્વરૂપ લીલામાં બલદેવજીનું છે. " બલદેવ શ્રીગોપીનાથ

ओर दामोदरदास को श्रीआचार्यजी तीसरे दिन दरसन देते ॥ मारग की रहस्यवार्ता कहते ॥

वार्ता प्रसंग ६ एसी कृपा करते ॥ ओर कदाचित तीसरे दिन दरशन न होतो तो ता दिन दामोदरदास के पेट में पीडा बहुत होती, अत्यंत कष्ट पावते ॥ ओर पाछे दरसन होतो तब तत्काल कष्ट निवर्त्त होई जातो ॥ एसी भांति केतेक वर्षपर्यंत श्रीआचार्यजी दरशन दीनो एसी कृपा करते ॥ जो बात होती सो सब दामोदरदास श्रीगुसांईजीकी आगे कहते ॥ ओर मारग के प्रकार (प्रकाश?) की वार्ता अहर्निश करते ॥ श्रीगुसांईजी दामोदरदास की उपर बहोत कृपा करते ओर कहते जो दामोदरदास के हृदयमें श्रीआचार्यजीमहाप्रभू सदा बिराजे हे ॥

કહીએ" (વલ્લભાખ્યાન) માટે તે મર્યાદાપુષ્ટિ છે. જ્યારે શ્રી આચાર્યજીના સેવકોનાં સ્વરૂપ નિર્ગુણ આધિદૈવિક ભાવરૂપ છે. જેથી શ્રીગોપીનાથજીની ભક્તિ તેમને અનુકૂલ હોય જ નહિ તે સહજ છે. આ પ્રસંગમાં શૃંગારરસનો ઉદ્દીપન ભાવ કહેલો છે.

सर्वात्मभावसाध्यो हि स्वरूपानन्द उच्यते । (श्रीहरि०) સર્વાત્મભાવથી પ્રાપ્ત થતો આનદ તે સ્વરૂપાનંદ કહેવાય છે.
સર્વાત્મભાવની વ્યાખ્યા:--

'अहं भगवतः सर्वं' इति सर्वात्मभावनम् । (श्रीहरि०) હું સમગ્ર પ્રભુનો એનુ નામ સર્વાત્મભાવ. વધુ સર્વાત્મભાવ સમજવા માટે જુઓ "વાર્તારહસ્ય"

दामोदरदास कों तिसरे दिन श्रीआचार्यजी दरशन देतें ॥ ताको

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

हेतु यह जो तिन दिन लों दरसनको आवेस तामें मगन रहते ॥ तिसरे दिन सरीर की सुधि होती ॥ सो विरह कष्ट होतो ॥ सो दरशन करि फेरि स्वरूपानंदमें मगन होई जातें ॥

इति प्र. ६ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ७

ओर पहले दामोदरदास श्रीगुसांईजीकी आधी गादी दाबि के बेठते[1] ॥ सो एक दिन श्रीआचार्यजी महाप्रभूने देख्यो ॥ तब श्रीआचार्यजी ने दामोदरदाससों पूछी जो दमला, तु श्रीगुसांईजी को कहा करिके जानत हे ? तब दामोदरदासने कही जो महाराज, हों तो इनकों तुमारे पुत्र करिके

---

१ આ પ્રસંગ લગભગ સંવત ૧૫૮૦ ના અરસામાં બનેલો છે. જ્યારે શ્રીગુસાંઈજી આઠ વર્ષના હતા. અહિં ગાદી દાબીને બેસતા એવા શબ્દો છે. પ્રાચીન તમામ હસ્તલિખિત પુસ્તકોમાં આજ શબ્દો જોવામાં આવે છે. તેનો ગુજરાતી અનુવાદ કરનારાઓએ "અડધી ગાદી ઉપર બેસતા." એમ અર્થ કર્યો છે, તે અત્યંત ભ્રમોત્પાદક છે. દાબવો શબ્દ વાળવાના અર્થનો દ્યોતક છે. સારાંશ એ છે કે દામોદરદાસજી શ્રીગુસાંઈજીની અડધી ગાદી વાળીને પાસે બેસતા (આજ પણ કેટલાક બાલકોને ત્યાં તેમના પિતાના પ્રાચીન સેવકોને એ પ્રમાણે કવચિત્ બેસતા જોવામાં આવે છે. પરંતુ તેમ કરવું તે ઉચિત નથી. તે કૃતિમાં માહાત્મ્યજ્ઞાનનું વિસ્મરણ હોવાથી

जानत हूं ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभू दामोदरदास सों कहे जो जेसें तूं मोकों जानत हे । तेसें इनको स्वरूप जानियो[२] ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ८

एक समें श्रीगुसांईजी बेठे हें ॥ तब दामोदरदास ने कही ॥ महाराज, अपनो मारग निसंगता को नांही ॥ रूप प्रगट कर्ता (हे) ॥ (ओर कही जो) एक समें श्रीमहाप्रभुजी पोढे हते ॥ तब श्रीगोवर्धननाथजी आप कहे जो जीव को उद्धार करो ॥ लीलाकर्त्ता अवलंबन सुद्धि करता उद्दीपन भाव या प्रकार डेढ श्लोक कहे ॥

ત્યાં લોકવત્ સ્નેહ થઈ જવાથી ભાવની હાનિ થાય છે) યદ્યપિ લોક અને વેદથી દામોદરદાસજીનું આ પ્રકારે બેસવું વિરુદ્ધ નથી. તો પણ દાસ્યભાવને જણાવવાને અર્થે જ શ્રીઆચાર્યજીએ તેમને ટોકયા. લોકમાં પિતાના મુખ્ય માનનીય સેવક પુત્રની બરોબરનું માન પ્રાપ્ત કરી શકે છે. તે રાજદ્વારમાં પણ દેખાય છે. તેમજ વેદથી પણ પટ્ટ શિષ્ય અને પુત્રનો એક સમાન અધિકાર છે. શિષ્યને પુત્ર વત્ જ કહેલો છે-પરંતુ અહિં તો સ્વવંશમાં પણ શ્રીઆચાર્યજી જ બિરાજતા હોઈ શ્રીઆચાર્યજીની સમાન જ દાસ્યભાવનું અનુકરણ કરવું જોઈએ. અન્યથા દાસ્યભાવમાં ત્રુટિ પ્રાપ્ત થાય. યદ્યપિ દામોદરદાસજીને આ કાર્ય બાધકરૂપ ન હતું છતાં પણ દામોદરદાસજી દ્વારા સર્વે દૈવી જીવો પ્રતિ શ્રીઆચાર્યજીએ આ શિક્ષા કરી છે-દામોદરદાસજી તો શ્રીઆચાર્યજીના તદ્રૂપ જ છે.

२. श्रीविट्ठलेशे स्वाखिलमाहात्म्यस्थापकाय नमः ॥ (श्रीहरिं०)

श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि ॥
साक्षात् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते ॥ १ ॥
ब्रह्मसंबंधकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः ॥ यह डेढ श्लोक में सब आयो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो (अभिप्राय) कहत हे ॥ श्रावण महिना के पति भगवान हे ॥ एक अमल जो उजियारो पक्ष भक्त-जननको हे ॥ तिन एकादशी को दिन प्रभून कोहे ॥ एकादश्यां ॥ एकादश इंद्रिय की शुद्धि भक्तजननको करायवे को ॥ महा निशि जो अर्द्धरात्रि रासलीलामें साक्षात् भगवान (भक्तन) सों निसंक होई रहस्यवार्ता करत हे लीलामें तेसेही श्रीआचार्यजीसों बोले ॥ सगरे अक्षर कहत हे ॥ यहां तांई श्रीआचार्यजो उपर भाव ॥ श्रीगोवर्द्धननाथजी अब कहें ॥ ब्रह्मसंबंध करावो ॥ सबको देहजीवकों ॥ (तातें दामोदरदासने श्रीगुसांईजीसों कह्यो) जो भक्तिमारगके विस्तारें की आज्ञा हे सो तुम करो ॥ अज्ञान जीव हें ॥ याही ब्रह्मसंबंध तें दोष जाइगें ॥ अंगीकार कराए ॥ एक श्लोकमें लीला ॥ आधे श्लोकमें मारग की रीति ॥ सब इनमें आयो ॥ या प्रकार श्रीगुसांईजी सों दामोदरदासने कह्यो ॥

ओर ता पाछे दामोदरदासकी सहायतासु आपने शृंगाररसमंडन ग्रन्थ कियो ॥ *

इति प्र. ८ समाप्त.

---

* यस्मात् सहायभूतौ...(शृं. रसमंडनम्)

प्रसंग ૮–પુષ્ટિ સૃષ્ટિના જીવોને આસુરભાવરૂપ દોષની ઉત્પત્તિનો પ્રકાર:–સૃષ્ટિ પ્રક્રિયાના પ્રારંભમાં દૈવી જીવ જેમ આસુરી જીવથી જુદા થયા, તેમ ઇંદ્રિય પણ દૈવી અને આસુરી એમ બે પ્રકારની થઈ. ત્યારે આસુરી જીવ દૈવી જીવ પાસે આવીને કહે કે મારૂં પણ ગાન કર. ત્યારે દૈવી જીવે કહ્યું કે "यो यदंशः सतं भजेत" હું ભગવદંશ છું ભગવદ્‌ગાન કરીશ. તેથી દૈવી જીવને પાપવેધ ન થયો. ત્યારે આસુરી જીવ દૈવી ઇંદ્રિય પાસે ગયો. અને દૈવી ઇંદ્રિયને ભયત્રસ્ત કરીને કહ્યું કે મારૂં ગાન કર. તે વખતે દૈવી જીવનો દેહ તો હતો નહિ કે જેથી દૈવી ઇંદ્રિય તેમાં પ્રવિષ્ટ થઈ શકે. જેથી ઇંદ્રિયે સભય થઈ આસુરી જીવનુ ગુણગાન કર્યું. ત્યારે દૈવી ઇંદ્રિયને પાપવેધ થયો. જેથી દૈવીજીવ શુદ્ધ તથા દેહ શુદ્ધ. ઇંદ્રિયમાં દ્વૈવિધ્ય. ઇંદ્રિય સ્વય દૈવી, પરતુ આસુરીના ગાનથી આસુર ભાવવાળી થઈ. એ મૂલ દોષ છે. આ પ્રકાર "द्वयाह प्राजापत्याः" એ શ્રુતિમાં કહ્યો છે. વ્યાસજીએ પણ "द्वैधा ह्यर्थभेदात्" એ સૂત્રમાં નિરૂપણ કર્યું છે. આ દોષનિવારણના અર્થે શ્રીઆચાર્યજીનુ પ્રાકટ્ય થયુ. (भावभावना) અને આપે ભગવદાજ્ઞાને લોકમાં પ્રમાણરૂપ કરાવી બ્રહ્મસંબંધદ્વારા આ મૂલ દોષ અને તેથી ઉત્પન્ન થતા પાંચે દોષની નિવૃત્તિ કરી.

શ્રીહરિ૦ કૃત૦ ભાવનું સ્પષ્ટીકરણ :

રાસાદિ લીલાની માફક અહીં પણ શ્રીઆચાર્યજી (स्वामिनीभावसयुक्त) સાથે શ્રીગોવર્દ્ધનધરે પાંચ પ્રકારે ભાવાત્મક નિર્ભય અને સ્વતંત્ર રૂપે રમણ કર્યુ તે આ પ્રકારે:–પાંચ પ્રકાર:-આત્માથી–મનથી–વાક્‌-પ્રાણથી--ઇંદ્રિયથી અને શરીરથી.

સાક્ષાત ભગવાન (साक्षाद्भगवता) સ્વરૂપ દ્વારા પ્રકટ થઈ જીવોને ફલનું દાન કર્યું તે આત્માથી રમણ–શ્રીઆચાર્યજીની ચિંતાને આપે જાણી એટલે બન્નેના મનની એકતા વિના હૃદયગત ભાવ પરસ્પર ઉદય ન થાય માટે અહીં, મનથી રમણ. આપ ચિંતા કેમ

ओर प्रथम श्रीआचार्यजी महाप्रभू दामोदरदास सों कह्यो जो यह मारग तेरे लिए प्रगट कियो हे ॥ जो जहां लगि श्रीआचार्यजी के मारग की स्थिति हे तहां तांई दामोदरदास की (भी) मारगमें स्थिति गोप्य हे ॥

वार्ता प्रसंग ९

ओर दामोदरदासने कह्यो जो मेनें श्रीठाकुरजीके वचन सुने परि समुझ्यो नांहि ॥ ता समें श्रीआचार्यजीने कह्यो अज हू दश जन्मको अंतराय हे ।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ताको हेतु यह ॥ जो जब लगी श्रीआचार्यजी महाप्रभूके मारग की स्थिति हे तब लगी दामोदरदास को प्रागट्य फेरि फेरि हे ॥ (गोप्य रीतिसों) मारग को स्तंभ यातें हे ॥ जो श्रीआचार्यजीने दामोदरदास के हृदयमें भगवद्लीला स्थापी ॥ सो संपूर्ण सृष्टि के उद्धार के निमित्त ॥ दामोदरदासके जनम दसलों मारग की स्थिति हे* जेसे वल्लभकुल को प्रागट्य हे ॥ तेसें

કરો છો એ વાણીથી લીલા કરી અને તે શ્રવણ કરી આચાર્યજી-એ પ્રતિ ઉત્તર કર્યો તેથી આપ સંયોગાત્મક વાણીદ્વારા-પ્રાણમાં પ્રવેશ્યા—વાક્પ્રાણથી, પ્રાણનો ધર્મ બળ છે. પ્રભુના પ્રાણ અલૌકિક છે માટે ભગવાનને વશ કરી વચન લીધું—ઇંદ્રિયથી. પછી આપ અંતર્ધ્યાન થયા તે કાયિક લીલા. આ પ્રકારે સ્વામિની સ્વરૂપે ભાવાત્મક રમણ શ્રીઆચાર્યજી સાથે શ્રીજીએ કર્યું.

* ભાવાત્મક આધિદૈવિક માર્ગની, તે માર્ગ આ પ્રકારે ભક્તોના

हि भक्ति दृढ करन के लिए दामोदरदास को हू अनेक वैष्णवनमें प्रागटच हे ॥

इति प्र. ९ समाप्त.

वार्ता प्रसंग १०

एक समें श्रीआचार्यजी सुंदर सिलाके पास [जाको पूजनी सिला कहें हे तहां छोंकर के निचे श्रीआचार्यजीकी बेठक हें तहां] दामोदरदासकी गोदमें मस्तक धरि आप पोढे हे ॥ ता समय श्रीगोवर्द्धननाथजी मंदिरतें श्रीआचार्यजी के पास पधारे ॥ तब दामोदरदासने सेनहीमें श्रीगोवर्द्धननाथ-

---

હૃદયમાં રહ્યો છેઃ—શ્રીઠાકુરજી અને તેમની સેવાના પદાર્થો અને ક્રિયાઓમાં ભાવનાસહિત ભકતોને અનુભવ—ગોસ્વામિબાલકોમાં અને તેમની પ્રત્યેક ક્રિયામાં શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો અનુભવ. વૈષ્ણવોમાં અને તેમની ક્રિયાઓમાં લીલાસૃષ્ટિની ભાવનાનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ—વ્રજ ગિરિરાજજી જમનાજી ગોકુલ અને વ્રજવાસીયોમાં લીલાના આધિદૈવિક સ્વરૂપોની ભાવનાનો અનુભવ. ઉપર્યુકત ચાર પ્રકારથી પ્રકટ થયેલા આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગનો અનુભવ એક પણ ભકતને જ્યાં સુધી છે ત્યાં સુધી આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગની સ્થિતિ ભૂતલ ઉપર છે પછી ક્રિયાત્મક (ભૌતિક સેવા) અને જ્ઞાનાત્મક (શુદ્ધાદ્વૈત સિદ્ધાંત) માર્ગનીજ વિદ્યમાનતા રહેશે.

આધિદૈવિક પુષ્ટિમાર્ગના તિરોધાનના કારણભૂત ભાવાત્મક સ્વરૂપો અને ભાવાત્મક ગ્રંથોથી બાલકો અને વૈષ્ણવોનું વિસ્મરણ જાણવું. માટેજ શ્રીજીથી (ભાવાત્મક કૃષ્ણ) બહિર્મુખ ન થવાનો ઉપદેશ બાલકો અને વૈષ્ણવોને શ્રીઆચાર્યચરણે કરેલો છે.

जीसों कहे जो तुम अब हि यहां मति आवो ॥ तुम चंचल हो॥ (तातें) श्रीआचार्यजी जागि उठेंगे ॥ तब श्रीगोवर्द्धननाथजी ठाडे होय रहे ॥ तब श्रीआचार्यजी जागि उठें ॥ कहे बाबा उहां क्यों ठाडे होय रहे हो पास पधारो ॥ तब श्रीगोवर्द्धन-धर पास आय श्रीआचार्यजीसों कहे ॥ जो तुम्हारो सेवक (ने) मोकूं बरज्यो जो यहां मति आवो ॥ श्रीआचार्यजी जागि उठेंगे ॥ तातें में दूरि ठाडो रह्यो ॥ तब श्रीआचार्यजी दामो-दरदास उपर खीजन लागें ॥ जो तें श्रीगोवर्द्धननाथजीकों क्यों बरजे ? तब श्रीगोवर्द्धननाथजी कहें ॥ इनसों क्यों खीझत हो ? इननें अपनो धर्म राख्यो ॥ इनकों ऐसेहि चाहियें ॥ तब श्रीआचार्यजी श्रीगोवर्द्धनधर को गोदिमें बेठाय कपोल परस करि कहें बाबा, कछू आज्ञा करो ॥ तब श्रीगोवर्द्धनधर कहे ॥ मोकों गाय बहुत प्रिय हें ॥ तब श्रीआचार्यजी सदूपांडे को बुलाय वेदकर्म करिवे की पवित्री हती सो दे कहे याके दाम करि श्रीगोवर्द्धननाथजीकों गाय ल्याय देउ × ॥

इति प्र. १० समाप्त.

× ક્વચિત્ નૂપુર માગ્યાનો પણ ઉલ્લેખ પ્રાપ્ત છે.

આ પ્રસંગમાં શ્રીઆચાર્યજીનું દાસ્યરૂપ વલ્લભસ્વરૂપનું પ્રતિ-પાદન છે.

પ્રસંગ ૧૦ નું પરિશિષ્ટ રહસ્યઃ—

આ પ્રસંગમાં શ્રીગોકુલનાથજીએ શ્રીવલ્લભ સ્વરૂપ (હાસ્યરૂપ) નો અનુભવ કહેલો છે. તે આ પ્રકારેઃ—

આપ કદી નિદ્રાધીન થતા નથી. નિદ્રાના મિષથી આપ કેવલ વિપ્રયોગરસનો અનુભવ કરતા. લોકદૃષ્ટિથી પણ આપનું નિદ્રાધીન થવું યુક્તિસંગત લાગતું નથી. કારણ કે લોકમાં પણ જ્યારે કોઈ મનુષ્યને મહાન્ હર્ષ અથવા શોકને પ્રાપ્ત કરાવે એવો પ્રસંગ ઉપસ્થિત થાય છે, ત્યારે તે પુરુષને નિદ્રા સર્વાંશે સ્વતઃ ત્યાજ્ય થઇ જાય છે એ સર્વાનુભવગોચર છે. તેવીજ રીતે શ્રીઆચાર્યચરણને લીલાના વિયોગરૂપ અત્યંત દુઃખ અને દૈવી જીવોના ઉદ્ધારરૂપ આનંદ પ્રાપ્ત થયો છે. તેવા પ્રસંગે નિદ્રા કેમ આવે ? નજ આવે.

બીજા પ્રકારે આપનો નિત્ય નિયમ જોવાથી જ્ઞાત થાય છે કે આપ બન્ને અનોસરમાં નિદ્રાના મિષથી સૂક્ષ્મ વિશ્રામ કરતા. બપોરના અનોસરમાં વ્રજભક્તોની વેણુગીત યુગલગીત આદિની ભાવનાનો અનુભવ કરતા. પછી નિજ સેવકો ઉપર તે અનુભવેલો મહાન્ રસ કથારૂપે વરસાવતા “**भोजन कर विश्राम छिनक ले निज मंडली बुलाई । वेणुगीत पुन युगलगीत की रस वरखा बरसाई**” ॥

રાત્રિના અનોસરમાં ભગવત્કથા કર્યા પછી દામોદરદાસની સાથે આપ રહસ્યવાર્તા કરતા. ત્યારબાદ મધ્યરાત્રિનો ભોગ શ્રી ને આરોગાવતા પછી આપ સર્વે વૈષ્ણવોની ગુપ્ત રીતે તપાસ કરતા. (જુઓ ગોપાલદાસ જટાધારીની વાર્તા) કેટલોક સમય વીત્યા પછી આપ પોઢવા પધારતા. (લગભગ એક વાગે) અને ત્રણ વાગે આપ શચાદિક કરતા. આ પ્રમાણે આપનો નિત્યનિયમનો ક્રમ હતો. આપનાં આહાર અને નિદ્રા બહુજ અલ્પ હતાં. આ બન્ને અનોસરના વિશ્રામમાં રાસલીલૈકતાત્પર્ય આપ રાસાદિક લીલાનો હૃદયસ્થિત ધર્મી વિપ્રયોગરૂપે

અનુભવ કરતા." नमामि हृदये शेषे " એ ભાવાત્મક માનસી લીલામાં મગ્ન રહેતા.

આ પ્રકારના ધર્મી વિપ્રયોગના અનુભવમાં બાહ્ય (ધર્મ સહિત સંયોગાત્મક) સ્વરૂપની અપેક્ષા રહેતી નથી. બાહ્ય પ્રાકટ્યમાં કામાત્મભાવની સ્થિતિ રહેલી છે એટલે તેમાં ક્રિયાપ્રાધાન્ય અને અન્યસાપેક્ષતા રહેલી છે. જેથી આમાં દ્વૈતપણાનું ભાન રહે છે. "પ્રભુ મારા છે" એ પ્રકારના ભાવને કામભાવ કહેવામાં આવે છે, આમાં દેહાદિની સ્ફુરણા અને વિષયોનો સમાવેશ હોવાથી દ્વિધા ભાવ રહેલો છે. ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રસમાં સર્વાત્મભાવની સ્થિતિ છે. "હું સમગ્ર પ્રભુનો" એ પ્રકારના ભાવને સર્વાત્મભાવ કહેવામાં આવે છે. આમાં દેહાદિના પૃથક્પણાનું ભાનજ રહેતું નથી. તે કેવલ પ્રભુમય થઈ જાય છે. આમાં ક્રિયાદ્વારા અનુભવ નથી. પરંતુ ભાવદ્વારા અનુભવ થાય છે. આ ભાવ આંતરરમણ રૂપ હોઇ અન્યનિરપેક્ષ છે. આમાં બાહ્ય સ્વરૂપના આવિર્ભાવની અપેક્ષા મુદ્દલે રહેતી નથી. ઉલટું બાહ્ય સ્વરૂપનો આવિર્ભાવ આ અનુભવમાં બાધકરૂપ છે. આ વિપ્રયોગરસમાં કેવલ ભાવભાવનજ હોય છે. આ નિરપેક્ષીત ભક્તો સ્વતત્ર હોવાથી શુદ્ધ પુષ્ટિ કહેવાય છે, "कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते" કૃષ્ણનું આધીનત્વ (અપેક્ષિતા) ત્યાં સુધી મર્યાદા કહેવાય. (ભાવ સિદ્ધ થયા પછી સ્વરૂપની અપેક્ષા રહેતી નથી. ભાવથી કોટાનકોટિલીલાવિશિષ્ટ સ્વરૂપો સ્વેચ્છાનુસાર પ્રકટ થાય છે)

स्वतत्रफलरूपो यः स्वरूपावेशतो हरेः ।
धर्मी रूपः स विज्ञेयो नाविर्भावप्रयोजनम् ।। (शिक्षा०)

આ ધર્મી વિપ્રયોગ રસનો શ્રીઆચાર્યચરણ અનુભવ કરતા. તેનું જ્ઞાન દામોદરદાસને છે કે નહિ? તેની પરીક્ષાને અર્થે અને દામોદરદાસનો ઉત્કર્ષ લોકમાં પ્રસિદ્ધ કરવાને અર્થેજ શ્રીજી આ અનોસરના સમયમાં

પધાર્યા. નહિ તો આપ સર્વજ્ઞ હતા. આ સમયે પધારી શ્રીમહાપ્રભુજીને શ્રમ શું કરવા દે ? કારણ કે બન્ને સ્વરૂપ પરસ્પર અત્યત ગાઢ સ્નેહી છે. શ્રીનાથજી તો શ્રીઆચાર્યચરણની પાછલ પાછલ ફરે છે. (જુઓ વિદ્યાનગરનો પ્રસંગ) તે બન્ને સ્વરૂપ એક બીજાના શ્રમને સહન કરી શકતાંજ નથી. છતાં પધાર્યા તેનું કારણ એજ કે દામોદરદાસની ઉત્કર્ષતા સિદ્ધ કરવી છે. દામોદરદાસજી તો શ્રીઆચાર્યજીનું હૃદય છે એટલે શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયની ક્ષણક્ષણની બધી લીલાનો તેમને અનુભવ છે. આ વખતે શ્રીઆચાર્યચરણ ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રસનો અનુભવ કરે છે. તે જાણીનેજ દામોદરદાસે શ્રીજીને રોકયા કારણકે--આપના પધારવાથી શ્રીઆચાર્યચરણ જે અત્યારે પરમ આંતરરમણરૂપ સુખનો અનુભવ કરે છે તેમાં વિક્ષેપ પડે તેથી દૂરથીજ રોકયા.

આ પરમ સુખરૂપ સર્વાત્મભાવવાળા આંતરરમણમાં કામભાવવાળું બાહ્ય રમણ અન્યસબંધના ગંધરૂપ હોઈ બાધક છે કારણ કે બાહ્ય સયોગમાં એકલીલાનોજ એક કાલમાં અનુભવ છે. જ્યારે આંતર સંયોગાત્મક રમણમાં એકકાલાવચ્છિન્ન અનેક લીલાના પરમ સ્વાદનો અનુભવ ભક્ત કરે છે. માટે આ આંતરરમણ આગળ કામાત્મક બાહ્ય રમણ અન્યશંબંધરૂપ હોવાથી ત્યાજ્ય છે. ભક્તની સાધનદશામાં જેમ અન્યાશ્રય બાધકરૂપ છે. તેમ અહીં અન્યસંબંધનો ગંધ પણ બાધકરૂપ છે. આ આંતરરમણમાં બાહ્ય સ્વરૂપની અપેક્ષા નથી. જો બાહ્ય સ્વરૂપ પ્રગટ થાય તો રસાભાસ થઈ જાય. તેથી દામોદરદાસજીએ શ્રીજીને રોકયા. અહિ દામોદરદાસજીએ શ્રીઆચાર્યજીનું પરમ અલૌકિક સુખ વિચારી પોતાનો દાસ્ય ધર્મ પ્રકટ કરેલો હોવાથી જ્યારે શ્રીઆચાર્યજી ખીજ્યા ત્યારે શ્રીજીએ પક્ષ કર્યો. અન્યથા સંપ્રદાયના સિદ્ધાંતમાં હાનિ આવે.

શ્રીજી તે વખતે ત્યાં વૃક્ષ નીચે ઉભા કેમ રહ્યા ? પાછા મંદિરમાં કેમ ન પધાર્યા ? તેમાં પણ એ રહસ્ય છે કેઃ—શ્રીનાથજીનું

વૃક્ષની ઓટમાં ઉભા રહેવાનું પ્રયોજન એ હતું કે "वैष्णवा वै वनस्पतयः" એવી શ્રુતિ છે. એટલે વૃક્ષ વૈષ્ણવ છે. તેથી વૈષ્ણવની ઓટ (હૃદય)માં આપ સ્થાયીભાવ રતિરૂપે દામોદરદાસની ઇચ્છાથી સ્થિત રહ્યા. કારણકે શ્રીઆચાર્યચરણના સેવકોની કા'ન શ્રીજી અને શ્રીગુસાંઇજી બન્ને રાખતા. તેમનો કદિ અપરાધ પણ બને તો કંઇ કહેતા નથી. મોટાના સેવકો પણ મોટાજ હોય.

શ્રીઆચાર્યચરણના હૃદયમાં સ્થાયીભાવ રતિરૂપે આપની સ્થિતિ હોવાથી, તરતજ આ (બાહ્ય) સ્થાયીભાવ રતિના સ્વરૂપને આપે જાણ્યું. જેથી આપનું ચિત્ત આંતરરમણમાંથી બ્હાર આવ્યું. અને જ્યારે દૃષ્ટિ ખોલીને જોયું તે સમયે શ્રીનાથજીને જોયા. પછી શ્રીઆચાર્યજીએ પૂછ્યું ત્યારે બધો પ્રકાર શ્રીજીએ કહ્યો. તેથી શ્રીઆચાર્યજી આપ દામોદરદાસ ઉપર ખીજ્યા. ત્યારે શ્રીજીએ પક્ષ કર્યો. આ પ્રકારે દામોદરદાસનો ઉત્કર્ષ સહજ સિદ્ધ થયો.

આ પ્રકારે દામોદરદાસ હરસાની અને તેમની વાર્તાનો ભાવ કહ્યો.

વૈષ્ણવ ૧ વાર્તા ૧ સમાપ્ત



॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

કૃષ્ણદાસ મેઘનની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ—

આ સમગ્ર વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયની નિરોધલીલાના ધર્મી સ્વરૂપ છે, એટલે હૃદયવત્ છે. શ્રીઆચાર્યજીએ કૃષ્ણદાસમાં સમગ્ર ઐશ્વર્ય (षडैश्वर्य) સ્થાપ્યું હતું. માટે શ્રીહરિરાયજી કૃષ્ણદાસના આધિદૈવિક સ્વરૂપનું વર્ણન કરતાં આ પ્રકારે શબ્દો યોજે છે:–"कृष्णदासमें ऐश्वर्य को आवेश वहोत हैं।" તે છ પ્રકારના ઐશ્વર્યનું શ્રીગોકુલેશે વાર્તામાં વર્ણન કર્યું છે. તે આ પ્રમાણે જાણવું:—

પ્રસંગ ૧:—प्रथम परिक्रमा में बद्रीनारायन के परली ओर किरणी नाम पर्वत हे ॥ तहांते एक बडी शिला गिरी॥ सो कृष्णदास मेघन ने हाथ सों थांभि ॥

અહિં અલૌકિક સામર્થ્યરૂપ વીર્યનું પ્રતિપાદન છે.

પ્રસંગ ૨:—ता पाछें वेदव्यासजी सों बिदा होय के श्रीआचार्यजी तिसरे दिन पधारे ॥ तब कृष्णदास कों ठाडो देखि प्रसन्न भए ॥

અહીં શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞામાં પરમ વિશ્વાસરૂપ શ્રીધર્મનું નિરૂપણ છે.

"श्रियो हि परमा काष्ठा सेवकास्तादृशा यदि ।" इति वाक्यात् ।

પ્રસંગ ૩:—ताकी अटकर तें पेरि के गंगाजो के पार गए।

અહીં દેહનો પૂર્ણ વૈરાગ્ય ધર્મ કહ્યો. ભગવદર્થે જરાપણ શરીરનો વિચાર કર્યા વિના, ભયંકર ગંગાસાગરમાં ઝંપલાવવું એનાથી શ્રેષ્ઠ વૈરાગ્ય ધર્મ બીજો કયો હોઈ શકે?

तहांते खेत में ते गीलो धान कटवायो। टका की जगे द्वे टका देके मुरमुरा सिद्ध करवाए।

રાત્રિના સમયે ખેડુતો ધાન નીંદતા ન હોવા છતાં કૃષ્ણદાસે પોતાના પ્રભાવથી તે ખેડુત (એક મૂઢ વ્યક્તિ કે જે પોતાની પકડેલી

વાતને છોડે નહિ તે)ના નિશ્ચયને ફેરવી રાત્રિના ધાન નીંદાવ્યું અને ભાડભૂજા (મૂઢ વ્યક્તિ) પાસે સિદ્ધ કરાવ્યું (જુઓ ભાવસિન્ધુ) અહીં કૃષ્ણદાસનું ઐશ્વર્ય કહ્યું. "ईश्वरः पूज्यते मूढे" इति वाक्यात् ।

સજ્ઞાન પુરુષ તો આકર્ષાય, પરંતુ મૂઢ પુરુષો પણ ઐશ્વર્યના પ્રભાવે આજ્ઞાધીન થાય તે ઐશ્વર્ય.

તેમજ વાસુદેવદાસ છકડા, વિષ્ણુદાસ છિપા, નારાયણદાસ આદિને કૃષ્ણદાસેજ ભગવત્પ્રાપ્તિ કરાવી. ત્યાં પણ કૃષ્ણદાસના ઐશ્વર્યનું નિરૂપણ છે. તે પ્રસંગો તે તે વાર્તામાં છે. "सर्वेषामितरसाधनासाध्य-भगवत्प्राप्तिसंपादन"માં ઐશ્વર્ય. (नामरत्नाख्यटीका)

પ્રસંગ ૩ (ख).—जो श्रीआचार्यजी पूर्ण पुरुषोत्तम होइ तो मेरे हाथ मति जरियो ॥

અહીં જ્ઞાનનું નિરૂપણ છે.

જ્ઞાનનું ફલ તે પુરુષોત્તમના સ્વરૂપનો અનુભવ, જેમ નદીમાં જ્ઞાન છે 'भग्नगतयः सरितो वै' તેમ કૃષ્ણદાસને પણ પુરુષોત્તમના સ્વરૂપનો બોધ થઈ ગયો છે. તે હાથમાં અગ્નિ લઇ સિદ્ધ કર્યું.

પ્રસંગ ૪:—बहुरी मार्ग हृदयारूढ भए पाछे कदाचित् गोप्य वार्ता होई सो सबन के आगे कहे ॥

અહીં યશ ધર્મનું નિરૂપણ છે.

'स्वयशोगानसंहृष्ट' એવા પ્રભુનો સ્વાનુભવાર્થ સર્વત્ર યશોગાન કરતા. આ છએ ધર્મ જેમાં સિદ્ધ છે એવા વિપ્રયોગનું દાન પણ કૃષ્ણદાસને હતું. માટે શ્રીઆચાર્યચરણે વ્યામોહ કર્યો ત્યારે વિરહાનલથી આ દેહને બાળી નાખી ભૂતલનો ત્યાગ કર્યો. (જુઓ પ્ર૦ ૮)

માટે કૃષ્ણદાસને ધર્મી રૂપ કહ્યા.

———×———

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभुनके सेवक कृष्णदास मेघन क्षत्री सोरोंमें रहते तिनकी वार्ता ॥

सो कृष्णदास दस वर्षके घर छोडि के आये हते ॥ हृदयमें वैराग्य हतो ॥ सो प्रथम सोरमजी गंगा न्हायवेकुं आये ॥ सो वहां एक बडो योगी महात्मा रहतो ॥ सो चेला करतो ॥ उनके चेला भये ॥ सो वा महात्माकुं योग सिद्ध हतो ॥ दोय वरस पाछें ये सं. १५३५ की सालमें वैशाख कृष्ण ११ के ब्रह्ममुहूर्त समय योगाभ्यास साधत हतो ॥ वा समय कृष्णदास पास बेठे हते ॥ सो वाहि समय योगके प्रभावसूं गुरुने जानी ओर कही जो या समय भूतल विषे भगवदवतार भयो हे ॥ तब कृष्णदासके मनमें दर्शनकी परम उत्कंठा भई ॥ वह संवत मिती मास सब याद करि लियो। पाछें गुरुसों बदरिकाश्रम जायवेकी आज्ञा माँगी ॥ सो गुरुने नाहि करी ॥ ओर कही ॥ जो अभी तु बालक हे ॥ सो कहां जायगो ? फेर कृष्णदास दस वर्ष ओर गुरुके यहां रहे ॥ फेर गुरुकी आज्ञा ले बदरिकाश्रम के मिष पृथ्वीपर्यटनको चले ॥

शरण आये पहेले को प्रकार* (जन्म १)

सो प्रयाग आये ॥ (यहां दामोदरदास संभरवारे को मिलाप भयो) (देखो दा. सं. की वार्ता) तब उनने सुनी जो **श्रीवल्लभाचार्यजी**

---

*एक प्राचीन प्रतमेंसूं।

प्रकट भए हें ।। सो दक्षिणमें पधारे हें ।। कृष्णदेव राजाकी समीप मायावाद खंडन कीए हें ।। यह सुनत ही कृष्णदास दक्षिण देश गये ।। तब राजाके यहां खबरि पाए ।। जो पांच दिन ।। यहां ते पधारे हे ।। सो कृष्णदास रात्रि दिन चले ।। सो तीन दिन में दक्षिण के झारखंड में श्रीआचार्यजी को दर्शन पूर्ण पुरुषोत्तम (रूपसों) पाए ।। तब श्रीआचार्यजीने कही कृष्णदास आयो ।। तब कृष्णदास (ने) दंडोत करि के (कह्यो)महाराज में आयो ।। अब मो पर कृपा करि के सरन लेऊ।। बहोत संसारमें भटक्यो ॥ अब में आपकी सरन में आयो हों ॥ तब श्रीआचार्यजोनें कृष्णदास सें कहि ।। (जो) तेरे तो गुरु हे ॥ अब क्यों तू शरन आवत हें? ।। तब कृष्णदास ने कहि महाराज आप साक्षात् पुरुषोत्तम हो ।। में तिहारो हों ॥ तुम अब मोकों मति छोडो ॥ में संसारसमुद्र में डूबत हों ।। या प्रकार बहोत दैन्य करी ।। तब श्रीआचार्यजी कृष्णदास कों नाम सुनाये ।। सरनि ले पृथ्वीपरिक्रमा को पधारे ।।+

+ ષષ્ઠપુત્ર શ્રીયદુનાથજી રચિત "દિગ્વિજય"માં પણ કૃષ્ણદાસ ઝારખંડમાં જ અને આજ સમયે શરણે આવ્યાનો ઉલ્લેખ છે જુઓ:-

तत्सविधे सूकरक्षेत्रान्मेघनकृष्णदासक्षत्रियः प्रयागं समेत्य, दामोदर हस्ते ताम्रपात्रं निरीक्ष्य, विद्यापुरजयं श्रुत्वा, भगवदवतारो जात इत्यनुमाय, द्रुतमाचार्यानुपेत्य, पादयोर्निपतितः । तत आचार्यैः समुत्थाय कुशलं पृष्ट्वा तस्मै निजमन्त्रमाले दत्ते ।

अथ पम्पायां समागताः ।

(प्रथम दक्षिण यात्रा)

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

કૃષ્ણદાસ મેઘનનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ—

કૃષ્ણદાસ મેઘન ઘણું કરીને પૂર્વના હતા. તેમના પિતા શ્રી રામચંદ્રજીના ઉપાસક હતા. જેથી કૃષ્ણદાસ પણ નાનપણથી જ રામભક્ત હતા. તેમનો જન્મ સં. ૧૫૨૩માં થયો હતો. તેઓ ક્ષત્રિય હતા, અને તેમની અટક મેઘનની હતી. સંવત ૧૫૩૩માં તેઓને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થવાથી તેઓ સોરમજીમાં ગંગા–સ્નાનાર્થે આવ્યા. ત્યાં કેશવાનંદ નામના એક પ્રસિદ્ધ મહાત્માના ચેલા થયા.

જ્યારે તેમણે સંવત ૧૫૩૫ ના વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના રોજ પોતાના ગુરુના મુખથી ભગવદવતાર થયાનું સાંભળ્યું, ત્યારથી તેમને ભગવદ્દર્શનની તીવ્ર ઉત્કણ્ઠા થઈ. પરતુ તે વખતે તેમની ઉમર ફક્ત બાર વર્ષનીજ હોવાથી ગુરુએ કોઈ પણ જગ્યાએ જવાની ના પાડી. ×સંવત ૧૫૪૫માં જ્યારે તેઓ ૨૨ વર્ષના થયા ત્યારે ગુરુની આજ્ઞા લઇ બદરીકાશ્રમના મિષે પૃથ્વી પર્યટન કરવા નિકળ્યા.

કૃષ્ણદાસ અનેક ગામો અને તીર્થોમાં ફર્યા. દરેક સ્થલે સં. ૧૫૩૫ ના વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના રોજ પ્રગટેલા બાલકની ઘરઘરમાં તપાસ કરી પરંતુ સફલ ન થયા. તોપણ તેઓ નિરાશ ન થયા. સંવત ૧૫૪૭ માં મકરસ્નાનાર્થે અનેક સાધુસંતોનો મોટો મેળો પ્રયાગમાં થયેલો. ત્યાં કૃષ્ણદાસ પણ આવ્યા. તે સમયે તપાસ કરતાં કૃષ્ણદાસે સાંભળ્યું કે દક્ષિણમાં શ્રીવલ્લભાચાર્યજીએ કૃષ્ણદેવ રાજાની સભામાં દિગ્વિજય કરી, વૈષ્ણવ મતનું સ્થાપન કર્યું છે. તેઓ ઘણા તેજસ્વી છે અને સાક્ષાત્ ભગવાનનોજ અવતાર છે. નાની વયમાં તેઓએ પ્રખર પંડિતોને જીત્યા છે. સ્માર્ત્ત અને વૈષ્ણવ સંપ્રદાયના સમસ્ત આચાર્યોએ આપને વિજયતિલક કરી આચાર્યપદવી આપી છે.

આ શ્રવણ કરતાંજ કૃષ્ણદાસ દક્ષિણ તરફ ચાલી નિકળ્યા.

× અહિં જ્યાં જ્યા સંવત, માસ આદિનો ઉલ્લેખ છે ત્યાં ત્યાં ચૈત્રાદિ સંવત્ (વ્રજનો) અને માસ આદિ સમજી લેવા.

લગભગ બે અઢી મહીનામાં સંવત ૧૫૪૮ ના વૈશાખ વદી ૮ ની સાંજે વિદ્યાનગર આવ્યા.

ત્યાં તપાસ કરતાં સમાચાર મળ્યા કે અહિંથી શ્રીવલ્લભાચાર્યજી વૈશાખ વદ ૨ ઉપરાંત ૩ ના[1] રોજ પૃથ્વીપરિક્રમા કરવા પધાર્યા છે. આપશ્રીને વિદ્યાનગરથી પધારે ફક્ત પાંચ દિવસજ થયા છે.

આ સાંભળીને કૃષ્ણદાસ શીઘ્ર ગતિએ ત્યાંથી ચાલી નિકળ્યા. રાત્રિ દિવસ ચાલતા ત્રીજા દિવસે વૈશાખ કૃષ્ણ ૧૧ ના રોજ (શ્રી આચાર્યજીના પ્રાકટ્યોત્સવના દિવસેજ) દક્ષિણમાં આવેલા ઝારખંડમાં તેઓ શ્રીઆચાર્યજીને આવી મળ્યા. ત્યાં તેઓ શ્રીઆચાર્યજીને શરણે આવ્યા.[2]

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

—:સમસ્ત લીલા પ્રકરણ:—

શ્રીવિશાખાજીનું ધ્યાન કરવા માટે કોષ્ઠક આ પ્રમાણે:–

પિતાનું નામ	માતાનુ નામ	વર્ણ (રગ)	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	વય	બાજા	રાગ
ગુણભાનુ	ગુણકલા	ગુલાબી શ્વેત	રગશહાના	વિદ્યા	૧૫	મૃદંગ	[illegible]

આ પ્રકારે વિશાખાજીનું ધ્યાન કરવું. તે મુખ્ય અષ્ટ સખીમાં છે. એમને ત્યાં ૨૧૦૦૦૦૦ એકવીસ લાખ ગાયો છે. અને બીલછુ કુંડ ઉપર વિશાખાજીની નિકુંજ છે. એ સકલ વિદ્યામાં નિપુણ છે. શ્રીસ્વામિનીજી અને શ્રીઠાકોરજીની લીલામાં લલિતાજીની માફક સહાયક છે.

કૃષ્ણદાસ મેઘન વિશાખાજીનું સ્વરૂપ છે.

---

૧ જુઓ વલ્લભીયસર્વસ્વ, અને સંપ્રદ્રાયકલ્પદ્રુમ.

૨ સંપ્રદાયકલ્પદ્રુમમા શ્રીઆચાર્યજીની સાત વર્ષની વય હતી, ત્યારે કાશીમાં જનોઇના સમયે શરણે કૃષ્ણદાસ આવ્યા, તેમ ઉલ્લેખ છે. પરંતુ દિગ્વિજય આદિ અન્ય સમગ્ર પ્રાચીન પુસ્તકોમાં વિદ્યાનગરની સભા જીત્યા બાદ શરણ આવેલા તેવા ઉલ્લેખો છે, અને તેજ ઉચિત પણ લાગે છે, ઐતિહાસિક તત્ત્વોની શોધમા ઉત્તરોત્તર પ્રાચીન પુસ્તકોના લેખોજ વધુ પ્રમાણરૂપે ગણાય છે. જેથી સર્વ પ્રાચીન પુસ્તકોમા આજ સમયનો ઉલ્લેખ છે. તેથી તે સબળ પ્રમાણ રૂપ ગણાય.

आधिदैविक स्वरूपको वर्णन.
(जन्म ३)
श्रीहरिरायजी कृत

सो कृष्णदास विसाखा सखी तें प्रगटे हें ॥ विसाखाजी श्रीस्वामिनीजी की छायारूप हें ॥ जेसें छाया सरीरके संग लागी डोले तेसें विसाखाजी श्रीस्वामिनीजी के संग रहत हें ॥ ताही प्रकारसों कृष्णदास हू श्रीआचार्यजीके संग रहत हें ॥ **कृष्णदासमें ऐश्वर्यको आवेश बहोत हें**[1] ॥ सो आगे (वार्तामें) वरनन करत हें ॥

वार्ताप्रसंग १
(जन्म २)
आध्यात्मिक स्वरूप

श्रीआचार्यजी महाप्रभुनें पृथ्वी परिक्रमा करी ॥ तीनों बेर कृष्णदास संग रहे ॥ प्रथम परिक्रमामें बद्रीनारायनके परली ओर किरणी नाम पर्वत हे तहांते एक बडी सिला गिरी ॥ सो कृष्णदास मेघनने हाथसों थांभी × **॥ तब श्रीआचार्यजीमहाप्रभु आप बहुत प्रसन्न भए ॥ सो अलौकिक फल देते ॥ परंतु परीक्षा देखन अर्थ कहे ॥ कृष्णदाससों कह्यो जो तु मागि कहा मागत हे ? तब कृष्णदास तीन वस्तु मांगे ॥ १ मारग को सिद्धांत हृदयारूढ होइ ॥ २ मुखरता दोष जाइ ॥ ३ मेरे गुरुके घर पधारो ओर उनको अंगीकार करो ॥ तामें दोइ वस्तु दीनी ॥ गुरुके घर पधारिवेकी नांहि कीनी ॥**

---

[1] કૃષ્ણદાસમાં ષડૈશ્વર્યની સ્થિતિ છે. તેથી તેઓ ધર્મીરૂપ છે. વિશેષ જુઓ "કૃષ્ણદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય"

× અહિં વીર્યનું નિરૂપણ છે, જુઓ કૃ. વાર્તાનું સ્વ. અને રહસ્ય.

यह पहलेको गुरुभाव हृदयमें हतो सो बाहिर प्रगट्यो ॥ तातें अलौकिक दान श्रीआचार्यजीने छिपाय लीयो ॥ दो वस्तु दीए ॥ गुरुकी नांहि कीए ॥ सो दैन्य न हतो ॥ दैन्य बिना एतन्मारगमें अंगीकार नांहि ॥ या प्रकार दो वस्तु दीए ॥ परंतु ओर को गुरुभाव रहे ॥ तातें मारगको अनुभव हू न भयो ॥ मुखरताको दोष हू न गयो ॥ प्रथम सामर्थ्य तें कछुक सामर्थ्य हू घटी ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

इति प्र. १ समाप्त.

પ્રસંગ ૧ નો પરિશિષ્ટ ઐતિહાસિક ભાગ:-

આ પ્રસંગ અધુરો છે તે "યદુનાથ દિગ્વિજયમાંથી પૂર્ણ કરી અહીં આપ્યો છે:--

बदरिकाश्रमान्तं गत्वा तन्नाथं नत्वा व्यासाश्रमं गताः । तत्र शिला पतिता सा कृष्णदासेन गृहीता । तत्राऽऽचार्यैरस्मै वरद्वयं दातु प्रतिज्ञातम् । ततोऽन्तः प्रविश्य व्यास श्रीबिल्वमङ्गलाऽऽज्ञया प्रमाणचतुष्टये संशयान- पृच्छन् । स तान्निरूप्याह । भक्तिः प्रवर्त्तनीया, सिद्धान्तग्रन्था विधेयाः, प्रतिपक्षा निवार्याः, गार्हस्थ्यं विधेयमित्यादि । तथेत्युक्त्वा प्रणेमुः । ततः प्रचलिता हरिद्वारोपमार्गेण सूकरक्षेत्रं समागताः ॥

સારાંશ:—કૃષ્ણદાસને બે વરદાન આપવાની પ્રતિજ્ઞા કરી પછી આપ ભીતર પધાર્યા. બિલ્વમંગળની આજ્ઞાથી શ્રીવ્યાસજી પાસે પ્રમાણચતુષ્ટયમાં જે સંદેહ હતા. તે પૂછ્યા. વ્યાસજીએ તે વર્ણન કર્યા, અને એમ કહ્યું કે "આપ ભક્તિનો પ્રચાર કરો; સિદ્ધાન્ત ગ્રન્થોનું

નિર્માણ કરો, પ્રતિપક્ષોનું નિવારણ કરો, અને ગાર્હસ્થ્ય ધારણ કરો. આચાર્યચરણે તે આજ્ઞા સ્વીકારી અને તેમને પ્રણામ કરી હરિદ્વારના ઉપમાર્ગથી સૂકર ક્ષેત્ર (સોરોં) પધાર્યા.

નોંધ:--"દિગ્વિજય"માં આ પ્રસંગ બીજી પરિક્રમા વખતે વર્ણવ્યો છે. અને અહીં પણ બીજી પરિક્રમા વખતે પ્રથમ (પહેલ-વહેલા) બદરીકાશ્રમ પધાર્યા, એમ ઉલ્લેખ છે. કારણ કે લગ્નની પહેલી આજ્ઞા બીજી પરિક્રમા વખતે પાંડુરંગ શ્રીવિઠ્ઠલનાથજીએ કરી. તે આજ્ઞાને ફરી વ્યાસજીદ્વારા શ્રીબદરીનાથજીએ પ્રમાણ કરાવી આ પરિક્રમાનો સમય લગભગ સં. ૧૫૬૦નો આવે છે. પહેલી પરિક્રમા શ્રીઆચાર્યજીએ ૧૫૪૯–૫૦ થી સંવત ૧૫૫૮–૫૯ સુધીમાં નવ વર્ષમાં પૂર્ણ કરી છે. (જુઓ "યદુનાથદિગ્વિજય") બીજી પાંચ વર્ષમાં એટલે ૧૫૬૩–૬૪ સુધીમાં અને ત્રીજીવાર ચાર વર્ષમાં એટલે સં. ૧૫૬૭-૬૮ સુધીમાં આપે ત્રણે પરિક્રમા પૂર્ણ કરી. ત્યારપછી પણ આપનું પૃથ્વીપર્યટન સ્થલે સ્થલે ચાલુજ હતું. જ્યાં જ્યાં શાસ્ત્રાર્થ થતો અથવા તીર્થસ્નાનાદિ પ્રસંગ હોય ત્યાં આપ પૃથ્વીપર્યટનના મિષથી પધારતા હતા (જુઓ હરદ્વારની બેઠક ચરિત્ર) પહેલી પરિક્રમા પુર્ણ કરી બદ્રીકાશ્રમ પધાર્યા. બીજી પરિક્રમા ત્યાંથી શરૂ કરી છે.

वार्ताप्रसंग २

बहुरि श्रीआचार्यजी श्रीबदरिकाश्रमतें आगे व्यासजीकी गुफामें पधारे ॥ सो (कृष्णदासकों संग नांहि ले गये)॥ तहां जीव की गम्य नांहि ॥ तातें कृष्णदास सों श्रीआचार्यजीने कह्यो जो तू ठाडो रहियो ॥ जब श्रीआचार्य-जी आगे कों पधारे ॥ तब वेदव्यासजी सामें ही आए ॥ सो

श्रीआचार्यजी को पधराइ के अपने धाम ले गए ॥ पाछे वेद-व्यासजीने श्रीआचार्यजीसों कह्यो ॥ जो तुमने श्रीभागवतकी टीका करी हे सो मोकों सुनावो ॥ तब श्रीआचार्यजी जुगल गीतके अध्याय को एक श्लोक कहे ॥ सो श्लोक ॥ "वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ॥ कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः" ॥१॥ या श्लोक को व्याख्यान कियो सो तीन दिवस में संपूर्ण भयो ॥ तब वेदव्यासजीने कह्यो जो में यह व्याख्यान की अवधारना नाहीं करि सकत, तातें अब क्षमा करो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी कह्यो जो तुम वेदांत के एसे सूत्र कहा कीए जो मायावाद पर अर्थ लग्यो ॥ तब व्यासजी ने कह्यो जो में कहा करूं ? मोकूं आज्ञा ही एसी हती ॥ जो एसे करियो ॥ जामें दोइ अर्थ प्राप्त होइ ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो ॥ जो हमने तो ब्रह्मवाद पर अर्थ कीयो हे ॥ सो सुनायो ॥ सो सुनके वेदव्यासजी वहोत प्रसन्न भए ॥ तापाछें वेदव्यासजी सों बिदा होइ के श्रीआचार्यजी तीसरे दिन पधारे ॥ तब कृष्णदास कों ठाडो देखि प्रसन्न भए * ॥ कहे तू ठाडो हे ॥ तू गयो नांहि ॥ सो काहेते ? ॥ तब कृष्णदासने कह्यो जो महाराज हों कहां जाऊं ॥ मोकों तुमारे चरणारबिंद बिना कछु ओर आश्रय नांहि हे ॥ तब यह सुनिके श्रीआचार्यजी-महाप्रभू आप बहुत प्रसन्न भए ॥ ओर कह्यो जो मागि ॥

* અહિં શ્રીધર્મનું નિરૂપણ છે (જુઓ ક્રૃ૦ની વાર્તાનું રહસ્ય)

तब फेरि वेई तीनि वस्तू मांगि ॥ तामें दोइ तो दीनी ॥ गुरु के घर की नांहि कीनी ॥

ओर को गुरुभाव हतो ॥ तातें प्रथम तें कछुक सामर्थ्य हू घटी ॥

श्रीहरिरायजी कृत
भावप्रकाश

सो व्यासजी की गुफामें श्रीआचार्यजी कृष्णदासको संग नहि ले गये ॥ सो यातें जुगलगीतको प्रसंग कहनो है ॥ ताकी धारना अब ही कृष्णदास सें होइगी नांहि ॥ व्यासजी सों हू धारना ना भई ॥ सो यातें व्यासजी कलाअवतार हें ॥ पुरुषोत्तम की बानी भावरूप की धारना केसें होइ ॥ यह श्रीभागवत व्यासजीमें श्रीपुरुषोत्तम आप बिराज कें कहि गए ॥ व्यासजी द्वारा मात्र हें ॥ श्रीभागवतके रसको अनुभव नांहि है ॥ सो रहस्य हरजी-बनदासनें या पदमें कह्यो हे ॥

॥ राग केदारो ॥

जोलें हरि आपुनपों न जनावें ॥
*तोलें वेद पुरान स्मृति सब पढे सुनें नहि आवें ॥१॥
सुनि बिरंचि नारायन मुख सें नारदसें कहि दिनो ॥
नारद कहि वेदव्याससें आप सोध नहि कीनो ॥२॥
वेदव्यास ओषध की नांई पढि तन ताप नसायो ॥
तिनतें सुनि शुकदेव परीक्षित राजाको जु सुनायो ॥३॥
जदपि नृपति सुनि व्रजकी लीला दसम कही शुकदेवा ॥
तोऊ **सर्वात्मभाव न उपज्यो** तातें करि न सेवा ॥४॥

---

*तोलों सकल सिद्धांत मारगको पढे सुने नहिं आवे ॥ एसो हू पाठ हे ॥

श्रीभागवत अमृत दधि मथिके श्रीवल्लभ सर्वोत्तम ॥
करि आवरन दूरि निजजनके हाथ दिये पुरुषोत्तम ॥५॥
सेवा अरु शृंगार विविध रस श्रीवल्लभ प्रगटायो ॥
करि कृपा निज जीवन उपर हरजीवन स्वाद चखायो ॥६॥

या प्रकार श्रीआचार्यजी की कृपातें रसकी प्राप्ति है ॥

इति प्र. २ समाप्त.

શ્રી આચાર્યચરણુ સંવત ૧૫૬૮ (વ્રજ) ના જ્યેષ્ઠ માસમાં બદરીકાશ્રમ પધાર્યા તે વખતનો આ પ્રસંગ છે. (શ્રીસુબોધિનીજીની શરૂઆત બીજી પરિક્રમામાં માધવ ભટ્ટ શરણે આવ્યા ત્યારે કરી દીધી હતી. તે સ્પષ્ટ છે.) આ પ્રસંગના પ્રમાણુમાં શ્રીબદ્રીનાથજીના પુરો-હિત વાસુદેવને શ્રીઆચાર્યચરણે લખી આપેલા વૃત્તિપત્રનો શ્લોક છે. જુઓ;—

विद्वद्भिः किल कृष्णदासकमुखैः शिष्यैरनेकैर्वृतः
सोहं श्रीबदरीवनान्तमगमं शुक्रे शकाब्दे तथा ।
देवाम्भःपतिभूमिते सह नरं नारायणं वीक्षितुं
तत्र 'व्यासमुनीश' सङ्गतिरभूदाकस्मिकी मे शुभा ॥९॥

નોંધઃ--

શ્રીઆચાર્યચરણુ બદરીકાશ્રમ ત્રણુ વખત પધારેલા છે. તેમ યદુનાથદિગ્વિજયથી સ્પષ્ટ થાય છે. અને તેની પુષ્ટિ આ વાર્તાથી થાય છે.

યદ્યપિ આ વાર્તામાં (પ્રાચીન હસ્તલિખિત પ્રતોમાં) બદરી-કાશ્રમ પધારવાનું એજ વારનું વર્ણુન સાધારણુ દૃષ્ટિથી જોવામાં આવે છે, તો પણુ સૂક્ષ્મ દૃષ્ટિથી જોતાં ત્રણુવાર પધારવાનું સ્પષ્ટ માલુમ પડે છે.

અત્રે આપેલા પ્રસંગ (૧) અને પ્રસંગ (૨) નું સર્વ પુસ્તકોમાં (હસ્તલિખિત) એકજ પ્રસંગ તરીકે વર્ણન જોવામાં આવે છે. છતાં અત્રે આપેલા પ્રસંગની શરૂઆતમાં बहुरि શબ્દ દરેક ગ્રન્થમાં જોવામાં આવે છે. અને તેથી તે પ્રસંગ અલગ પડી જાય છે. જેમ શ્રીભાગવતના અધ્યાય ૧૯ માં વ્રતચર્યાના પ્રસંગ પછી ૨૯ મા શ્લોકમાં "अथ गोपैः परिवृतो" ત્યાં अथ શબ્દથી અલગ પ્રકરણ ચાલુ થાય છે તેમ અહિં बहुरि શબ્દથી બીજીવારનું સ્પષ્ટ નિરૂપણ છે. એથીજ અમે તેનો પ્રસંગ ૨ તરીકે ઉલ્લેખ કર્યો છે.

એટલે વૃત્તિપત્ર ત્રીજી પરિક્રમામાં બીજી વખતે બદ્રીકાશ્રમ પધાર્યા ત્યારે લખી આપ્યું છે. અને વામન દ્વાદશીનો પ્રસંગ ત્રણ પરિક્રમા પૂર્ણ કર્યા પછી કેટલાક વર્ષ બાદ સં. ૧૫૭૬માં–કુંભ ન્હાવા–હરિદ્વાર પધાર્યા છે. ત્યાં કેટલાક મહિના બિરાજી પછી બદરીકાશ્રમ પધાર્યા તે સમયનો છે. (જુઓ બેઠક ચરિત્ર) અને પહેલો પ્રસંગ બીજી પરિક્રમા વખતનો છે. એમ ત્રણે પ્રસંગ અલગ થઇ જાય છે.

(क) बहुरि एक समय श्रीआचार्यजी गंगासागर पधारे ॥
तहां श्रीआचार्यजी आप पोढे हते ॥

वार्ता प्रसंग ३ ओर कृष्णदास पांव दाबत हते ॥
तब श्रीआचार्यजी आप मनमें बिचारे ॥

जो धानके मुरमुरा होइ तो आरोगें ॥ तब यह बात श्रीआचार्यजीके मनकी कृष्णदास मेघननें जानी ॥ सो इतनेमें श्रीआचार्यजीकों निद्रा आई ॥ तब कृष्णदास उठिके गंगासागर उपर आये ॥ तब देखे तो पार एक दीवा बरत हे ॥ ताकी

अटकर तें पेरि कें गंगाजी के पार गए[1] ॥ तहां एक गांव हतो ॥ तहांते खेतमें ते गीलो धान कटवायो ॥ टका की जगे द्वै टका दे के मुरमुरा सिद्धि करवाए ॥ पाछें कृष्णदास श्रीगंगाजी में पेरिके श्रीआचार्यजी के पास आये ॥ तब श्री आचार्यजी के चरणारविंद दाबि के जगाए ॥ मुरमुरा आगे राखे[2] ॥ कह्यो जो महाराज आरोगो ॥ तब श्रीआचार्यजी-महाप्रभूनने पूछी जो तू कहां ते लायो ॥ तब कृष्णदासने सब वृत्तांत कह्यो ॥ तब श्रीआचार्यजी प्रसन्न होइ कहें जो कछु मागि ॥ तब वेई तीन वस्तू मागी ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो जीव कहा मागि जाने ॥ या समें जो मागतो सोई देतो ॥ जो कहेतो तो श्रीठाकुरजी को स्वरूप दिखावतो॥

(ख) पाछे श्रीआचार्यजी आप सोरों पधारे ॥ तब कृष्णदासने विनती करिके कह्यो जो मेरे गुरु को ले आवुं ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो तू खेद पावेगो ॥ पाछे कृष्णदास ईकेलेई गुरु के इहां गये ॥ सो जब गुरुने कृष्णदास को देख्यो ॥ तब कह्यो ॥ जो तेनें और गुरु कीये ॥ तब कृष्णदासनें कह्यो ॥ जो मेंने तो और गुरु नांहि किये ॥ मेरे गुरु तो आप ही हो ॥ परि तुमारे प्रतापतें मेनें पूर्ण पुरुषोत्तम पाये हें ॥ तब वाने कह्यो ॥ जो पूर्ण पुरुषोत्तम कैसें जानीए ? तब गुरुके आगे अग्नि की अंगीठी धकधकात हती ॥ तामें ते

---

१ અહિં વૈરાગ્ય ધર્મ. ૨ અહિ ઐશ્વર્ય ધર્મ (જુઓ ૬૦ની વાર્તાનું રહસ્ય)

कृष्णदासनें दो हाथकी अंजुली भरि के अंगार हाथमें लीये ओर कहें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप पूर्ण पुरुषोत्तम होइ तो मेरे हाथ मति जरियो ॥ ओर जो अन्यथा होई तो मेरे हाथ जरि बरि भस्म होइ जैयो ॥ सो एक मुहूर्त लों अग्नि हाथमें राखी ॥ तब उन गुरुने भय खाई ॥ तब कह्यो के डारी दे ॥ पाछें उन गुरुने कृष्णदास के हाथ पकरी के अपने हाथ सों अग्नि डारि दीनी ॥ तब कृष्णदास तहांते खेद पाइ के उठि आए ॥

(यह प्रसंग सब वल्लभाष्टक की टीकामें श्रीगोकुलनाथजी ने विस्तारपूर्वक कह्यो हे ॥)

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

(क) सो गंगासागर के तीर पधारे ॥ सो रात्रिकों पोडे हते ॥ अर्धरात्रिको सुरसुराकी मनमें आई जो भोग धरिये ॥ सो कृष्णदास पर कृपा करन के लिये ॥ काहेतें पुरुषोत्तमको कछू वस्तु की अपेक्षा होइ नांहि ॥ कदाचित होई तो काहूके उपर कृपा करन के अर्थ ॥ सो कृष्णदास कों जनाई ॥ तब कृष्णदास तरिके पार जाय ले आए ॥ यह ईश्वरकार्य हें ॥ जीवसों न होइ ॥ तब कृष्णदास चरण दाबि के जनाए (जगाए) तब श्रीआ-चार्यजी आप अरोगि के वहोत प्रसन्न भए ॥

तब कहे मांगि । पाछे वही तीन वस्तू मांगे ॥

तब श्रीआचार्यजी कहे जीव कहा मांगे ? जीवको मागनो हि बाधक हे ॥ तातें परमानंददासने गायो हे " मागे सर्वस्व जात हे परमानंद भाखे" ॥

(ख) ओर गुरु को भाव चित्त में हतो ॥ ता करि महाप्रभू के वचन को विश्वास न भयो ॥ जो एकवार दिए सो दृढ हैं ॥ फेरि कहा मांगनो ? ओर मारग की दुर्लभता दिखाए ॥ श्रीमहाप्रभूजी के मनकी बात मुरमुराकी जाने ॥ परंतु मारग हृदयारूढ कृपाही ते होइ ॥ दोष को स्वरूप हे जो मुखरता दोष, जीवको स्वभाव हू जीन के हाथ नाहीं ॥ जब श्रीआचार्यजी छोडावें तब ही छूटे ॥ तातें श्रीआचार्यजी बिना ओर में इश्वरबुद्रि तथा गुरुबुद्रि करे[1] ताको एतन् मारगको फल कबहू सिद्र न होइ ॥ यह भाव जताए ॥ पाछें कृष्णदास गुरु के यहां सूं दुःख पाय, अन्याश्रय छोडि, महाप्रभूके पास आए ॥ तब मारग को सिद्रांत हृदयारूढ भयो ओर मुखरता दोष हू गयो ॥ तातें फेरि श्रीआचार्यजी सो नाहिं माग्यो ॥ अन्याश्रय एसो बाधक हे ॥ *

इति प्र. ३ समाप्त.

---

१. સરખાવો શ્રી હરિરાયજીની વાણીઃ—

निजाचार्येषु सततं मनस्तत्प्रियसूनुषु ।

स्थापनीयं न चान्येषु सममत्या कदाचन । (चतुःश्लोकी)

* ગંગાસાગરનો સમય. ૧૫૬૦–૬૧ લગભગનો અનુમાન થાય છે. અહીં શ્રીઆચાર્યજીને દેહત્યાગની આજ્ઞા થઇ. "गंगासागर संगमे" (જુઓ અંતઃકરણ પ્રબોધ) તે આજ્ઞા સ્વીકારી નહિં કારણ કે આપનો દેહ અલૌકિક છે. તેમજ લીલામાં થયેલી પ્રથમ આજ્ઞાનું પાલન પૂર્ણ રૂપથી થયું નથી. આ આજ્ઞા અંતઃકરણમાં થઇ છે. અને તેજ વખતે આપે મુરમુરા ભોગ ધરવાની ઇચ્છા કરી. અને શીઘ્ર કૃષ્ણદાસે તે ઇચ્છા જાણી કાર્ય સિદ્ધ કર્યું. અહીં કૃષ્ણદાસે દાસધર્મ દેખાડયો. સ્વામીની ઇચ્છા (વિના આજ્ઞા કરે) જાણીને કાર્ય કરવું તે દાસધર્મ. તેથી આપ પ્રસન્ન થયા.

बहुरि मार्ग हृदयारूढ भये पाछे कदाचित् गोप्य वार्ता होइ सो सबन के आगे कहें ॥ तब

वार्ता प्रसंग ४

काहू वैष्णवने श्रीआचार्यजी सों कही जो महाराज कृष्णदास गोप्य वार्त्ता सबन के आगे कहत हे ॥ तब श्रीआचार्यजीने कृष्णदास सों पूछी, जो तू गोप्य वार्ता सबन के आगे क्यों कहत हे ? तब कृष्णदासने कह्यो जो महाराज, आप उनही सों पूछिये ॥ जो मेंने कहा कह्यो हे ? तब उन वैष्णव सों श्रीआचार्यजीने पूछी जो तुमसों इन कृष्णदासनें कहा वार्ता कही ? तब उन वैष्णवनें कह्यो ॥ जो महाराज हमको तो कछू सुधि रही नांहीं ॥ तब श्रीआचार्यजी मुसिकाईके चुप करि रहें ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

मारग हृदयारूढ भयो ॥ सो रसके भरते रह्यो न जाइ ॥ सो रहस्यवार्ता वैष्णवसों करे ॥ तामें यह जताए ॥ कृष्णदास अपुने अनुभव करन अर्थ कहते ॥ परंतु पात्र बिना रस ठेरे नाहि ॥ (तातें वैष्णवने कही, कछु सुधि रही नाहिं)

और कृष्णदासकी कछू दामोदरदास तें उतरती दशा ॥ जो कहे बिना रह्यो न जातो ॥ यह दोऊ भाव जताए ॥

इति प्र. ४. समाप्त.

(क) ओर एक समें श्रीआचार्यजी सों कृष्णदासनें प्रश्न पूछ्यो जो महाराज श्रीठाकुरजी को प्रिय वस्तू कहा हे ॥ ताको प्रतिउत्तर श्रीआचार्यजी कहत हें ॥ जो श्रीठाकुरजी उत्तम तें उत्तम वस्तु के भोक्ता हें ॥ परंतु गोरस अति प्रिय हे ॥ गोरस शब्देन वाणी कहियति हे ॥ ताको भाव अनिर्वचनीय हे ॥ ओर सबन ते भक्तको स्नेहमय प्रभाव अतिप्रिय हें ॥ जातें भक्तवत्सल कहवावत हे ॥

वार्ता प्रसंग ५

तब कृष्णदासने फेर पूछी जो श्रीठाकुरजी कों अप्रिय बस्तु कहा हे ? तब श्रीआचार्यजीनें कह्यो ॥ जो श्रीठाकुरजी कों धुंआ समान अप्रिय ओर नाही हे ॥ ताहूतें अप्रिय श्रीठाकुरजी कों भक्तको द्वेषी हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

गोरस सो वैष्णव को स्नेह परस्पर ओर वैष्णव को कलेश सो धुंवा ॥ जहां स्नेह तहां श्रीठाकुरजी पधारे जानिए ॥ जहां क्लेश तहां ते श्रीठाकुरजी दूरि जानिए ॥

(ख) फेरि कृष्णदासने प्रश्न पूछयो ॥ जो महाराज श्रीरघुनाथजी संपूर्ण सृष्टि को लेके स्वधाम पधारे ॥ ओर राजा दशरथ को स्वर्ग दीयो ॥ सो काहेते ? ताको प्रति उत्तर श्रीआचार्यजी कहे जो श्रीरघुनाथजी तो परमदयाल हें ॥ तातें स्वर्ग दीनो ॥ नातर स्वर्ग की योग्यता राजा दशरथ को न हती ॥ काहेते जो अपनो वचन सत्य करिवे को श्रीरामचंद्रजी को वनवास पठाए ॥ एसो कर्म कीया ॥

यह प्रश्न हीनाधिकारी को हे काहेतें साक्षात पुरुषोत्तमकी लीला

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

तें मन बहार करी यह प्रश्न कहा ? यामें यह जताए ॥ (कृष्णदासकों) अबही "मानसी सा परा मता" यह फल नांहि भयो ॥ तब कृष्णदास के समाधान के अर्थ आप कहे जो रामचंद्रजी दयाल हें....(देखो वार्ता)

यह कहि अपने मारग को सिद्धांत जताए ॥ जो अपने हठधर्म करि धर्मी जो श्रीठाकुरजी तिनको श्रम करावे तो हीन फल धर्मको स्वर्ग ही मिलें ॥ श्रीठाकुरजीको फल न मिले ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ६

ओर एक समें श्रीआचार्यजी सों कृष्णदासनें फेरि प्रश्न पूछयो जो भक्त होइ के श्रीठाकुरजी की लीला को भेद नांहि जानत सो काहेतें ? तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो ये विधिपूर्वक समर्पन ज्यों कह्यो हे त्यों नांहि करत ॥

*** विधि सो समर्पन पदारथ को ज्ञान नांहि ॥ अहंता ममता अपनी सत्ता अहंकार को समर्पन ॥ जो अब दास भयो ॥ प्रभु आधीन हों ॥ प्रभु करे सो सर्वोपर सिद्धांत हे ॥ यह भेद अपने में नांहि ॥ ओर अपनि योग्यता मानि भगवदीय को संग नांहि करत हे ॥ तातें योग्यता मानें**

---

*અહીંથી આ +ચિન્હ સુધીના શબ્દો શ્રીહરિરાયજીના છે.

तब प्रभु अप्रसन्न होई जात हें ॥ यह मारग दैन्य को हे ॥ सो दैन्य नांहि हे ॥ इत्यादिक अंतरायतें अपनो स्वरूप ओर भगवदीय को स्वरूप श्रीठाकुरजी को स्वरूप नांहि जानत हें॥ ओर भगवद्भक्त को संग करे तो श्रीठाकुरजी की लीला को भेद जाने॥ सो तो योग्यता समज नांहि करत हे ॥ ओर जो कछू करत हे सो अंतःकरण पूर्वक नांहि करत हे ॥ ता तें श्री ठाकुरजी को स्वरूप ओर लीला को भेद नाँहि जानत हे ॥+

उत्तम भक्त को संग करे ॥ श्रीभागवत श्रीसुबोधिनीजी आदि ग्रन्थ को अहर्निश अवगाहन करे ॥ तब भगवद्भाव उत्पन्न होइ ॥ श्रीठाकुरजी व्रजभक्तन विषे सदैव रहत हें ॥ तहां सेवा करि के वंधे हें ॥ तहां एतन्मार्गीय वैष्णव ताके हृदय में श्रीठाकुरजी बिराजत हें ॥ ताको संग करनो ॥ तहां गजनधावन आदि वैष्णव को दृष्टांत दीनो ॥ जिन जिन ने भावपूर्वक सेवा करी तिन तिन के सकल मनोरथ सिद्ध भये ॥ जातें लीलास्थ व्रजभक्तन के भाव को विचार करनो॥

जो वैष्णव श्रीठाकुरजी को स्वरूप जानत हे॥ तिनको स्वरूप अलौकिक दृष्टि सों जान्यो जाय॥ जो आज्ञा होइ सो जाने॥ जो वैष्णव श्रीठाकुरजी को जानत हें सो जो कछू काज करत हे सो श्रीठाकुरजी के अर्थ करत हें ओर श्रीठाकुरजी विषें विरह ताप भाव करत हें ॥ अपुने स्वदोष

को विचार करत हें ॥ (एसे जीव) अपुने स्वरूप विचारे जो हों कोन हों ? पहले कहा हतो ? भगवद् संबंध कीये तें हों कोन हो गयो ? अब मोकों कहा–कर्तव्य ? रात्रदिवस एसे विचार करत रहें ॥ तब अपनो स्वरूप जाने ॥ ये प्राकट्य श्रीव्रजभक्तन के अर्थ हे । तानें उत्तम संग होइ तो एतन्मार्गीय ठाकुर को जाने ॥ ओर शास्त्र पुरान अनेक इतिहास हें ॥ तातें व्रजराज के घर प्रगटे सो स्वरूप जान्यो न जाय ॥ ये ठाकुर तो तबही जाने जब भगवद्भक्त को संग करे ॥ सेवा को प्रकार एतन्मार्गीय वैष्णव जानत हें ॥ तिनसों मिली भाव पूछि के सेवा करनी । तब भगवद्भाव उत्पन्न होइ ॥ श्रीठाकुरजीकी लीला को सब भेद जाने ॥

इति वार्ता प्र. ६ समाप्त ॥

---

१ ओर श्रीआचार्यजी श्रीबद्रीनाथजी के मंदिर पाउ धारे ॥ तब वेदव्यासजी साथ हे ॥

वार्ता प्रसंग ७ तब श्रीआचार्यजी वेदव्यासजी सों पूछी जो भ्रमर गीत के अध्याय में उद्धव कों व्रजभक्त पास पठाए ॥ ता प्रसंग में आधो श्लोक घटत हे ॥ तब वेदव्यासजीने अर्द्धश्लोक कह्यो सो श्लोक ॥ “ आत्मत्वाद्भक्तवश्यत्वात्सत्यवाक्त्वात्स्वभावतः” सो याकी

टीका श्रीआचार्यजीनें पहले ही कीनी हे* ॥ सो सुनि के वेद व्यासजी कहे जो तुम धन्य हो ॥ ता पाछें श्रीआचार्यजी महा प्रभु श्रीबद्रीनाथजी के मंदिर में पधारे ॥ ता दिन वामनद्वादशी हती ॥ ता दिन श्रीआचार्यजी व्रत करते ॥ सो फलाहार श्रीव्यासजी हूं ढूंढे ॥ और कृष्णदास हूं ढूंढे ॥ परंतु मिल्यो नांहि ॥ तब श्रीबद्रीनाथजीने श्रीआचार्यजी सों कह्यो ॥ जो मेनें फलाहार को सर्वत्र खोज कीयो ॥ परि पावत नाहिं ॥ तातें तुम रसोई करि के श्रीठाकुरजी को भोग समर्पि के भोजन करो ॥ तब श्रीआचार्यजी विचारे जो श्रीठाकुरजी की इच्छा एसी ही दीसत हे ॥ इतने में कृष्णदासने आइ के कह्यो जो महाराज, इहां कछु फलाहार पाइयत नांहि ॥ तब वेदव्यासजी द्वारा श्रीठाकुरजीने कही जो सामग्री करि भोजन करो ॥ "उत्सवांते च पारणा" यह बचन हे ॥ तापाछे श्रीआचार्यजी आपु रसोई करिके श्रीठाकुरजी को भोग समर्पि के आप भोजन कियो ॥

पाछें ता दिनतें वामनद्वादशी के दिना व्रत न करते ॥ पाछे श्रीआचार्यजी श्रीबद्रीनाथजी ते बिदा होइके कृष्णदास को साथ ले के पधारे ॥[1]

---

* अत्र प्रायेण साधनचतुष्टयप्रतिपादकमर्थमन्तरितमिति प्रतिभाति आत्मस्वाद.........' (सुबोधिनी १०-८४-२९)

१. આ પ્રસંગ ત્રણે પરિક્રમા બાદ અડેલવાસ કર્યો ત્યાર પછી સં. ૧૫૭૬માં હરિદ્વાર થઈ અહીં (બદ્રીકાશ્રમ) પધાર્યા તે વખતનો છે. (જુઓ હરિદ્વાર બેઠક ચરિત્ર)

फलाहार ना मिल्यो ॥ ताको प्रयोजन यह जो, श्रीआचार्यजी चाहें सो सबहि मिले ॥ व्यासजी कृष्णदास सरीखे ढूंढनहारे ॥ सो फलाहार या तें न मिल्यो जो श्रीआचार्यजी के मनमें सामग्री उत्सवकी करनी ॥ ऊपर तें मर्यादा राखिवे के लिए फलाहारकी कही ॥ सो फलाहार न मिल्यो ॥ तातें वेदव्यासजी द्वारा श्रीठाकुरजीने कहवाई ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

तातें श्रीगुसांईजीने सात लालजीन में ॥ बडे घर (प्रथम पुत्र श्रीगिरिधरजी के घर) यह रीति राखी उपवास ॥ ओर ठोर "उत्सवांते च पारणा" श्रीठाकुरजी सब सामग्री अरोगे ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ८

श्रीआचार्यजीने जब आसुरव्यामोह लीला करी, तब कृष्णदास ने हू विप्रयोग करी देहको त्याग कीयो ॥ ×

इति प्र. ८ समाप्त.

× " સંપ્રદાયકલ્પદ્રુમ "
અહિં વિપ્રયોગનું નિરૂપણ છે.

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

દામોદરદાસ સંભરવાળાની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ—

"चेतस्तत्प्रवणं सेवा" इति ॥ ઈશ્વરમાં ચિત્તનું પૂર્ણ પરોવાવવું તેનું નામ સેવા. દરેક મનુષ્યનું ચિત્ત ત્રણ વિભાગમાં વટાએલું છે. ૧. ખાનપાન, ૨. ગાનતાન અને ૩. સુંદર પહેરવું ઓઢવું. તે ત્રણે પ્રકારની ચિત્તવૃત્તિને **ઈશ્વરમાં યોજવાને અર્થે** શ્રીમદાચાર્યચરણે ૧ ભોગ, ૨ રાગ અને ૩ શૃગાર પ્રાધાન્ય ઐશ્વર્યયુક્ત સેવાનો દામોદરદાસને ત્યાં સર્વ પ્રથમ પ્રાદુર્ભાવ કર્યો છે. શ્રીઆચાર્યચરણે દામોદરદાસને ત્યાં આ સેવા ભાવાત્મક ઐશ્વર્યરૂપે સ્થાપન કરી એટલે અભોગ્ય ઉત્તમોત્તમ વસ્તુ શ્રી પ્રભુને અંગીકાર કરાવવી એવી આજ્ઞા કરી. (જુઓ પ્ર૦ ૧) **શ્રી દ્વારકાનાથજીએ તેનો બાહ્ય પ્રાદુર્ભાવ સાંગોપાંગ પ્રકટ કરાવ્યો.** (જુઓ પ્ર૦ ૩) એથી મંદિર, ટેરા, ઝારી ઝરોખા આદિ **સર્વ લીલા સૃષ્ટિનો ઐશ્વર્યક્રમ પ્રથમ દામોદરદાસને ત્યાં પ્રકટ થયો.**

આ રીતે સજ્ઞાન પુરુષ અને અજ્ઞાન પુરુષ બન્નેના મનને આકર્ષીને પ્રભુમાં યોજવાને અર્થે ઐશ્વર્યરૂપ સેવાનો પ્રાદુર્ભાવ કર્યો. આથી અનેક જીવો કૃતાર્થ થયા. "**રાજ કાજે જોડીયા જન ઉચ્ચાવચ નરનાર**" દરેક ઉચ્ચ નીચ તેમજ વિવિધ અધિકારવાળા જીવોનો પણ આ ઐશ્વર્યરૂપ સેવામાં અંગીકાર છે, અને તેની કૃતાર્થતા પણ છે. માટે આ સેવા વિના ચિત્તમાં રહેલી અનેક પ્રકારની વાસનાઓનો નિરોધ દુઃશકયજ નહિ પણ અશકયજ છે. માટે ઉપરના દેખાવ પૂરતા પાખંડ ધર્મયુક્ત સંન્યાસાદિ કરતાં ભગવત્સેવાનિમગ્ન ગૃહસ્થાશ્રમજ એક સર્વસુલભ ભગવત્પ્રાપ્તિના સાધનરૂપ છે. આ સેવાથી અહતા મમતા સહજમાં નષ્ટ થાય છે. (જુઓ દામોદરદાસની સ્ત્રીનું પુત્ર ઉપરનું મમત્વ કેવું દૂર થયું ? પ્રસંગ ૭-૮) અને

આગળ ઉપર પુષ્ટિના સંન્યાસરૂપ વિપ્રયોગ અવસ્થાની સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે.

આથી આ દામોદરદાસની વાર્તામાં અપ્રાકૃત ઐશ્વર્યનું આધિદૈવિક સેવા અર્થે પ્રાકટ્ય નિરૂપ્યું છે. માટે આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના ભાવાત્મક નિરોધના આધિદૈવિક ઐશ્વર્યરૂપ કહી.

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभूनके सेवक दामोदरदास संभलवारे क्षत्री कन्नोज के वासी तिनकी वार्ता ॥

दामोदरदास कों बालपनें तें बिरह हतो जो श्रीठाकुरजी की प्राप्ति कोंन प्रकार सो होई ? सो दामोदरदास एक समय प्रयाग में आए हते मकरस्नानको ॥ सो कृष्णदास सो मिलाप भयो ॥ तब चर्चा करत कृष्णदास (मेघन) ने कही श्रीवल्लभाचार्यजी प्रकट भये हैं ॥ सो दक्षिण में पधारे हे ॥ कृष्णदेव राजा की समिपे मायावाद खंडन कीए हे ॥ उनकी कृपानें निश्चय श्रीठाकुरजी मिलेंगे ॥ मेरे गुरु सों नेह हे तिनसो कछू कार्य मेरो भयो नांही ॥ तातें जब में जहां श्रीआचार्यजी

शरण आये पहेले को प्रकार (जन्म १)

* १ શ્રીહરિરાયજીકૃત, સંશોધિત ઈતિહાસ.

होइंगे तहां जाऊंगो ॥ यह दामोदरदाससों कहे के कृष्णदास दक्षिण देश गए ॥

जब तें दामोदरदास के पास तें कृष्णदास मेघन श्रीआचार्यजी पास गए ॥ तब तें दामोदरदासको विरह बहोत रहे॥ जो मोकों श्रीआचार्यजी कोन प्रकार मिलेंगे ? ॥ या प्रकार विरह करत माह महिना में मकरस्नान दामोदरदास कोए ॥ सो महा सुद १५ को दामोदरदास मकरस्नान करत हते ॥ ता समय एक तांबे को पत्र गंगा यमुना के संगम में तें दामोदरदास के हाथ आयो ॥ सो दामोदरदास घर लाए ॥ जब रात्रिकों दामोदरदास सोए ॥ तब दामोदरदास को स्वप्न भयो ॥ यह पत्र बांचे ताकी तू शरन जैयो ॥ तब सवारे उठि के प्रयाग में बड़े २ पंडित ब्राह्मण महापुरुष मकरस्नानको आए हते ॥ तिन सबन को वंचायो ॥ कोई बांचि न सके ॥ तब दामोदरदास काशी में शेठ पुरुषोत्तमदास के इहां व्योहार हतो ॥ (तहां गये) खरच की हुंडी सेठ पुरुषोत्तमदास के यहां ले गये हते ॥ तिनसों सगरी बात दामोदरदासने कही जो यह पत्र श्रीआचार्यजी बांचेंगे ॥ और काहूकी सामर्थ्य नांहीं ॥ मोसों कृष्णदास मेघन कहे गए हैं ॥ जो श्रीआचार्यजी की सरन तें श्रीठाकुरजी मिलेंगे ॥ (सो) यह सुनिके सेठ पुरुषोत्तमदास हू को चटपटी लागी ॥ जो मोको कब श्रीआचार्यजी को दरसन होइंगे ? सो शेठ पुरुषोत्तमदासकी वार्ता के भाव में वर्णन करेंगे ॥ या प्रकार दामोदरदास दिन १६

कासो रहे ॥ परंतु पत्र कोउ न बांच्यो ॥ तब कन्नोज में अपने घर आए ॥ एसे विरह करत * कछूक महिनामें श्री आचार्यजी महाप्रभू कन्नोज पधारे ॥ तब गामके बाहर बागमें उतरे ॥

॥ श्रीद्वारकेशो जयति ॥

દામોદરદાસ સંભરવાળાનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ–

દામોદરદાસ જાતે ક્ષત્રિય હતા. તેમનો જન્મસમય સંવત ૧૫૩૦ લગભગનો છે. તેમના પિતા કરોલીના ચદ્રવશીય રાજાના દિવાન હતા. જ્યારે તેમના પિતાએ દેહ છોડયો ત્યારે તેઓ લગભગ ૨૦ વર્ષના હતા. તેમના પિતાએ તેમને નાનપણથીજ રાજ્યનીતિના પ્રખર અભ્યાસી કર્યા હતા અને રાજા સાથે તેમનો ઘનિષ્ઠ પરિચય કરાવેલો હતો. દામોદરદાસની બુદ્ધિ અત્યત તીવ્ર હતી અને બહુજ નાની અવસ્થામાં પણ તેમના પિતાને કવચિત્ રાજ્યનીતિને અત્યંત ઉપયોગી એવી સલાહ આપતા કે જેથી પિતા પોતાના એકના એક પુત્રનું મુખ જોઈ રહેતા અને પોતાના પુત્રની બુદ્ધિ ઉપર મુગ્ધ થતા હતા. જ્યારે રાજાને દામોદરદાસની તીવ્ર બુદ્ધિનો પરિચય થયો ત્યારે દામોદરદાસના પિતાને તેઓએ હુકમ કર્યો કે પોતાના પુત્રને નિત્ય રાજ્યદરબારમાં સાથે લાવ્યા કરો અને રાજ્યથી માહિતગાર કરો. તેમ કરતાં કરતાં લગભગ પાંચેક વર્ષમાંજ જ્યારે દામોદરદાસના પિતાએ દેહ છોડયો ત્યારે રાજાએ દામોદરદાસને તેમના પિતાની દિવાનગીરી ઉપર કાયમ કર્યા. યદ્યપિ દામોદરદાસ રાજ્યનીતિમાં પૂર્ણ

* સંવત ૧૫૫૧–૫૨ માં શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધારેલા હોવા જોઇએ. (જુઓ શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ.)

સંડોવાયેલા હતા છતાં તેમનું ચિત્ત વૈરાગ્યથી પૂર્ણ હતું અને ભગવત્પ્રાપ્તિના અર્થે અનેક સાધુ પુરુષોનો સંગ કરતા હતા.

વ્રજ સં. ૧૫૪૮ ના વૈશાખ વદ ૨ ઉપરાંત ત્રીજના દિવસે શ્રીઆચાર્યજીએ વિદ્યાનગરથી પ્રયાણ કર્યું. સર્વ પ્રથમ દક્ષિણના ઝારખંડમાં પધાર્યા. ત્યાં ભગવદાજ્ઞા થઈ કે આપ વ્રજમાં પધારી મારી સ્થાપના કરો. તેથી આપ વ્રજ તરફ પધાર્યા. રસ્તામાં કન્નોજ મુકામ કર્યો. ત્યાં ભગવદાજ્ઞા થઈ કે અહીંના જીવોને શરણે લેવાના છે. પ્રથમ આજ્ઞાનું પાલન કરવા આપ શીઘ્ર સંવત ૧૫૪૯ ના ફાલ્ગુન માસમાં વ્રજમાં પધાર્યા. ત્યાં શ્રીજીને પાટ બેસાડી સં. ૧૫૫૦ માં બ્રહ્મસંબંધનો મંત્ર શ્રીજીના શ્રીમુખથી પ્રકટ કરાવી આપ વ્રજયાત્રા કરી પૃથ્વીપરિક્રમા કરવા પધાર્યા. સંવત ૧૫૫૧–૫૨ માં આપ કન્નોજ પધાર્યા.

આપના પધારવાના એક દિવસ પહેલાં દામોદરદાસને સ્વપ્નમાં શ્રીદ્વારકાધીશે જણાવ્યું કે મારૂંજ બીજું સ્વરૂપ શ્રીવલ્લભાચાર્યજી કાલે કન્નોજમાં પધારશે અને તે તને તાંબાપત્રનો અર્થ સમજાવશે. માટે તું તેમને શરણે જજે. જ્યારે શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધાર્યા ત્યારે ગામ બહાર ગંગાતટ ઉપર આપે બગીચામાં મુકામ કર્યો. અને કૃષ્ણદાસને સામાન લેવા બજારમાં મોકલ્યા. આપણે પહેલા વાંચી ગયા છીએ કે કૃષ્ણદાસનો અને દામોદરદાસનો પ્રથમ મિલાપ સં. ૧૫૪૭ ની મકરસંક્રાંતિ વખતે પ્રયાગમાં થયો હતો. (જુઓ કૃષ્ણદાસનો ઈતિહાસ) જ્યારે દામોદરદાસ રાજદ્વારમાંથી ઘોડા ઉપર બેસીને ઘેર આવતા હતા, તેવામાં બજાર વચ્ચે તેમણે કૃષ્ણદાસને જોયા. જેથી તેમણે શ્રીવલ્લભાચાર્યજી પધાર્યા છે કે નહિ તેમ પૂછ્યું. (વિશેષ જુઓ વાર્તા.)

× × ×

શ્રીઆચાર્યચરણે તાંબાપત્ર વાંચીને તેમાંની આકૃતિના થતા

બન્ને અર્થ દામોદરદાસને સમજાવ્યા. માહાત્મ્યજ્ઞાનરૂપ આધ્યાત્મિક અર્થ સમજાવતાં આપશ્રીએ તે આકૃતિઓનું આ પ્રમાણે રહસ્ય કહ્યું:—

આ ગીધ અને સ્ત્રીના જેવી જે આકૃતિ જોવામાં આવે છે તે પૂતનાની છે, અને તે અવિદ્યા (અજ્ઞાન) રૂપ છે. એની પાસે ગર્દભ (ગધેડા) ની જે આકૃતિ છે, તે 'ધેનુક' રાક્ષસની છે અને તે 'દેહાધ્યાસ' નું રૂપ છે. એની પાસે જે ઘોડાની આકૃતિ છે, તે કેશી દૈત્યની છે, અને તે 'ઇન્દ્રિયાધ્યાસ' રૂપ છે. એની પાસે જે રાક્ષસની આકૃતિ છે તે 'પ્રલમ્બાસુર' છે અને તે અંતઃકરણાધ્યાસનું સ્વરૂપ છે. એની પાસે જે અગ્નિમંડલ છે તે દાવાનલ છે તે પ્રાણાધ્યાસરૂપ છે અને આ સન્મુખ વેણુનાદ કરતી જે મૂર્તિ છે તે સાક્ષાત શ્રીકૃષ્ણની છે. એ શ્રીકૃષ્ણ અવિદ્યા (પૂતના) દેહાધ્યાસ (ધેનુક) ઇન્દ્રિયાધ્યાસ (કેશી) અંતઃકરણાધ્યાસ (પ્રલમ્બ) ને નષ્ટ કરે છે. અને પ્રાણાધ્યાસ (દાવાનલ) નું પાન કરે છે. અને આ પાસેજ જે સર્પની આકૃતિ છે તે 'કામક્રોધ' રૂપ છે. તેના ઉપર શ્રીકૃષ્ણ નૃત્ય કરે છે. કારણ કે શ્રીકૃષ્ણની આગલ કામક્રોધનું પ્રાબલ્ય નથી ચાલતું અને આ 'ગોલાકાર' આકૃતિ છે તે બ્રહ્મરૂપ છે અને આ સાકાર 'બ્રહ્મવાદસૂચક' ચિહ્ન છે, એને આ શ્રીકૃષ્ણની સામે હાથ જોડી ઉભેલી સ્ત્રીની આકૃતિ તે 'ભક્તિ'રૂપ છે તેની તરફ શ્રીપ્રભુ પ્રસન્નતાથી જોઈ રહ્યા છે. આ ભક્તિની પાસે જે બે બાલકોની આકૃતિ છે, તે જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય છે. એ એમ સૂચન કરે છે કે ભક્તિ થવાથીજ જ્ઞાન અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થાય છે. એની પાસે પંજાની આકૃતિ છે તેમાં આ દીર્ઘરેખા છે તે પૂર્ણ આયુષ્યની છે. અને આ નાની રેખા છે તે સાધુતાની છે. એની પાસે આ બીજી સમ્મિલિત રેખા છે તે ઐશ્વર્યની છે. આની પાસે ભક્તિનું સ્વરૂપ અને ભક્તિ નિરૂપણ તત્ત્વ છે. તેથી એ સિદ્ધ છે કે મનુષ્ય ભક્તિનિષ્ઠ થાય તે દીર્ઘાયુષ્યવાન, સાધુસ્વભાવ, અને ઐશ્વર્યવાન થાય છે. આ પ્રમાણે

બધી આકૃતિની એકવાક્યતા કરીને આધ્યાત્મિક અર્થ દામોદરદાસજીને કહ્યો. પછી ભક્તિ (ભાવ) રૂપ આધિદૈવિક અર્થ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરવા લાગ્યા:--

આ સર્વ આકૃતિઓ અનેક પ્રકારની કુંજોના ચિત્રામણ રૂપ છે. અને તારૂં જ આધિદૈવિક સ્વરૂપ (સ્ત્રી આકૃતિ રૂપ) આ ચિત્રા સખીનું છે. શ્રીસ્વામિનીજીની નિકુંજ મહલમાં ચિત્રામન કુંજ સમ્હારવી એ તારી સેવા છે. અને તું શ્રીસ્વામિનીજીની સખી છે.

આ પ્રકારે જ્યારે શ્રીઆચાર્યજીએ બન્ને અર્થરૂપ લીલાનું સમગ્ર સ્વરૂપ અને ભાવનું દામોદરદાસને દર્શન કરાવ્યું ત્યારે દામોદરદાસને સમગ્ર લીલા અને પોતાના સ્વરૂપનું જ્ઞાન થયું. ત્યાર પછી તેઓ શરણે આવ્યા.*

શ્રીઆચાર્યજીએ રાજસેવાનું પ્રથમ મંડાણ દામોદરદાસને ત્યાં (વ્રજ) સં. ૧૫૫૨ ના ચૈત્ર માસમાં સ્થાપ્યું અને તેથી જ શ્રીઠાકુરજીનું નામ પણ શ્રીદ્વારકાધીશ કાયમ રાખ્યું.

પછી દામોદરદાસે શ્રીઆચાર્યજીને બે હાથ જોડી વિનતિ કરી કે કૃપાનાથ! વ્રજલીલામાં નંદનંદન તો દ્વિભુજ છે, અને આ શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ ચતુર્ભુજ છે, તેમજ પુષ્ટિલીલામાં આયુધધારણનું કારણ શું? તે કૃપા કરીને સમજાવો.

ત્યારે શ્રીમહાપ્રભુજીએ અત્યંત પ્રસન્ન થઈ આ પ્રકારે દામોદરદાસને આજ્ઞા કરી કે:—

શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ અતિપ્રાચીન છે. આ સ્વરૂપનું વર્ણન શ્રીમદ્ભાગવત, ગીતા, ઉપનિષદ, મહાભારત, વાલ્મીકીય રામાયણ, તુલસીકૃત રામાયણ અને પદ્મપુરાણ આદિ અનેક ગ્રન્થોમાં છે.

*तत्र कल्किस्थान दृष्टा कान्यकुब्ज समेत्य गङ्गातटे स्थिताः। तत्र दामोदरदासदत्तताम्रपत्रस्थलीलासम्बन्धार्थं निरूप्य तदभिज्ञानं तत्कर पल्लवस्थ चित्रं प्रदर्श्य, तं सकुटुम्बं च शिष्यं कृत्वा, तत्कृते श्रीद्वारकेश्वरं प्रतिष्ठाप्य। (यदुनाथ दिग्विजय प्रथम उत्तरयात्रा)

શ્રીદ્વારકાધીશ પરમ ગુપ્ત રહસ્યલીલાનું સ્વરૂપ છે. આ સ્વરૂપને કોઈ જાણી શક્યું નથી. તેં પૂર્વે આજ સ્વરૂપની રાજા અંબરીષ રૂપે મર્યાદામાર્ગની રીતિથી સેવા કરેલી છે. અને આ જન્મમાં તારે પુષ્ટિરીતિથી સેવા કરવાની હોઇ હું તને આ સ્વરૂપનું અતિગુપ્ત રહસ્ય કહું છું, તે તું દૃઢ ચિત્તથી શ્રવણ કર. તારા દ્વારા અનેક દૈવી જીવોને આ સ્વરૂપનો અનુભવ થશે.

શ્રીઆચાર્યજીએ શ્રીદ્વારકાધીશના ભાવાત્મક સ્વરૂપનું વર્ણન દામોદરદાસજી આગળ આ પ્રમાણે કહ્યું:—

આ સ્વરૂપ (શ્રીદ્વારકાધીશ) શ્રીમદ્‌ભાગવતના દશમસ્કંધના પ્રમેય પ્રકરણના સાતમા અધ્યાયની લીલાનુ પ્રાકટ્ય છે. અને અન્ય પ્રકરણની લીલા આપમાં ગુપ્ત છે. તેથી વ્રજલીલામાં આપ પ્રમેય બલ લીલા કરી ચતુર્ભુજરૂપે દર્શન આપે છે.

મુખ્ય પ્રકારથી શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ વન–નિકુંજમાં આંખ મિચૌનીની ભાવનાનું છે.

આપના નીચેના દક્ષિણ શ્રીહસ્તમાં પદ્મ (કમલ) છે. તેનો અવાંતર ભાવ ચૌદભુવન રૂપ છે. તેથી તે આયુધરૂપ છે. यथा 'भुवनात्मक कमलं' इति ।

એનો મુખ્યભાવ પુષ્ટિરીતિથી શ્રીસ્વામિનીજીની હથેલી છે. શ્રીઠાકુરજીએ શ્રીપ્રિયાજીનાં નેત્ર મિચ્યાં છે તે શ્રીસ્વામિનીજી પોતાની હથેલીથી નેત્રનિમીલન છોડાવે છે.

ઉપરના દક્ષિણ શ્રીહસ્તમાં ગદા છે. તેનો અવાંતર ભાવ અસ્ત્રના તેજનું નિવારણ છે. તેથી ગદા આયુધરૂપ છે. यथा 'अस्त्रतेजः स्वगदया' इति । મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો–અદ્‌ભુત લીલા જોઇને શ્રીસ્વામિનીજી ભુજાશ્લેષ કરે છે. માટે ભુજાના આસ્લેષરૂપ ગદા છે.

ઉપરના વામ શ્રીહસ્તમાં ચક્ર છે તેનો અવાંતર ભાવ તો એ છે કે જેને મુક્તિ દેવી હોય તેને ચક્રથી મારે, માટે તે આયુધરૂપ છે. यथा 'ये ये हताश्चक्रधरेण राजन्' । इति ।

એનો મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો શ્રીસ્વામિનીજીએ ભુજા-શ્લેષ કર્યો ત્યારે કંકણાદિ સ્પર્શ-ક્ષત ખચિત થાય છે તે આ ચિહ્ન છે.

નીચેના વામ શ્રીહસ્તમાં શંખ છે. તેનો અવાંતર ભાવ તો અસુર-ગર્વ-નિવૃત્તિ છે તેથી તે આયુધરૂપ છે. यथा ' विष्णोर्मुखोत्था-निलपूरितस्य तस्य ध्वनिर्दानवदर्पहंता ' इति ।

તેનો મુખ્ય ભાવ પુષ્ટિરીતિથી તો એ છે કે શ્રીસ્વામિનીજીના નેત્રને મિચ્યાં તે સમયે સન્મુખથી ગ્રીવાનો સ્પર્શ થાય છે.

આ, શ્રીઆચાર્યજીએ જે ભાવ દામોદરદાસને કહ્યો તે શ્રી દ્વારકેશજીએ જનહિતાર્થ સ્વરચિત ભાવનાના ગ્રંથમાં શ્રી દ્વારકાધીશના સ્વરૂપવર્ણનમાં સંસ્કૃતમાં શ્લોકબદ્ધ કર્યો છે. તે આ પ્રમાણે છે:—

प्रिया भुजाश्लिष्टभुजः कंकणाकृतिचक्रकः ।

कंबुकंठे धृतभुजो लीला कमल वेत्रधृक् ॥ १ ॥

શ્રીદ્વારકાધીશનું સ્વરૂપ આંખમિચૌનીનું છે તેની ભાવનાનો શ્લોક:—

भ्रूवल्लीसंज्ञयादौ सहचरिनिकरं वर्जयित्वा स्वकीयं,

पश्चादागत्य तूष्णीमथ नयनयुगं स्वप्रियाया निमील्यः ॥

कोऽस्मीत्येतद्वचनमसकृद्वेणुना भाषमाणः,

पातु क्रीडारसपरिचय स्त्वाञ्चतुर्बाहुरुच्चैः ॥ १ ॥

અર્થ:—શ્રીજમુનાજીના તટ ઉપર નિકુંજમાં પોતાના યૂથની સખીને પોતાની પાછલ રાખીને અને શ્રીઠાકુરજીના મેલની સખીને પોતાની આગલ બેસાડી શ્રીસ્વામિનીજી મધ્યમાં બિરાજી હાસ્યવિનોદ કરતાં હતાં. એવા સમયે વનમાંથી શ્રીપ્રભુ શ્રીસ્વામિનીજીની પાછલથી પધાર્યા. તે શ્રીપ્રિયાજીની આગલ બેઠેલી શ્રીઠાકુરજીની સ્વકીય સખીએ આપને પધારતા જોયા. શ્રીઠાકુરજીએ એને ભ્રકુટી ચલાવીને રોકી અને કહ્યું કે મારૂ પધારવું પ્રિયાને જણાવો નહિં. પછી ચુપચાપ પધારી પાછલથી પ્રિયાજીના બન્ને નેત્રો મીચ્યાઁ. તે પછી

આપે પ્રિયાજીને પૂછવાની ઇચ્છા કરી કે હું કોણ છું? પરંતુ જો મુખથી બોલે તો અદ્‌ભુત લીલાનું રહસ્ય ખુલી જાય છે તેથી તે ક્ષણે આપે પ્રમેયબલથી બીજા બે શ્રીહસ્ત પ્રકટ કરી બેઉ શ્રીહસ્તથી વેણુનાદ કરીને વેણુમાં પૂછ્યું કે હું કોણ છું?

વેણુદ્વારા આ વચનને સાંભળીને શ્રીસ્વામિનીજી આશ્ચર્યયુક્ત થયાં. અને મનમાં વિચાર કરવા લાગ્યાં કે બે શ્રીહસ્તથી નેત્ર મીચ્યાં છે, અને બે શ્રીહસ્તથી વેણુદ્વારા પૂછે છે કે હું કોણ છું?

પોતાના પ્રિયતમની આ અદ્‌ભુત લીલા જોઈને શ્રીપ્રિયાજીએ ઉત્તર દીધો કે આપ ચતુર્ભુજ છો. એવી રીતે પરસ્પર અત્યત રસરૂપ આનંદની વૃદ્ધિ થઈ.

ત્યાર પછી શ્રીઆચાર્યજીએ દામોદરદાસને આજ્ઞા કરી કે તેથીજ આપના શ્રીઅંગમાં ચારે આયુધનાં સ્વરૂપ મૂર્તિમાન છે. પ્રિયાનાં આવિર્ભાવાવિષ્ટ સ્ત્રીરૂપ છે અને પ્રિયા જે સ્વામિની તે કરીને વિશિષ્ટ સ્વરૂપ આપનું છે. તેથીજ આપની પીઠિકા (કંદરા) ચોખૂંટી છે. પીઠિકાના વામ ભાગમાં ચક્રના ઉપર જે પદ્માસનથી બિરાજેલું ચતુર્ભુજ સ્વરૂપ છે તે એ સ્વરૂપ છે કે જેણે કારાગારમાં વસુદેવ દેવકીને ત્યાં પ્રકટ થઈ દર્શન દીધાં અને આજ્ઞા કરીઃ—यथा 'एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे',

પીઠિકાના દક્ષિણ ભાગ તરફ ગદાની ઉપર પદ્માસનથી બિરાજેલું જે ચતુર્ભુજ સ્વરૂપ છે તે સૃષ્ટિકર્તા લક્ષ્મીપતિ નારાયણનું સ્વરૂપ છે. આપ બ્રહ્માને ત્યાં બિરાજતા ત્યારે સૃષ્ટિક્રમ આ સ્વરૂપદ્વારા થતો. यथा श्री भा० द्वि० स्कं० न० अ० । 'ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितं'.

ઈત્યાદિથી આપે પોતાના સ્વરૂપનું જ્ઞાન કરાવ્યું અને પછી આજ્ઞા થઈ કેઃ—

'एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ।'

એ આજ્ઞા આ સ્વરૂપથી થઈ તે આ સ્વરૂપ છે. આ સ્વરૂપનું બીજું પ્રમાણ શ્રી ભા૦ તૃ૦ સ્કં૦ ન૦ અ૦ સમાપ્તિમાં શ્લોકઃ—

सर्ववेदमयेनेदमात्मनात्मात्मयोनिना ।

प्रजाः सृज यथा पूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥ ४३ ॥

तस्मादेवं जगत् स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ।

व्यज्येदं स्वेन रूपेण कंजनाभस्तिरोदधे ॥ ४४ ॥

આજ સ્વરૂપ દ્વારા આ આજ્ઞા થઈ. તેથી આ બન્ને વામ અને દક્ષિણ બન્ને ભાગનાં સ્વરૂપ પણ આપ શ્રીદ્વારકાધીશનાંજ વસ્તુતઃ છે. લીલાકરણ પીઠિકામાં પ્રથમ દર્શન દે છે.

હવે બન્ને તરફ નીચેના શ્રીહસ્તની નીચે બે બે સ્વરૂપ મલીને ચાર છે. તેનું સ્વરૂપ કહે છેઃ—

પૃથક્ પ્રમાણથી તો એ ચારે પાર્ષદ છે. એમનાં નામ સુનન્દન, નન્દ, પ્રબલ, અને અર્હણ છે. બીજા પ્રમાણથી એ ચારે વેદ છે. ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद અને सामवेद ।

ત્રીજા પ્રમાણથી એ ચારે વ્યૂહ છે-પ્રદ્યુમ્ન, અનિરુદ્ધ, સંકર્ષણ, અને વાસુદેવ. અને ચોથા પુષ્ટિના પ્રમાણથી એ ચાર યૂથાધિપતિ છે. ચાર મુખ્ય સ્વામિની છે—નિત્યસિદ્ધા (શ્રીરાધિકાજી), શ્રુતિરૂપા (શ્રીચંદ્રાવલીજી), ऋषि રૂપા (શ્રીકુમારિકા રાધા સહચરીજી) અને તુર્ય પ્રિયા (શ્રીજમુનાજી)

હવે શ્રીઅંગના ચિન્હોનું સ્વરૂપ કહે છેઃ—

શ્રીમસ્તક ઉપર કિરીટ છે તે પ્રથમ મર્યાદાનો અંગીકાર છે. મુખ્ય પુષ્ટિ ભાવથી તો મયૂરપક્ષના મુકુટનોજ પર્યાયરૂપ કિરીટ છે. મલ્લકાછ કટિમાં ધારણ છે તે સૃષ્ટિ રચવી શ્રમસાધ્ય છે, તેથી. પુષ્ટિભાવ તો કામને જીતવાના હેતુથી નટવત્ વિહારરૂપ મલ્લકાછ છે. યજ્ઞોપવીત ધારણ છે તે શ્રુતિનો અંગીકાર છે. અને શ્રીકંઠમાં હાંસ ધારણ છે તે શ્રીસ્વામિનીજી સન્મુખથી આશ્લેષ કરે છે તે

આપના ઉભય મુખની કાંતિ પ્રભારૂપ છે. વનમાલા છે તે યાવત્ વ્રજભક્તોનો અંગીકાર કરે છે. ચરણમાં નૂપુર, પાયલ અને શ્રીહસ્તમાં કડાં છે તે આપનું યુગલ સ્વરૂપ ભાવાવિશિષ્ટ સ્વરૂપ છે તેથી યુગલતા સૂચિત છે. કિરીટના પાછલ તેજનું ચિહ્ન છે તે કોટિકન્દર્પલાવણ્ય અસંખ્ય સૂર્ય આપના તેજની આગલ લજ્જિત છે.

આ પ્રકારે આપના શ્રીઅંગનાં ચિન્હ છે. આવા પ્રકારનું આપનું સુંદર સ્વરૂપ અગમ્ય છે. ×

શ્રીઆચાર્યજીના શ્રીમુખથી દામોદરદાસે શ્રીદ્વારકાધીશનું સમગ્ર ભાવાત્મક સ્વરૂપ શ્રવણ કરી હૃદયમાં ધારણ કર્યું. જેથી તેમને સમગ્ર લીલા સ્ફુરી. ત્યારે પોતે લોકલજ્જા કુલકા'નનો ત્યાગ કરી પરમ સ્નેહથી સેવા કરવા લાગ્યા.

દામોદરદાસનું અવસાન સંવત ૧૫૭૭ લગભગ છે. (વ્રજ સં.) ૧૫૭૭માં શ્રીદ્વારકાધીશ શ્રીમહાપ્રભુજીને ત્યાં પધાર્યા.

—:સમસ્ત લીલા પ્રકરણ:—

ચિત્રાજીનું ધ્યાન કરવા માટે કોષ્ઠક આ પ્રમાણે:—

પિતાનું નામ	માતાનું નામ	વર્ણ=રંગ	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	બાજા	રાગ	વય
રુચિભાનુ	રુચિરકલા	પીન શરીર લંબચોડા કેશ અધકચરે	લીલાં	જ્યોતિષ / ચિત્રકલા	સીતાર	શંકરા	વર્ષ ૧૩ માસ ૮

આ પ્રકારે ચિત્રાજીનું ધ્યાન કરવું. તે મુખ્ય અષ્ટસખીમાં છે. એમને ત્યાં ૧૯૦૦૦૦૦ ઓગણીશ લાખ ગાયો છે અને શ્રીકુંડની પૂર્વ આનંદ સુખદનામ એમની કુંજ છે. એ જ્યોતિષ સારૂ જાણે છે. (તે લીલાના સંબંધથી અહીં પણ દામોદરદાસને પૂર્વસૂચિત તાંબાપત્ર પ્રાપ્ત થયું) તેમની સેવા નિકુંજમાં ચિત્રામનની છે. દામોદરદાસ સંભરવાળાનું સ્વરૂપ ચિત્રાજીનું છે.

× શ્રીદ્વા. પ્રા. વાર્તા (કાંકરોલી વિદ્યાવિભાગ તરફથી પ્રકટ થએલી)

शरण आयवेको प्रकार

जब श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे तहां गाम के बाहिर एक बाग हतो तहां आप उतरे ॥ ओर कृष्णदास को गाम में पठायो ॥ जो सीधो सामग्री ले आउ ॥ परि काहूसों कहीयो मति ॥ जो श्रीआचार्यजी आप पधारे हें ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

यह कहे ताको अभिप्राय यह हे जो दामोदरदास कृष्णदास को मिलेगो ॥ सो दामोदरदास सों पहिले आपहि कहे जो श्रीआचार्यजी पधारे हे ॥ सो दामोदरदास द्रव्यपात्र हे ॥ तातें इनके बुलायवेकी अपेक्षा यह मनमें आवे तो कृष्णदासको विगार होइ ॥ सो ताते बरजी दीए जो काहूसों कहियो मति ॥ प्रीति होइगी तो आपुही आवेगो ॥ यह अभिप्राय जाननो ॥

ओर दूसरो अभिप्राय यह हे जो जा दिन श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे तातें पहलेई श्रीआचार्यजी आपको (श्रीठाकुरजीको) आज्ञा भई हती ॥ जो यहांके (कन्नोज के) जीव पावन करने हे ॥ तातें श्रीआचार्यजी आप विचारे जो आग्या भई हे तो आपही होइगो ताके लिये नाहि करो हती ॥

तब कृष्णदास गाममें गए ॥ सीधो सामग्री सब लीनी । सो सब ले के चले तहां दामोदरदास

वार्ता

राजद्वारतें आवत हते ॥ सो मारग में जात कृष्णदास कों पहचानें ॥ तब दामोदरदास घोडातें उतरि के कृष्णदास के पास आए ॥ तब दंडवत करि के कह्यो ओर पूछयो जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू पधारे हें ? ॥ तब कृष्णदासने बिचार्यो जो श्री आचार्यजी की आज्ञा नाही* (तातें कछु उत्तर दीयो नांहि)

तब दामोदरदासने विचार्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी बिना ए काहेको आवे ? सो जब कृष्णदास चले तब दामोदरदास पाछे पाछे आए ॥ घोडा घर पठवाइ दीयो ॥

तब कृष्णदास को ओर दामोदरदास कों दूरि तें आवत श्रीआचार्यजी ने देखें ॥ तब दामोदरदासने दंडवत कीये ॥ तंब कृष्णदाससों श्रीआचार्यजीने पूछी जो तेंने वासों क्यों कह्यो ? ॥ तब इनने (कृष्णदासनें) कही महाराज मेनें तो इनसों नाही कही ॥ तब दामोदरदासनें श्रीआचार्यजी सों बिनती कीनी जो महाराज इननें तो मोसों नांहि कही ॥ हों तो इनके पाछे चल्यो आयो हूं ॥

पाछे श्रीआचार्यजी (ने) दामोदरदाससों पूछी जो पत्र पायो हे सो लायो हे ? ॥ तब दामोदरदास ने बिनती

---

* तब कृष्णदासने कही आज्ञा नांहि ॥ આવો પાઠ પણ બીજી કેટલીએક પ્રતોમાં છે.

कीनी ॥ जो महाराज पत्र को कहा काम हे? तब श्रीआ-चार्यजी आप कही जो तोकों आज्ञा भई हे ॥ जो पत्र बांचे ताकी सरन जैयो ॥ तातें पत्र ल्याऊ ॥ तब पत्र मंगवायो ॥

श्रीआचार्यजीने कृष्णदास सों कह्यो जो तेनें इनसों क्यों कह्यो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यह कहे ताको कारण यह जो 'तेने आज्ञा नांही' यह कह्यो तामें हमारे पधारनो तो कह्यो ॥ तब दामोदरदासने कही जो इनने नाही कह्यो ॥ में इनके पाछे चल्यो आयो हूं ॥ या प्रकार दैन्यता सिद्ध कीए ॥

जब दामोदरदासने कह्यो पत्रको कहा काम हे? यह कही दामोदरदास ने यह जतायो जो आप ईश्वर हो ॥ मोको अनुभव भयो हे ॥ तब (श्रीआचार्यजी) कहे ल्याव **भगवद्आज्ञा होय तेसेहि करनो ॥**

तब श्रीआचार्यजी ने पत्र मंगवायो हतो सो बांच्यो ॥ पाछे वाको अभिप्राय दामोदरदाससों वार्ता कह्यो + ॥

+तू चित्रा सखि हे। श्रीस्वामिनीजी की निकुंज महलमें चित्रामन कुंज सवारनें यह तेरी सेवा हे ॥ सो श्रीआचार्यजी (स्वामिनीजी) की तू सखि हे ॥ उनहि की सरन जैयो ॥ यह बांचि सूनाये ॥ (श्रीहरि-रायजी) विशेष जुओ। दामो० नी वार्ताना रहस्यमां.

पाछें दामोदरदास को नाम सुनायो [×] ॥ पाछे श्रीआचार्यजी को दामोदरदास नें अपने घर पधराए ॥ पाछे दामोदरदास की स्त्री हू सरनि आई ॥ तब दामोदरदासको ओर उनकी स्त्री को समर्पन करवायो ॥ एक लोंडि दैवी जीव हती सोउ शरन आई ॥

तबं दामोदरदास नें वीनती करी जो महाराज अब कहा आज्ञा होत हे ? अब हम कहा करे ? तब श्रीआचार्यजी श्रीमुखतें आज्ञा किए ॥ जो अब तुम सेवा करो ॥ तब दामोदरदासनें कही ॥ जो महाराज सेवा कोन प्रकार करे ?

वार्ताप्रसंग १

तब श्रीआचार्यजी महाप्रभूनने कही ॥ जो कहूं श्रीठाकुरजीको स्वरूप होय सो देखो ॥ सो एक दरजी के यहां श्रीठाकुरजी को स्वरूप हतो ॥ ताको द्रव्य देके स्वरूप अपने घर ले आए॥ पांछें घर सब पोते ॥ पात्र सब बदलाये ॥ पाछें श्रीआचार्यजी ने वा स्वरूप को पंचामृत करवायो ॥ श्रीद्वारकानाथजी नाम धर्यो [+] ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

श्रीद्वारकानाथजी नाम यातें धर्यो जो राजरीतिसो प्रथम सेवाको विस्तार दामोदरदास के माथे सोंपे हे ॥

---

* સ્વયં અનુગ્રહબલે આપ કન્નોજ પધારી કોઈ પણ પ્રકા૦ રના જીવકૃત સાધનથી અપેક્ષા રાખ્યા વિના (સ્વયં સાધનરૂપ થઈ) દામોદરદાસને શરણે લીધા. અહીં પુષ્ટિનું નિરૂપણ છે. + શ્રીદ્વાર-

पाछें सिंहासन पाट बेठाए ॥ दामोदरदास के माथे सेवा पधराय के पाछें श्रीआचार्यजी आप रसोई

वार्ता करि के भोग समर्प्यो ॥ समयानुसार भोग सरायो ॥ तब बीडा समर्पन लागे ॥ तब देखें तो पान हरे हें। तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों खीजके कहें जो हरे पान श्रीठाकुरजी कों न समर्पिए ॥ उत्तम तें उत्तम सामग्री होइ सो श्रीठाकुरजी को समर्पिए ॥ श्रीठाकुरजी तो उत्तम तें उत्तम वस्तु के भोक्ता हे ॥

काथीशनी प्राकट्य वार्तामां आ प्रसंगनुं पाठांतर आ प्रमाणे छे:—तब आपने आज्ञा करी कि–तुम्हारे या गाम में एक विष्णुस्वामि संप्रदाय को शिष्य क्षत्री नारायगदर्जी है, वाके घर एक अति प्राचीन स्वरूप विराजे हे, सो पधराय लाओ ॥ तब शेठजी (दामोदरदास) ने कही, जेसी राज की आज्ञा हे वोही करूँगो । वे यह कहके दर्जी के यहां गए, रस्ता में जाते जाते मन में विचार्यो बडो आश्चर्य है कि इतने वर्ष सूँ मैं या गाम को रहिनेवारो ओर मोकूँ दर्जी के यहाँ की खबर नहि है, कौन है, कहाँ रहे है, यह विचारत घर पूछते पूछते पहूँचे । दर्जी कूँ खबर लगी कि प्रधान सेठ दामोदरदासजी आवे हैं ॥ सो वह अपने घर के द्वार पे हाथ मे नजराना लिये ठाडो भयो सो सेठजी कूँ देखतेई बहुत विनीत भाव सूँ हाथ बढाय के नजराना कियो । बहुत मंदवाणी सूँ प्रधान को स्वागत कियो । सेठजी ने नजराना नहि लियो × × × दर्जीने पूछयो–आज आप मेरे गरीब के घर कैसे आए ? × × × तब शेठजी ने कही–जिनको चंपारण्य में प्राकटय भयो हे वेही श्रीवल्लभाचार्यजी यहां पधारे हैं । उनने तुम्हारे पास मोकूँ भेज्यो है । तुम्हारे यहाँ, जो निधि बिराजे है उनकूँ पधरायवेकी आज्ञा करी है सो जो चहिये सौ तुम्हारो सब प्रकारको प्रबन्ध मैं राज्य की आडीसूँ

उत्तम तें उत्तम सामग्री होइ सो श्रीठाकुरजी को समर्पिए॥ ता पाछें स्त्रीपुरुष भली भांति सो सेवा करन लागे॥ सो श्रीद्वारकानाथजी की सेवा भली भांति सो होन लागी॥ ओर श्रीआचार्यजी नें आज्ञा दीनी॥ जो उतर्यो परकालो (वस्त्र को थान) होइ तामेते श्रीठाकुरजी को न समर्पिए॥ सारे परकाले मेते प्रथम श्रीठाकुरजी को लीजिये॥ ओर उत्तम सामग्री होइ तामें ते ओर ठोर न खरचिए॥ ता पाछे स्त्री पुरुष नीकि भांति सो सेवा करन लागे॥

कराय दउँ । × વિશેષ જુઓ કાંકરોલી વિદ્યા વિભાગ તરફથી પ્રગટ થયેલી "શ્રીદ્વારકાધીશની પ્રાગટ્ય વાર્તા"

શ્રીદ્વારકાનાથજી દરજીને કેવી રીતે પ્રાપ્ત થયા તે માટે બે મત ઉપલબ્ધ થાય છે. શ્રી દ્વા૦ ની પ્રાકટ્ય વાર્તામાં નિચે પ્રમાણે છેઃ—वा नारायण दरजी कूँ रात में स्वप्न भयो, तामें श्रीद्वारकाधीश ने आज्ञा करी कि–हमारो नाम द्वारकाधीश है और हम आवु पर्वत पे ऋषिन के आश्रम मे विराजे है तू भक्त है। तेरी श्रद्धा सूँ हम प्रसन्न होय कें तोकुं आज्ञा करे हैं कि अभी जो चंपारण्य में आचार्य जनगे हैं, उनके यहाँ हमकूँ पधारनो है, सो तेरे द्वारा हम पधारेंगे। तू यहाँ आबू आय के ऋषिन सूँ हमकूँ माँगके अपने घर ले जाव। (अष्टमोल्लास).

પછી દરજી આબુ જઈને રૂષીની પાસેથી સ્વરૂપ પધરાવી લાવ્યો છે–તે બધુ વૃતાંત્ત છે.

આ નારાયણ દરજીની વહૂનું નામ લક્ષ્મી અને બ્હેનનું નામ સરસ્વતી હતું. વિશેષ જુઓ "શ્રી દ્વા. ની પ્રાગટ્ય વાર્તા" "વિદ્યા વિભાગ કાંકરોલી" ની બીજો મત (પ્રાચીન પ્રતના આધારે):—

ओर सेवा सामग्री एसी होती जो सोने के कटोरा में अमरस राखते ॥ सो एसो उच्यताते सो ओर कोई न जाने जो यामें कछु सामग्री धरी हें ॥ या भांति सो दामोदरदास सेवा करन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

पाछे वस्त्रादिक की रीति बताए ।। जो ओर कार्य में कछु आयो होइ तो (सो बस्तु) श्रीठाकुरजीके काम न आवें ।। जाके अर्थ उठे ।। तिनको प्रसाद कहावे ॥ तातें पहले श्रीठाकुरजी को सब सामग्री में ते लेनो ।। श्रीठाकुरजी

सो दरजीने अपनो घर बनवायो ॥ द्रव्यमान हतो सो नींव में श्रीद्वारकानाथजी पधारे ।। प्रगटे ।। सो मर्यादा रीति सों दरजी पूजा करे ।। सो दामोदरदास के शरण आये पहले पांच वर्ष अगाऊ श्रीठाकुरजीने बिचार्यो जो ।। दामोदरदास सों पुष्टि रीति सों सेवा करावनी हे ।। तातें दरजी को सगरो धन नास कीए ।। दरजी के घर खानपान को कसालो भयो ।। तब दरजी को एक सैव मिलापी हतो ।। तासों दरजीने पूछी मेरो द्रव्य सगरो गयो ।। ठाकुर की पूजा हू करत हों सो कहा कारन ? ॥ तब सैव ने कहि तूं देवी की पूजा करे तो द्रव्य होइ ।। ठाकुर पूज्यो तातें निर्धन भयो ।। तब दरजी देवी को पूजन करन लाग्यो ।। श्रीठाकुरजी कों एक आलिया मे बेठाय राखे ।। सो कछू द्रव्य की प्राप्ति भई ॥ तब दरजी को विश्वास देवि पर भयो ।। मन में यह रहे जो कोई ठाकुर ले जाय तो आछो ।। सो दामोदरदास ने खबरि पाई तब कछूक द्रव्य दे के उह दरजी सों द्वारकानथजी कों लाये ।। ××××

આ લોકમત હોઈ લૌકિકી ભાષા છે એટલે ૭ સમાધિરૂપ

की सामग्री में ते अन्य ठोर खरच न करनो ॥ या प्रकार पुष्टिमारग की रीति सबकों बताए ॥

पाछें श्रीआचार्यजी पृथ्वी परिक्रमाको पधारे ॥ जीनके सामग्री पिरि सोने के पात्र में मिलि जाई ॥ उज्ज्वल सामग्री रूपे के पात्र में मिलि जाइ ॥ यह गूढ भाव जनाए ॥ सोने के मिष श्रीस्वामिनीजी के भाव ते रुपे के मिष श्रीचंद्रावलिजी के भाव सों सेवा करते ॥

इति प्र. १ समाप्त.

वार्ता प्रसंग २

ओर दामोदरदास श्रीठाकुरजी को जल आप भरतें ॥ सो एक दिन दामोदरदास को सुसर दामोदरदास के घर आईके दामोदरदास सों कहन लागे ॥ जो तुम जल भरि लावत हो ॥ सो हमकों जाति में लज्जा आवति हें ॥ तातें तुम जल मति भरो ॥ लोंडी पास जल भराओ ॥

तब दामोदरदास बिचारे जो सूरदासजि गाए हें ॥ “सूर भजन कलि केवल कीजे लज्जा कान निवारि” ओर कितन में गाए हें ॥ “कानन काहूकी मन धरीए व्रत अनन्य एक लहीए हो” यह बिचारी अस्त्री सों कहे तुमहू जल लेंन चलो ॥ तब दामोदरदासने दूसरे दिन एक घडा तो आपु लीयो ॥ एक घडा स्त्रीके हाथ में दीनो ॥ तब स्त्री भगवदी सो घडा (गागरि) ले ससुर (दामोदरदास के) हाट आगे

तें चले ॥ तब दोउ जने (फेर) वाकी हाटके नीचे होय के निकसे ॥ तब जल लेके आए ॥ तब पाछे दामोदरदास को ससुर आयो ॥ सो आइ के दामोदरदास के पाइन पर्यो ॥ ओर कह्यो जो में चूकयो ॥ जो तुमसों कह्यो ॥ अब ते तुमही जल भरो परि अस्त्री जन पास जल मति भरावो ॥ आज पाछे हम कछू न कहेंगे तब आपहि जल भरन लागे। श्रीठाकुरजी दामोदरदाससों सानुभावता जनावन लागे ॥ जो कछु चाहिये सो दामोदरदास पास मांगि लेइ ॥ वातें करे ॥ सेवा करि के दामोदरदासने श्रीठाकुरजी को एसे प्रसन्न कीये ॥ सो इनकी सेवा देखि के श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न भये ॥ तब आप अपने श्रीमुखते कहें ॥ जो जिन राजा अंबरीष न देख्यो होइ सो दामोदरदास को देखो राजा अंबरीष तो मर्यादामार्गीय हुतो। और ये पुष्टिमार्गीय हें ॥ इनमें इतनीं अधिकताइ हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

दामोदरदास जलकी सेवा श्रीयमुनाजी के भावतें करतें ॥ तातें श्रीआचार्यजी कहें ॥ मर्यादामें अंबरीष पुष्टि में दामोदरदास राजसेवा कीए ॥ तब तत-हरा रुपे के अंबरीष की उपमा केसे जानिए जेसें श्रीठाकुरजी की मुखकी उपमा चंद्रमाकी ॥ काहेतें कहां मर्यादा कहां पुष्टि? कोटि गुनो तारतम्य जाननो॥

जब दामोदरदासके सुसरने कही ॥ अस्त्रिसो जलमति भरावो

तब दासोदरदास कहे । जल न भरावेंगे ।। पाछे ससुर गयो ।। तब दामोदरदासनें बिचार्यो जो जलकी सेवा (स्त्री जनसें) कराई ।। सो जो अब में छुडांऊ तो मोकों ससुराकी का'नको दोष परे । परंतु एकवार बरजोंगो, प्रीति होइगी तो स्त्री आपुहि न छोडेगी ।। (यों बिचार के) जो एकवार भर्यो सो सोवार भर्यो अब गामके (लोग तो) जान चुके ॥ अब में सेवा क्यों छोडों ? ॥ प्रीति होइगी तो या भांति (बिचारके) भरेगी ॥ तातें में हठ करिके भराऊं तो प्रीति बिना श्रीठाकुरजी अंगीकार न करेंगे ॥ तातें एकवार बरजों तो सही ।। तब (स्त्री सों) कहें ॥ अब मेंही जल भरोंगो ।। तुम मति भरो ॥ तिहारे पिताको लाज लागत हे ॥ तब स्त्रीने कही तुमही भरो ।। या प्रकार पिताकी का'नको दोष भयो ।। सो आगें जाय के अन्याश्रय भयो ॥

जो दामोदरदास ससुरके आग्रह का'न तें जलकी सेवा छुडावते ।। तो इनहूंको बाधक होतो ।। तासों फेर सेवा करन लागे ॥

इति प्र. २ समाप्त.

वार्ताप्रसंग ३

ओर एक समें उष्णकाल के दिन हते ॥ तब दामोदरदास श्रीठाकुरजी को मंदिरमें पधराइ पोढाइके आप चोवारे जाइ सोये ।। तब श्रीद्वारकानाथजी ने लोंडी को आज्ञा दीनी जो तू किंवाड खोलि ॥ मोकों गरमी बोहात होत हें ।। तब लोंडीने मंदिर के किंवाड खोले ।। तब श्रीद्वा-रकानाथजी ने लोंडी सों कह्यो जो पंखा करि ॥ तब लोंडि

ने पंखा कीयो ॥ तब श्रीठाकुरजीने लोंडि सो कह्यो ॥ जो तू जा, रहन दे ॥ तब लोंडि किंवाड खुले छोडिके सोयवे गई ॥ तब सवारो भयो तब दामोदरदास देखे तो मंदिरके किंवाड खुले हें ॥ तब पूछे जो किंवाड कोन ने खोले हें ? तब लोंडि ने दामोदरदास सों कह्यो ॥ जो मोकूँ श्रीठाकुरजीने आज्ञा दीनी ही जो तू किंवाड खोलि ॥ तब मेने किंवाड खोले हें ॥ तब दामोदरदास ने कही जो मोसू खोलिवेकी क्यों न कही ? आप खोले ॥ फेर दामोदरदास के मनमें आई ॥ जो श्रीठाकुरजी नें मोसों किंवाड खोलिवेकी क्यों न कही ? ॥ और लोंडि सों क्यों कहे ॥ परि प्रभु बडे दयाल हें ॥ जाके विषे स्नेह होइ ॥ ताही सों संभाषन करे ॥ श्रीआचार्यजी के अंगीकार में सब समान हे ॥ लौकिक में कोऊ उंचनीच कहियो (परि) श्रीठाकुरजी स्नेह के बस हें ॥ पाछें श्रीठाकुरजीनें दामोदरदास सों कह्यो ॥ जो मेने खुलाए हें और इन (नें) खोले हें ॥ जो तू यासें क्यों खीझत हें ? तू तो चोवारे जाय सोयो ॥ और मोको भीतर सुवायो ॥ तब दामोदरदासने कह्यो जो प्रसाद तब लेहूँ (जब) मंदिर नयो समराउं ॥ तब स्त्रीनें कह्यो जो एसे क्यों बने ॥ यह तो कछु पांच सात दिनको तो काम नाहीं ॥ तब दामोदरदासने कह्यो ॥ जो सखडी महाप्रसाद तो नहीं लेउगो ॥ फलाहार करूंगो ॥ तब त्योंहि करत मंदिर सिद्ध भयो ॥ तब आछो दिन देखि के श्रीद्वारकानाथजीकों मंदिर में बेठाये ॥ तब बडो उत्सव कीयो ॥

पाछें सब वैष्णवनको महाप्रसाद लिवायो ।। ता पाछें आपु महाप्रसाद लीयो ।।

श्रीठाकुरजीने लोंडीकी पास पंखा कराए, परि स्त्रीकों नांहि जताए ॥ सोउ जलकी सेवा छोडि, तातें इनकों न कहे ॥ काहेतें पहले स्त्री जलकी सेवा न करती सो चिंता नांही ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

(सेवा) करि के छोरनो हतो तो दस पांच दिन जल भरिके ।। पाछें अपने मनतें न भरते तो चिंता नांहि ।। ससुरके कहेतें छोडे, तातें श्रीठाकुरजी लोंडी सों किंवार खोलाय पंखाकी सेवा कराए॥

ओर श्रीआचार्यजी की यह आज्ञा हें ।। जहां तांइ पूरन स्नेहको प्रकार हृदयारुढ न होई तहां तांई सेवा (यथा देहे तथा देवे) अपनी देहकों सीत उष्ण बिचारि कें करे ।। सो दामोदरदास चोवारें सोए ॥ श्रीठाकुरजी कों बियारि आयवेको मारग न हतो ॥ तातें मंदिर की रीति प्रगट कराइवेके लिए श्रीठाकुरजीने लोंडिसों किंवार खुलाए ॥

लोंडिको मानसि सेवाको अधिकार हतो ॥ अष्ट प्रहर गोप्य रीति सों मानसि करती ॥ कोई जानतो नांहि ॥ तातें श्रीठाकुरजी उह लोंडि के उपर बहोत प्रसन्न रहते ।।

जब दामोदरदास लोंडि पर खीजे ।। सो श्रीठाकुरजी सहि न सके ।। जो मोकों प्रिय हें ता पर खीझत हे ? ।। सो लोंडिकी पक्ष श्रीठाकुरजीने करी ।। तथा दामोदरदासको अपराध तें छोडाइवे कों बोले जो मेनें यासों खुलाए ।। तू क्यों खीझत हे ? आज पाछें या पर प्रीति

राखियो ॥ याको स्वरूप अलौकिक जानियो ॥ तूं जाय चोवारे पर सोयो ॥ मोकों बियारि आयवेकी ठोर नांही ॥ चित्रा सखि होइ अपनि सेवा भूलि गयो ? ॥ मंदिर संवारनो ॥ तब दामोदरदास चोंकि परे सो यह जो अपने स्वरूप को अनुभव भयो ॥ तब कहे मंदिर बने तब खानपान करूं ॥ यह टेक चित्राके आवेसमें कहे ॥ पाछें कारिगर बुलाय काम लगाए ॥ पाछें स्त्रीनें कही खानपान बिना केसें चलेगो ? एक दिन को काम नांही हे ॥ तातें खान पान बिना रह्यो न जायगो ॥ वह आवेस रहेतें ॥ तब खानपान मति करियो ॥ अब तो करो ॥ तब कहे फलाहार लेऊंगो ॥ या प्रकार मंदिर सवराए ॥ जारी झरोखा निज मंदिर तिवारी चोक टेरा परदा जेसें लीलासृष्टिमें करत हतें ताहि भाव सों सगरे मंदिरको ब्योंत कीए * ॥ मुहूरत देखि पधराए ॥ बडो उत्सव (कीयो) वैष्णवको समाधान श्रीआचार्यजीकी भेट काढे ॥

इति प्र. ३ समाप्त.

---

* આ પ્રસંગ લગભગ ૧૫૬૦–૬૫ માં બન્યો હોવો જોઈએ. આ પ્રસંગથી ઐતિહાસિક એક વસ્તુ એ જાણવાની મળે છે કે– શ્રીનાથજી નવા મંદિરમાં પધાર્યા પહેલાં આ મંદિર બન્યું છે કારણ કે અહીં લીલાસૃષ્ટિનો ક્રમ બતાવ્યો છે. પાછલથી બન્યું હોત તો શ્રીનાથજીના મંદિર અનુસાર બનાવ્યાનો ઉલ્લેખ અવશ્ય હોત. બીજી વાત આથી એ પણ સિદ્ધ થાય છે કે મંદિરનો તમામ પ્રકાર લીલા-સૃષ્ટિને અનુસાર જ આપણે ત્યાં બનેલો છે, પ્રાકૃત નથી. શ્રીઆ-ચાર્યજીએ સર્વ પ્રથમ શ્રીદ્વારકાનાથજીને ત્યાં રાજસેવા ચાલુ કરાવી છે.

वार्त्ता प्रसंग ४

बहुरि एक दिन दामोदरदास श्रीठाकुरजीको राजभोग समर्पि सय्या मंदिरमें सैया संभारन गए ॥ तब देखे तो दुलीचा उपर बिलाई ने बिगाड्यो हे ॥ तब दामोद्रदासने कह्यो जो श्रीठाकुरजी तो अपनी सैया हू राखि सकत नाही ॥ एसें कह्यो तब श्रीठाकुरजी ने थार चोकी उपरसूं लात मारि डारि दीनो ओर दामोदरदास सों श्रीठाकुरजीने कह्यो ॥ जो सेवक तू के सेवक में ? सेवक होइ के एसे बोलत हे ? एसे बहुत खीजे पाछें दामोदरदास ने बिनती कीनी ओर बहुत मनुहार करी ॥ सब सामग्री सिद्ध करि के श्रीठाकुरजी को भोग समर्प्यो ॥ श्रीठाकुरजी अरोगे ॥ परि तोहू दोय मास लों बोले नांहीं ॥ पाछे बहोत बीनती करन लागे ॥ तब बोलन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

.. श्रीठाकुरजीने राजभोगको थार लात मारि कें डारि दियो ॥ सो या भावतें जो श्रीआचार्यजीनें अबही दासभावको अधिकार दियो हें ॥ ओर यह हांसी तो सख्य भावको अधिकार भयो होइ तब ही बने ॥ तातें बिना श्रीआचार्यजीके दिए तू (तें) विशेष भाव कर्यो ॥ तातें तेरो धर्यो भोग नांही अंगीकार करूंगो ॥ या प्रकार शिक्षा कीए ॥ **तातें अधिकार बिना विशेष बिचार किए इतनो अंतराइ जताए वैष्णवकों ॥**

इति प्र. ४. समाप्त.

वार्ता प्रसंग ९

बहुरि एक समय दामोदरदास हरसानी इनके घर पाहूने आए ॥ सो संभरवारे के घर दिन पांच सात रहे ॥ तब इन बहुत भली भांति सो समाधान कर्यो ॥ पाछें दामोदरदास हरसानी इनसों बिदा होइ के अडेल आए ॥ तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों पूछे जो दमला, तू कहां उतर्यो हो ? कहा प्रसाद लीयो हो ? तब दामोदरदास हरसानी नें श्रीआचार्यजी सों विनती करी जो महाराज कन्नोज में दामोदरदास संभरवारे के घर उतर्यो हो ॥ अनसखडी महाप्रसाद लेतो ॥ तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास संभरवारे उपर अप्रसन्न भये ओर (मनमें–बिचारे जो) यह मेरो अंतरंग सेवक* याको सखडी महाप्रसाद क्यों न लिवायो ? यह वात श्रीआचार्यजी के मनकी दामोदरदास संभरवारेने घर बेठे जानी + ॥ जो

---

*દામોદરદાસ હરસાનીજી માટે શ્રીયદુનાથદિગ્વિજયમાં આ પ્રમાણે છે:—ततो वृद्धिनगरे कस्यचिच्छ्रेष्ठिनश्चत्वारस्तनयास्तेषां कनिष्ठो दामोदरो हरेर्लीलातो गुरोः सेवार्थमत्राऽवतीर्णो गुरोर्मार्गं प्रतीक्षमाणस्तं दृष्ट्वा दायं त्यक्त्वा समागतः पादयोर्निपतितो गुरुभिरंगीकृतो मन्त्रमालाभ्यां संस्कृतः सिद्धार्थो जातः ॥

+અહીં શંકા નહિ કરવી. કારણ કે દામોદરદાસ સંભરવાળા શુદ્ધ નિર્ગુણ ભક્ત છે. શ્રીમહાપ્રભુજી "પુષ્ટિપ્રવાહમર્યાદા"માં તે ભક્તોનાં લક્ષણ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે:—स्वरूपेणावतारेण लिंगेन च गुणेन च ॥ तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा ॥१३॥ પુષ્ટિપુષ્ટિભક્તો પણ સર્વજ્ઞ હોય છે તે માટે આપ આજ્ઞા કરે છે કે:—पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः તો શુદ્ધ પુષ્ટિજીવોનું તો કહેવુંજ શું ?

श्रीआचार्यजी महाप्रभु मेरे ऊपर अप्रसन्न भये हें ॥ तब स्त्रीसों कही जो तू श्रीठाकुरजीकी सेवा नीकी भांति सों करीयो ॥ ओर में तो श्रीआचार्यजी के दरशन कों अडेल जात हों ॥ तब दामोदरदास अडेल को चले ॥ सो अडेल जाइ पहोंचे ॥ तब श्रीआचार्यजी के दरशन कीये । साष्टांग दंडवत कीए ॥

तव श्रीआचार्यजी पीठ दे बेठे ॥ तब दामोदरदास संभरवारेने श्रीआचार्यजी सो बिनती करि के कह्यो जो महाराज मेरो अपराध कहा हे ? ओर जीव तो अपराध करत ही आयो हे ॥ परि अपराध कयों जानिए तो भली बात हे ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्या ॥ जो तेने दामोदरदास हरसानी को सखडी महाप्रसाद क्यों न लिवायो ? ओर अनसखडी प्रसाद क्यों लिवायो? तब दामोदरदास संभरवारेने श्रीआचार्यजी सें बिनती कीनी, जो महाराज, दामोदरदाससेंहि पूछिये ॥ तब श्रीआचार्यजीनें दामोदरदास हरसानी सें पूछी जो दमला तेने दामोदरदास संभरवारे के यहां सखडी महाप्रसाद क्यों न लीयो? तव दामोदरदासने कह्यो जो महाराज श्रीठाकुरजी प्रातःकाल बालभोग अरोगते सोई लेतो ॥ सो सखडी की रुचि रहती नाही तातें न लेतो ॥ तब श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो तू तो तेरी इच्छा ते न लेतो ॥ परि मोको तो याके उपर बडी खुनस भई हती ॥ सो भक्तन के अंतःकरण की भक्ति देखिवे को प्रभु को नाट्य हे ॥ काहें तें जो दामोदरदास संभरवारे ने कन्नोज में अपने घर बेठे श्रीआचार्यजी के अंतःकरन की

जानी ॥ सो श्रीआचार्यजी तो भक्त के हृदय में सदा स्थित हें ॥ वह भक्त हृदे की बात कहा न जाने ? परि भक्त परिक्षार्थ यह प्रभू को नाटय हे ।। पाछें दामोदरदास को बहुत सन्मान करि के श्रीआचार्यजी ने घर पठाये ।। तब दामोदरदास अपने घर कन्नोज आइ पहोंचे ॥ पाछें स्त्री पुरुष भली भांति सों सेवा करन लागे ॥

दामोदरदास हरसानी (संभरवारेके उपर कृपा करनके अर्थ) इन के घर पाहुने आए ॥ दामोदरदास संभरवारे तनुजा वित्तजा भलि:भांति सों राजसेवा करे हें ओर जो वैष्णव (इनके यहां होयके) श्रीआचार्यजीके दरसन को जाते तिन सबन संग न्यारि न्यारि भेट पठावते॥ वैष्णवको समाधान बहोत करते॥ खडियामें बिना कहें खरची वैष्णवको भरि देते ॥ सो श्रीआचार्यजीके आगें बडाई बहोत भई ॥ जो आवे सो (बडाई) करे ॥ तब श्रीआचार्यजीके मनमें यह आई जो हृदयके भीतरको भाव शुद्ध होइ तब काम होइ ॥ सो अन्याश्रय न होइ ॥ यह श्रीआचार्यजीके हृदयकी जानिके दामोदरदास हरसानी इनके यहां पाहुने आये॥ (कृपा करनके अर्थ) सो दामोदरदासके हृदयकी सगरी रीति आछी देखी, परंतु स्त्री में रंच पिताकी कानि जानि सखरी महाप्रसाद न लिये ॥ दिन पांच सात रहे ॥ परंतु अपने हृदयको अभिप्राय कछू दामोदरदाससों मारगकी वार्ता नांहि कहे ॥ पाछें श्रीआचार्यजी पास आए ॥ तब श्रीआचार्यजी

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पूछे कहांते आए ॥ तब बिनती करी जो दामोदरदास संभरवारेके यहां पाहुनें गयो हतो सो सखडी नांहि लियो अनसखडी लीयो ॥ यह कहिके यह जताए जो दामोदरदासको भाव दृढ हे ॥ तातें अनसखडि लीनी ॥ स्त्रीको भाव दृढ नांहि हे तातें सखडी (महाप्रसाद) नाहीं लियो× ॥ तब श्री आचार्यजी दामोदरदास संभरवारेके ऊपर अप्रसन्न भए ॥ **जो मेरे अंतरंग सेवककों पायके स्त्रीकूं अन्याश्रय सों न छुडायो ॥ फेर एसो समें कब पावेगो ?** सो यह बात श्रीआचार्यजी के हृदयकी संभरवारेने जानी ॥ स्त्रीकों पराश्रय हे तातें नांहि जानी ॥

इति प्र. ५ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ६

ओर सिंहनंद के वैष्णव श्रीआचार्यजी के दरसन कों जाते सो कन्नोज में दामोदरदास के घर उतरतें ॥ सो दामोदरदास सबन को प्रसाद लिवावते ॥ ता पाछे जब वैष्णव अडेलको बिदा होते तब जितने वैष्णव होते तिन सबन प्रति एक एक मोहोर एक एक नारियल श्रीआचार्यजी की भेट को पठावते ॥ काहेते ? जो मेरी दंडवत खाली हाथ केसे करोगे ? ॥ सो वे दामोदरदास एसे भगवदीय हे ॥

इति वार्ता प्र. ६ समाप्त ॥

× આથી એ અનુમાન થાય છે કે સખડીની રસોઇ સ્ત્રી કરતી હતી.

(या प्रसंग को भाव प्रसंग ५ के भाव में आय गयो हे)

वार्ता प्रसंग ७

ओर दामोदरदास को ससुर बहुत संपन्न हतो ॥ तिनने एक सो लोंडी बेटी के दायजे में दीनी हती * ॥ जो मेरी बेटी बेठी रहेगी ॥ ओर कामकाज सब लोंडी करेगी ॥ परि वह लोंडी पास काम न करावती ॥ सेवा संबंधी कार्य सब आपुही करती ॥ ओर लोंडी सब ओर कामकाज करती ॥ सो वह एसी भगवदीय ही ॥

इति प्र. ७ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ८

बहुरि एक समें श्रीआचार्यजी आप दामोदरदास संभरवारे के घर पोढे हते ॥ ओर दामोदरदास संभरवारे पांव दाबत हते ॥ तब श्रीआचार्यजी इनसों पूछे ॥ जो तोको तेरे मनमें काहू बात को मनोरथ हे ? ॥ तब दामोदरदास ने कह्यो जो महाराज मोको तो आप के अनुग्रह ते काहू बात को मनोरथ रह्यो नाहि ॥ तब श्री आचार्यजीने कह्यो ॥ जो तू जाइके अपनी स्त्री सो पूछी आउ ॥ तब दामोदरदास अपनी स्त्रीसो पूछी जो तेरे काहू बात को मनोरथ हे ? तब स्त्रीने

---

* આથી દામોદરદાસની સંપત્તિ કેટલી હશે? તેનું સહજ અનુમાન થઇ શકે છે. આ એક ઐતિહાસિક તત્ત્વ છે.

कह्यो जो ओर तो कछू मनोरथ रह्यो नांहीं ॥ एक पुत्र को मनोरथ हे ॥ तब श्रीआचार्यजी सो आइ के दामोदरदासने कह्यो जो महाराज स्त्रीको तो एक पुत्र को मनोरथ हे ॥ तब श्रीआचार्यजी आप श्रीमुख तें आज्ञा करे ॥ जो पुत्र होइगो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी आप श्रीनाथजीद्वार (जतिपुरा) पधारे ॥ ता पाछे समय भयो तब वाके गर्भ की स्थिति भई ॥ ता पाछे केतेक दिन में वा बाखरि में एक डाकोतिया आयो ॥ तब ताको सब स्मार्त्त की स्त्री पूछन लागी ॥ तब तामें ते काहूने दामोदरदासकी स्त्री सो कही ॥ जो अमूकी × तू हू पूछि, तेरे कहा होइगो ? पाछें एक लोंडिने जाइके वा डाकोतिया सों पूछी ॥ जो कहा होइगो ॥ बेटा होइगो के बेटी होइगी ॥ तब वा डाकोतियाने कह्यो ॥ जो बेटा होइगो ॥

ता पाछे केतक दिनमें श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे ॥ तब दामोदरदास चरन छुवन लागे ॥ तब श्रीआचार्यजी ने

× અમુકી શબ્દ યોજવાથી એ સ્પષ્ટ થાય છે કે દામોદરદાસની સ્ત્રીનું નામ ભગવત્સંબંધી અથવા યોગ્ય નહિ હતું, શ્રીગોકુલનાથજીની એક ખાસ ટેવ હતી કે ખરાબ નામનો ઉચ્ચાર ન કરતા. માટેજ કેટલીક વાર્તાઓ વિના નામની આવે છે. આ ભેદ શ્રીહરિરાયજીએ " एक क्षत्रानी प्रयागमें रहती " (वार्ता ४३) તેમાં આ પ્રમાણે કહ્યો છે:—अब जहां तहां नाम श्रीगोकुलनाथजी नांही कहे सो मातापिता हीन नाम राखे ॥ काहूको फकीरा घसीटा ॥ सो वैष्णव सों हीन नाम श्रीगोकुलनाथजी कहते नांहि ॥

कह्यो ॥ जो तू मोकों छुवे मति ॥ तोकों अन्याश्रय भयो हें ॥ तब दामोदरदासने कह्यो ॥ जो महाराज हेंतो कछु जानत नाहीं ॥ तब श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो तू अपनी स्त्रीकों पूछि तब दामोदरदास ने अपनी स्त्रीसो पूछी ॥ तब स्त्रीने जो प्रकार भयो हतो सो सब कह्यो ॥ सो सब बात दामोदरदासने श्रीआचार्यजी सों आय कही ॥ तब श्रीआचार्यजी दामोदरदास सों कहे ॥ जो पुत्र तो होइगो परि मलेछ होइगो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी आप अडेल पधारे ॥

पाछें यह बात दामोदरदासकी स्त्रीने सुनी तब तें श्रीठाकुरजीकी सामग्री तथा पात्र को आप स्पर्श न करती ॥ कहेती जो मेरे पेट में म्लेच्छ हे तो में श्रीठाकुरजी की सामग्री तथा पात्र केसें छूओं ? या भांति सा रहे ॥ पाछें जब प्रसूति के दिन आए॥ तब दामोदरदास की स्त्रि ने अपनी महतारी सो कह्यो जो मेरे पुत्र होइ तो होत मात्र ही तू तत्काल ले जैयो ॥ में वाको मुख न देखोंगी ॥ जो वाको महोडो हम देखें तो हमारो अनिष्ट होई ॥ तातें वाको महोडो नांहि दोखे एसो उपाइ तू करियो ॥ पाछें वाको महतारीने त्योंही कीयो ॥ प्रसूत होत मात्र तत्काल अपने घर ले गई ॥ सो धाइको देके वडो कीयो ॥ *

---

* આ પ્રસંગ સં. ૧૫૬૪-૬૫ લગભગ બન્યો છે. બીજી પરિક્રમાના અંતમાં

एक समें जब श्रीआचार्यजी कन्नोज पधारे तब दामोदरदास सौं आज्ञा करी कछू मनोरथ होइ सो मांगि ले ॥ या प्रकार फेरि दामोदरदास कौं परिक्षा किए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

जो स्त्रीकों पराश्रय हे ॥ ताके संगतें याहूकों पराश्रय होइ ॥ तो कछू वर दीजे ॥ इतने पुष्टिमार्गके फलसों रहित होइ ॥ परि दामोदरदास तो दृढ हे ॥ तातें कहे महाराज आपुके चरनारविंदकी सेवा मिली अब मोकों काहू बातको मनोरथ नांही हे ॥ तब श्रीआचार्यजीने दामोदर-दाससों कह्यो स्त्रीकों पूछी आव॥ यामें यह जानिए जो श्रीआचार्यजी दामोदरदाससों बोले परि स्त्रीसों कछू बोले नांही ॥ ओर स्त्री हू आप आय श्रीआचार्यजी सों बिनती नांही कीनी यामें यह जानिए जो (स्त्री) बहोत श्रीमहाप्रभुजीकी निकट हूं नांही आवती, ओर मनमें अन्याश्रय हतो ॥ तातें कह्यो एक पुत्र सेवा अर्थ होय ॥ सो यह विचार नांहि आयो ? जो पुष्टिमार्ग की सेवा मांगे ते मिले ॥ पुत्र को कहा प्रमान हे जो सेवा करेगो ? इतने यह वचनमें (श्रीआचार्यजीने जान्यो) जो मेरो आश्रय छूटचो॥ जाव पुत्र लेके सगरी भक्ति सकामी होइ गई ॥ ताते मुकुंददास * ने सप्तम स्कंधमें प्रह्लाद नृसिंहजी सौं

---

* આ મુકુંદદાસ તે દિનકરદાસના ભાઈ ૮૪ વાર્તામાં તેમની વાર્તા ૧૯ મી છે. તેમણે આખા શ્રીમદ્‌ભાગવતનો ભાષામાં પદ્યરૂપે અનુવાદ કર્યો છે અને તે "મુકુંદસાગર" નામથી પ્રસિદ્ધ છે. પરંતુ અત્યારે તે પ્રાપ્ત થતો નથી. તપાસ કરવાની જરૂર છે. તેમનો સમગ્ર ઇતિહાસ તેમની વાર્તામાં આપ્યો છે.

कहे हें ॥ "स्वामिसों निज अर्थ हि चाहें ॥ निंदन भक्ति अवगाहें ॥" स्वामीसों लौकिक वैदिक अपनो सुख कछू चाहे सो निंदत हे वाको भक्ति न मिले या प्रकार पुत्र दे आप श्रीगोवर्धनधर पास गिरिराज पधारे ॥ फेरि जब स्त्रीने अन्याश्रय कीयो तब आप कन्नोज पधारे ॥ ओर दामोदरदासकों चरन यातें छूवन नहिं दीये जो स्त्रीके हाथको खान पान दामोदरदासने कीयो हे ॥ तातें चरनपरस करिवेको अधिकार नांही हे ॥ यह दामोदरदासकुं जतायो ॥

तातें अन्याश्रय बराबरि दोष दूसरो नांही हे । जेसें एक पति छोडिकें दूसरो पति करे तब स्त्रीको सगरो धर्म जाइ ॥ ताहि प्रकार अन्याश्रय रंच करे तो वैष्णवको धर्म नाश होई ॥ यह सिद्धांत दिखाए ॥ फेरि स्त्रीको अनन्यता भई तातें श्रीठाकुरजीकी सामग्री सेवा परस नांहि करती ॥ तब वह अन्याश्रय पुत्र द्वारा हृदय तें निकर्यो ॥ काहेतें श्री भागवतमें कहे हें भक्त कों श्रीठाकुरजी बिना ओर ठौर ममत्त्व होई सो वस्तुकों श्रीठाकुरजी तत्काल नाश करे ॥ तब ज्ञान वैराग्य दृढ होइके आश्रय सिद्ध होइ ॥ भक्ति न होइ तो वस्तु गए ओरहू अन्याश्रय सदा करे ॥ सो स्त्रीकी पुत्रमें ममता देखि के नष्ट श्रीआचार्यजीने अपने जानिके किए ॥ तब स्त्रीकों ज्ञान भयो ॥ तब अपनि मातासों कहे ॥ जो में पुत्रको मुख न देखोंगी ॥ सो पुत्र होन समय नेत्रनसों पटी बांधि लीनी ॥ सो उनकी माता पुत्रको जन्मतही अपने घर ले गई ॥ तहां पुत्र वरस १० को व्हे पाछें म्लेच्छ भयो ॥ स्त्री पुरुष मन लगाइकें श्रीद्वारकानाथजी की सेवा करी ॥

इति प्र. ८ समाप्त.

वार्ता प्रसंग ९

बहुरी एक समय दामोदरदास की देह छूटी ॥ तब स्त्रीने घर में छिपाइ राखे ॥ पाछें वैष्णव सों कह्यो ॥ जो तुम एक नाव अडेल को भाडे करिलावो ॥ सो वैष्णव नाव भाडे करि लाए ॥ तो नावमें श्रीद्वारकानाथजी ओर घरमेंकी सब सामग्री त्रण पर्यंत कछु घरमें राख्यो नहि ॥ घरमें हतो सो सब नाव में धर्यो ॥ तब वैष्णवन सों कह्यो ॥ जो यह नाव अडेल ले जाउ ॥ सब श्रीआचार्यजी महाप्रभून के मंदिर में पहोंचाओ ॥ सो वैष्णव नाव लेके चले ॥ सो कोस तीस चालीस उपर नाव गई ॥ पाछें स्त्रीने प्रगट कीए ॥ जो दामोदरदास की देह छूटी हें ॥ तब वैष्णव सब आए ॥ संस्कार कीयो ॥ तब दामोदरदास को बेटा तुरक× भयो सो आयो ॥ सो आय के देखे तो घरमें कछू नाहीं ॥ जल को करवा भर्यो हे ॥ सो देखिके मूड पटकि रह्यो ॥ पाछें दामोदरदास को ससुर आयो ॥ तिननें बेटी सों कह्यो ॥ जो बेटी तेनें घरमें कछू राख्यो नाहीं ॥ जो अब तू कहा खायगी ? तब वानें कही जो तुम देउगे सो खाऊंगी ॥ क्षत्री लोगन के या समें सगे सहोदरे कछु देत हें ॥ एसी ज्ञाति की रीति हें ॥ तब दामोदरदास की स्त्रीने जलपान न कर्यो ॥ सो थोरेही दिन में देह छूटी ॥ कृति दोउन की साथ गई ॥ तब यह बात

× અહીં કર્મથી તુરક (મ્લેચ્છ) કહ્યો છે; જેમ રાવણ બ્રાહ્મણ હોવા છતાં રાક્ષસ કહેવાયો છે.

केतेक दिन पाछें काहू वैष्णवनें श्रीआचार्यजी आगे कही ॥ तब श्रीआचार्यजी नें कह्यो ॥ जो इनको एसोही चाहिए ॥ सो वे दामोदरदास तथा उनकी स्त्री ये दोउ श्रीआचार्यजी के सेवक एसे परम कृपापात्र भगवदीय हें ॥ तातें इनकी वार्ता को पार नाहीं ॥ सो कहां ताई लिखिए ?

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पाछें दामोदरदास की देह छूटी ॥ तब स्त्रीनै देह छिपाइ यातें राखे जो पुत्र म्लेच्छ हे ॥ सगरी वस्तु श्रीजी की हे सो ले जायगो ॥ तातें नाव भरि कें सब वस्तु श्रीआचार्यजी के यहां पहुंचाई ॥ जब कोस चालिस नाव गई तब स्त्रीने जाहेर कीयो ॥ ससुर आदि ज्ञाति के सबने दामोदरदास की देह को संस्कार कियो ॥ पाछें बेटा दोरि के आयो सो देखे तो माटी को करुवा जलसों भर्यो हे ॥ आर कछू हे नांहीं ॥ जब खबर पाइ तब नाव लेके दोर्यो ॥ परंतु पायो नांही ॥ तब माथो पीटि रह्यो ॥ यामें यह जतायो जो लौकिक होइ के अलौकिक वस्तू लेन को उपाय करे सो दुखही पावे ॥ परंतु हाथ लागे नांही ॥

ओर ससुरने कह्यो ॥ कछू राख्यो नांहीं ॥ अब तू कहा खायगी ? यह लौकिक पूछ्यो ॥ तब स्त्रीने अलौकिक बात कही जो अब तुम देउगे सो खाऊंगी ॥ या समें क्षत्री लोगन में सगे देत हें ॥ तासों निर्वाह करूंगी ॥ ताको अर्थ यह जो श्रीठाकुरजी पधारे सो सेवा बिना घरकी वस्तु कैसे लेऊं ?

(और) अलौकिक (जो में=अलौकिक स्वरूप भावना को) वस्तु के संग (श्रीआचार्यजी के यहां) गई ॥ सेवा बिना में लौकिक हों ॥ सो लौकिक सों निर्वाह करुंगी ॥ या प्रकार स्त्रीने हूं देह छोडि दियो ॥ क्रिया कर्म सब दामोदरदास के संग भयो ॥

इति प्र. ९ समाप्त.

---

* ॥ लोंडीकी वार्ता लिख्यते ॥

ओर वह लोंडी बडी भगवदीय हती ताकी वार्ता (विस्तार पूर्वक) नांहि लिखी ("वार्ता में") सो यातें ॥ (जो वो) श्रीजमुनाजी की सखी हे ॥ लीलामें इनको नाम कृष्णावेसनि हे ॥ सदा कृष्ण के स्वरूप को आवेस रहतो ॥ सो द्वापर में विदुरजी की स्त्री यह लोंडी हती ॥ सो श्रीठाकुरजी में अत्यंत स्नेह ॥ (सो इन्हीके लिए श्रीठाकुरजी) विदुरजी के घर बिना बुलाए जाते ॥ सो अब दामोदरदास के इहां आई ॥ सो लोंडी दामोदरदास के ब्याहमें आई ॥ याको पुष्टिसंबंध भयो ॥ मानसी में मगन रहती ॥

एक दिना दामोदरदास (कुँ) सेवा करतमें मनमें आई ॥ जो नकास में जाइ घोडा खरीदिए ॥ ताही समय एक वैष्णव दामोदरदास कों मिलन कों आयो ॥ तब लोंडी ने कही नकासमें घोडा खरीदन गए हें ॥ तब

* વૈષ્ણવ ૪. લોંડીનું સ્વરૂપ નિરોધલીલાત્મક છે અને માનસી સિદ્ધ હતી. તે સદેહે લીલામાં ગઈ તે વીર્ય ધર્મ પ્રકટ કર્યો. એથી આ વાર્તા વીર્યધર્મરૂપ જાણવી. ૯૬ વૈષ્ણવમાં આ ચોથા વૈષ્ણવની વાર્તા જાણવી.

वह वैष्णव चल्यो गयो ।। पाछें यह बात काहूने दामोदरदास सों कही ॥ जो तुम सेवा में हते (तब) लोंडी ने एसे कही ।। तब दामोदरदास लोंडी सों पूछि ॥ तब लोंडीने कही तिहारो मन वा समय कहां हतो ? जहां मन तहां देह जानियो ।। तब दामोदरदास चुप होइ रहे ।।

सो जब नावमें सगरी सामग्री धरी ॥ तामें सामग्री सदृश लोंडी हू हे ॥ सो वह नाव पर श्रीद्वारकानाथजी के संग गइ ॥ तब श्रीआ-चार्यजी सों वैष्णव ने आइ कही ॥ महाराज श्रीद्वारकानाथजी वैभव सहित पधारे हें ॥ ता समें श्रीगोपीनाथजी ठाडे हते ।। (तब) श्रीगोपीनाथजी कहे लक्ष्मीसहित नारायण पधारे (हें) ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ वैभव ठाकुरको देखि के तिहारो मन प्रसन्न भयो हे ? ॥ (तब) श्रीगो-पीनाथजी कहे **तिहारो कहाइके श्रीठाकुरजी की वस्तुमें अपनो मन करेगो ताको निरमूल नाश जाइगो** ।। तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ **हमारो मारग तो एसोई हे** ।। सो द्रव्य तें कछूक गोपीनाथजी प्रसन्न भए हते ॥ सो एक पुत्र भयो ॥ परंतु वंस नांही चल्यो ॥ पाछें श्रीआचार्यजी वैष्णव सों आज्ञा कीए ।। सगरि सामग्री श्रीजमुनाजी में पधराइ देउ ॥ श्रीद्वारिकानाथजी को हमारे घर पधराई लावो।। तब वह लोंडी हू सामग्री रूप हे ॥ सो देह सहित श्रीजमुनाजी पास चली गई ।। सगरी सामग्री श्रीजमुनाजीमें पधराई ॥ श्रीद्वारकानाथजी श्रीआचार्यजी के घर बिराजे ॥ यह लोंडी की अलौकिक बात हती ॥ सो लोगनमें विरुद्ध सी लागी ॥ तातें श्रीगोकुलनाथजी प्रकास नांही कीए ॥ सामग्री रूप कहें * ॥

---

* શ્રીઆચાર્યજીના નિર્ગુણભક્તમાં આ લોંડીની ગણત્રી છે.

पाछें काहू वैष्णवने श्रीआचार्यजी सों विनती कीनी महाराज सामग्री तो दामोदरदास की स्त्री वैष्णव ने पठाई ॥ सो आप अंगिकारि क्यों नांहि किए? ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे जो बेटा म्लेच्छ हे ॥ सुनके आवे झगरो करे ॥ द्रव्य दुःखको मूल हे ॥ दामोदरदास की स्त्रीने पठायो ॥ श्रीमहारानीजी (कों) अंगीकार हू करायो ॥ लौकिक झघरो हू मिटायो ॥ पाछें काहू वैष्णवनें स्त्री ने हू देह छोडि इनकी बात कही ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे स्त्रीपुरुष भले वैष्णव टेक के हते ॥

॥ वैष्णव ३ ॥ (गिनती लौंडि समेत वैष्णव ४)

પદ્મનાભદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને રહસ્યઃ-

આ સમગ્ર વાર્તામાં વીર્ય ધર્મનું નિરૂપણ છે. જેમ દેહમાં વીર્ય સાર છે તેમ પુષ્ટિધર્મમાં આ વાર્તા પુષ્ટિધર્મના સારરૂપ છે (જુઓ પ્ર૦ ૩ શ્રી હરિ૦ કૃત ભા. પ્રકાશ) પુષ્ટિજીવોનો ફક્ત એક જ ધર્મ છે. અને તે સર્વકાલમાં ભગવત્સુખાર્થે સેવા છે. પુષ્ટિસૃષ્ટિ કાયાથી ઉત્પન્ન થયેલી હોઈ તે ભગવત્સુખથી અતિરિક્ત કોઈ પણ ધર્મમાં પ્રવૃત્ત થાય જ નહિ. "आनदमात्रकरपादमुखोदरादिः" પુષ્ટિપ્રભુનું જ્યાં સુધી સાંગોપાંગ સ્વરૂપ જાણવામાં ન આવે ત્યાં સુધી કોઈ પણ વ્યક્તિ તે પ્રભુને સુખ કયા પ્રકારે થાય તે સમજી નજ શકે. તેમજ તેને માટે કોઈ પણ પ્રકારનું આચરણ કરી શકે નહિ.

તે ભાવાત્મક આનંદરૂપ પ્રભુનાયે "સારભૂત" આધિદૈવિક સ્વરૂપનું સાંગોપાંગ જ્ઞાન આજ સુધીમાં ફક્ત ત્રણ જ ભક્તોને પ્રાપ્ત થયું છે. તે "આનંદસારભૂત" શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ દિવ્ય અને મહાન્ અલૌકિક છે. તે સ્વયં કૃપા કરી સ્વાનંદનું દાન કરે તોજ

તે અનુભવી શકાય તેમ છે. "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्योः" એ શ્રુતિ અહિં પ્રમાણભૂત છે.

આ સ્વરૂપનો પૂર્ણ અનુભવ દામોદરદાસ હરસાની, પ્રભુદાસ જલોટા અને પદ્મનાભદાસને જ થયો છે. આ મહાન્ અલૌકિક "સુધા" સ્વરૂપના પાનમાં કોઈનો યે પ્રવેશ નથી.

પદ્મનાભદાસજી સ્વયં વર્ણન કરે છે કે;–" तहां प्रवेश द्वे भ्रमर को दामोदर प्रभुदास"

આ સ્વરૂપનો અનુભવ શ્રીમદાચાર્યચરણની પૂર્ણ કૃપાથી જ પ્રાપ્ત થાય છે, અન્યથા નહિ જ.

જુઓ પદ્મનાભદાસજી કહે છે કેઃ--

दमला प्रभुदास बडभागी तिनको पुन पुन आप सिखावे ॥

યદ્યપિ પદ્મનાભદાસે પોતાને માટે કંઈ પણ વર્ણન નથી કર્યું તો પણ તેમના ૪૦ પદોથી આપણે જાણી શકીએ છીએ કે તેમને પણ આ સ્વરૂપનો અનુભવ હતો.

પદ્મનાભદાસના પદોમાં શ્રીઆચાર્યજીના સાતે સ્વરૂપ (જુઓ "વાર્તારહસ્ય") ની ઓતપ્રોતતા અને તેના પૂર્ણ અનુભવનું વર્ણન સ્પષ્ટ તરી આવે છે. તેની અત્યંત સૂક્ષ્મ ઝાંખી અહીં કંઈક કરાવીએ છીએઃ--

પદ ૧ श्रीलक्ष्मनसुत ने कहू गावे ॥

दमला प्रभुदास बडभागी तिनकों पुन पुन आप सिखावे ॥
प्रेमविवश होइ श्रीवल्लभ प्रभु नेन सेनमें अर्थ जनावे ॥
प्रकट प्रसिद्ध यशोदानंदन रसिक शोभामय सकल जनावे ॥
वृंदावन रमणीक रमण अति उर संपुटकी कोउ न पावे ॥
पद्मनाभ गिरिधररसलीला वेणुनादकी बतियां भावे ॥

पंक्ति १ लक्ष्मनसुत त्यां આચાર્યસ્વરૂપનું વર્ણન છે.

,, ૨-૩ માં વલ્લભસ્વરૂપ (લીલામધ્યપાતી દાસ્યભાવનું શેષ માહાત્મ્ય સ્વરૂપ) નું વર્ણન છે. (જુઓ દામો૦ હર૦ ની વાર્તા પ્ર૦ ૧નું પરિ૦ રહસ્ય)

,, ૪ માં ભગવદ્‌ભાવરૂપ શ્રીકૃષ્ણ સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન છે.

,, ૫ માં સ્વામિનીભાવ રૂપનું વર્ણન છે.

,, ૬ માં સુધાસ્વરૂપનું વર્ણન છે.

આ પુસ્તકમાં આપેલા "વાર્તા-રહસ્ય" અને શ્રીહરિરાયજીના ભાવાત્મક લેખનું મનન કરવાવાળાઓ ઉપર્યુક્ત સ્વરૂપોનો સહજમાં અનુભવ કરી શકે તેમ હોવાથી અહીં વિસ્તાર નથી કર્યો, જેમ ગંગાના ભૌતિક પ્રવાહસ્વરૂપમાં આધ્યાત્મિક અને આધિદૈવિક સ્વરૂપની સ્થિતિ રહેલી છે (જુઓ "વાર્તા-રહસ્ય") તેમ આચાર્ય સ્વરૂપમાં જ આ સાતે સ્વરૂપોની સ્થિતિ છે, અને તે તદ્રૂપ છે. માટે શ્રીઆચાર્યચરણનો દેહ અલૌકિક અને આનંદરૂપ નિત્ય છે.

દૃષ્ટાંત રૂપેઃ—ભગવદ્‌વિગ્રહ (મૂર્તિ-સ્વરૂપ) માં મર્યાદારૂપે (મંત્ર વિધિ આદિથી) અને પુષ્ટિ રૂપે (ભાવથી) સાક્ષાત્ પ્રભુનો આવિર્ભાવ રહે છે. તદ્વત્ અહીં સમજવું.

પદ ૨ श्रीमद्वल्लभरूप सुरंगे ।

अंग अंग प्रति भावनके भूषन वृंदावन संपति अंगअंगे ॥

चटक मटक गिरधरजूकी नांइ एन मेन व्रजराज उछंगे ॥

पद्मनाभ देखे बनि आवे सुधि रही रसाल भ्रुवभंगे ॥

આ પદમાં પ્રથમ બે પંક્તિઓમાં શ્રીઆચાર્યજીનું ભાવરૂપ વિપ્રયોગાત્મક શૃંગારરસ સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન છે-(જેને કૃષ્ણાસ્ય કહેવામાં આવે છે જુઓ "વાર્તા-રહસ્ય") અને નીચેની બે પંક્તિમાં

શ્રીઆચાર્યજીનું ભાવરૂપ સંયોગાત્મક શૃંગારરસસ્વરૂપનું વર્ણન છે.* (જે ભગવદ્ભાવરૂપ આનંદમાત્રકરપાદમુખોદરાદિરસસ્વરૂપ છે) અહિં સ્થલ સંકોચથી અન્ય પદો નથી આપતા.

આથી આપણે જાણી શકીએ છીએ કે:—પદ્મનાભદાસનો પણ "આનંદસારભૂત" શ્રીઆચાર્યજીના સુધા આદિ સાતે સ્વરૂપમાં પૂર્ણ પ્રવેશ છે. દામોદરદાસ અને પ્રભુદાસે આ સ્વરૂપને કેવલ હૃદયમાં જ અવગાહ્યું. જ્યારે પદ્મનાભદાસજી એ સ્વજનોના હિતાર્થે કીર્તનરૂપે બાહ્ય પ્રગટ કર્યું. પદ્મનાભદાસ શ્રીમથુરેશજીમાં શ્રીઆચાર્યજીના જ સ્વરૂપની ભાવના કરતા. (જુઓ પ્રસંગ ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય)

જેવી રીતે પદ્મનાભદાસ પુષ્ટિપ્રભુના (આનંદરૂપના) સારભૂત આધિદૈવિક સ્વરૂપમાં મગ્ન હતા તેવી જ રીતે પુષ્ટિધર્મના પણ સારભૂત શ્રીઆચાર્યચરણના સુખમાં સદા નિમગ્ન રહેતા (જુઓ પ્રસંગ ૩)

આ રીતે આ વાર્તા વીર્યધર્મરૂપ કહી.

બીજા પ્રકારે આ પદ્મનાભદાસની વાર્તા પુષ્ટિના આશ્રયરૂપ છે. એટલે તે શ્રીઆચાર્યજીના આશ્રયરૂપ છે. એટલે તે શ્રીઆચાર્યજીના વામ શ્રીહસ્તસ્વરૂપ છે (જુઓ "વાર્તારહસ્ય") શ્રીઆચાર્યજીનું વામ અંગ ભાવાત્મક વિપ્રયોગરૂપ છે અને દક્ષિણ અંગ સંયોગાત્મક છે. (આ સંપ્રદાયની પરપરાગત ભાવના છે) ગદાધરદાસની વાર્તા (પુષ્ટિ) ઊતિ સ્વરૂપ હોઇ શ્રીઆચાર્યજીના દક્ષિણ શ્રીહસ્તસ્વરૂપ છે તે તેમની વાર્તામાં સમજાવ્યું છે. પદ્મનાભદાસની વાર્તાનું આશ્રયસ્વરૂપ (વામ શ્રીહસ્તરૂપ) ગદાધરદાસની વાર્તામાં સમજાવ્યું છે.

---

* શ્રીઆચાર્યજીના રસ સ્વરૂપનું વિશેષ વર્ણન જોવું હોય તો જુઓ શ્રીહરિરાયજીકૃત "रसात्मकभावस्वरूपनिरूपणम्"

શ્રીઠાકુરજીમાં શ્રીઆચાર્યચરણ (વિપ્રયોગાત્મરૂપ)ની ભાવના કરી સેવા કરનાર ચોર્યાશી વૈષ્ણવોમાં પાંચ જ વૈષ્ણવો છે. ૧ પદ્મનાભદાસ, ૨ શેઠ પુરુષોત્તમદાસ ૩ એક ડોકરી મહાવનની (જેને શ્રીજમનાજીમાંથી ચાર સ્વરૂપ પ્રાપ્ત થયાં તે) ૪ પ્રભુદાસ જલોટા ૫ અને મહાનુભાવ પરમ ભાગ્યવાન રજો ક્ષત્રાણી. આ પાંચે ભક્તોમાં પદ્મનાભદાસે પોતાનો અનુભવ પ્રકટ કર્યો. અન્ય ચારે ગુપ્ત અનુભવ્યો. શ્રીઠાકુરજીમાં શ્રીઆચાર્યચરણની ભાવનાથી સેવા કરવી તે આ વાર્તાનું રહસ્ય છે–(વિશેષ જુઓ પ્રસંગ ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય)

ત્રીજા પ્રકારે આ વાર્તા પુષ્ટિના ધર્મી રૂપ છે. કારણ કે સર્વ ધર્મમાં વીર્યધર્મ મુખ્ય છે માટે આ વાર્તામાં છએ ધર્મોનું આ પ્રમાણે નિરૂપણ છેઃ—

પ્રસંગ ૧ માંઃ—**શ્રી ધર્મનું** નિરૂપણ.

સ્વામીની આજ્ઞાનો પૂર્ણ વિશ્વાસ તે શ્રી ધર્મ (જુઓ કૃષ્ણદાસ મેઘનની વાર્તા) " **श्रियो हि परमा काष्ठा** " इति वचनात्

તે પદ્મનાભદાસે શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞાને અનુસાર વૃત્ત્યર્થ ભાગવતની કથા જીવન પર્યંત ન કહી. અનેક કષ્ટ સહન કર્યાં. આવી રીતે સ્વામીની આજ્ઞાનો વિશ્વાસ.

પ્રસંગ ૨ માંઃ—**પુષ્ટિધર્મનું પણ તત્ત્વ શ્રીઆચાર્યજીનું સુખ વિચારવું** તે સ્પષ્ટ દેખાડયું. અહીં પણ **શ્રીધર્મ** (શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞાનો વિશ્વાસ) કહ્યો.

પુષ્ટિધર્મના સારભૂત શ્રીઆચાર્યજીનું સુખ વિચાર્યું, અને અકિંચન હોવા છતાં શ્રી જે લક્ષ્મી (૧૭૦૦૦ રૂપીઆ) વિના વિલંબે પ્રાપ્ત થઈ. અહિ પણ **શ્રીધર્મ** જાણવો. અને રાજાના પ્રસંગમાં **ઐશ્વર્ય** જાણવું. મૂઢ પુરુષોમાં પણ પોતાની વાણીના પ્રભાવથી રસ (વીરરસ) ની ઉત્પત્તિ કરી **મુગ્ધ કર્યા.**

પ્રસંગ ૪ માંઃ— **વીર્ય ધર્મનું નિરૂપણ.**

શ્રીપ્રભુમાં એવો દૃઢ સ્નેહ કે લોકવ્યવહાર અનેવેદધર્મનું ઉલ્લંઘન કર્યું. જાતિ બધી ઝખમારી રહી. (વિશેષ જુઓ તે પ્રસંગ નીચેની નોટ)

પ્રસંગ ૫ માં:—**યશ ધર્મનું નિરૂપણ**

પોતાના ચરણોદકથી પુત્ર આપ્યો.

પ્રસંગ ૬ માં:—**વૈરાગ્ય ધર્મનું નિરૂપણ**

શ્રીઠાકોરજીના લુંટમાં પધારવાથી સાત દિવસ સુધી દેહાધ્યાસનો ત્યાગ કર્યો. અન્ન જલ કંઈ પણ ન લીધું. અહીં **ઐશ્વર્ય પણ** નિરૂપેલું છે

મુગલાની જે પરધર્મી અને નિર્દય તેના હૃદયમાં પૂજ્યભાવ થવો તે ઐશ્વર્ય.

પ્રસંગ ૭ માં:—શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપનું **જ્ઞાન** છે (વિશેષ જુઓ પરિશિષ્ટ રહસ્ય)

अब श्री आचार्यजी महाप्रभून के सेवक पद्मनाभदास कन्नोजिया ब्राह्मण कन्नोज में रहते तिनकी वार्ता ॥

वार्ता प्रसंग १

सो प्रथम पद्मनाभदास व्यासासन बेठते ॥ सो कन्नोज में आप अपने घर कथा कहते ॥ ऊंचे आसन बेठते ॥ काहूके घर जानो न परतो ॥ वृत्ति घर बेठे चली आवती ॥ या भांति रहते ॥ सो एक समय श्रीआचार्यजी आप कन्नोज पधारे ॥ तब पद्मनाभदास दरसन को आए ॥ तब पद्मनाभदासने श्रीआचार्यजी महाप्रभू के श्रीमुखतें भगवद्वार्ता को प्रसंग सुन्यो ॥ तब जानी जो ए साक्षात ईश्वर हें ॥ श्रीपूर्ण पुरुषोत्तम यही हें ॥ सो पुरुषोत्तम जानि के पद्मनाभदास श्रीआचार्यजी की शरण आए ॥ नाम पायो ॥ पाछे समर्पन

करवायो ॥ पाछे उत्थापन के समें श्रीआचार्यजीने पोथी खोली ॥ तहां दामोदरदास संभरवारे के घर बिराजे हते ॥ सो पद्मनाभदास आपनें घर तें आये श्रीआचार्यजी को दंडवत करिके बेठे ॥ तब श्रीआचार्यजी नें निबंध को श्लोक कह्यो ॥ सो श्लोक ॥

"पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतुविवर्जितम् ।
वृत्त्यर्थं नैव युंजीत प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥१॥
तदभावे यथैव स्यात् तथा निर्वाहमाचरेत् ।
त्रयाणां येन केनापि भजन् कृष्णमवाप्नुयात् ॥२॥

यह श्लोक पढे ॥ सो पद्मनाभदासजी ने अंजुली भरि के संकल्प कीयो ॥ जो कथा कहि के वृत्ति न करूंगो ॥ एसे श्रीआचार्यजी के आगे संकल्प कीयो ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ जो श्रीभागवत वृत्त्यर्थ न कहनो ओर तो तुम्हारी वृत्ति हे ॥ तुम ब्राह्मण हो ॥ तातें ओर महाभारत इत्यादिक तो कहनो ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो महाराज अब तो संकल्प कीयो सो तो कीयो ॥ ताते कछू न कहनो ॥ तब श्रीआचार्यजीने कही जो तुम तो गृहस्थ हो ॥ कोन भांति सो निर्वाह करोगे ? तब पद्मनाभदास नें श्रीआचार्यजी सों कह्यो ॥ जो श्रीभागवत वृत्त्यर्थ न कहूंगो ॥ ओर जिजमान के घर वृत्ति कर लाऊंगो ॥ तातें निर्वाह करूंगो ॥ पाछे जिजमान के घर वृत्त्यर्थ गए ॥ तिनने बहुत

आदर कीयो ॥ तब पद्मनाभदास के मनमें ग्लानी आई ॥ जो पहिले तो कबहू भिक्षा करी नाहीं ॥ अब वैष्णव भये पाछे भिक्षा मागन निकस्यो ॥ सो उचित नाहीं ॥ पहले तो उपवीत गरे में हतो ॥ ताकों तो उचित हे जो भिक्षावृत्ति करें ॥ परि अब तो गरेमें माला पहरी ॥ ताको तो यह भिक्षा वृत्ति उचित नाहीं ॥ तब फेरि संकल्प कीयो ॥ जो भिक्षावृत्ति न करूंगो* ॥ तब फेरि श्रीआचार्यजी ने पूछी जो अब निर्वाह केसे करोगे ? ॥ तब पद्मनाभदास नें कही जो वैश्यवृत्ति करि निर्वाह करूंगो ॥ पाछें कोडी बेचते लकडी ले आवते ॥ परि ओर बात न विचारी ॥ या भांति देहादि पर्यंत सेवा कीनो ॥ एसे टेकी ॥

इति प्र. १ समाप्त ॥

---

*તે વખતે પદ્મનાભદાસે આ પદ ગાયું:—

जाचों जाय कोनके घरपें श्रीवल्लभसे पाय धनो।

× + × ×

છેલ્લી લીટી पद्मनाभप्रभु विलोक वागधीश मिट गये रबि सुत त्रास रनी ॥

નોંધઃ—કવચિત્ આ પદના અંતે કુંભનદાસની છાપ પણ જોવામાં આવે છે. પરંતુ વાક્યરચનાભાવ અને સંગતિ પદ્મનાભદાસનાં અન્ય પદો સાથે ચોક્કસ મળતી હોવાથી આ પદ્મનાભદાસ કૃત પદ છે તેમાં જરાય સંશય રહેતો નથી.

પદ્મનાભદાસનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ—

પદ્મનાભદાસનો જન્મ સંવત ૧૫૨૦ માં કન્નોજ ગામમાં એક કનોજીયા બ્રાહ્મણને ત્યાં થયો હતો. પદ્મનાભદાસના પિતા એક સુપ્રસિદ્ધ ભાગવતકથાકાર હતા. તેઓ ભાગવતને પોતાના ઇષ્ટદેવ તરીકે ગણી, નિત્ય શ્રીમદ્‌ભાગવતનું પૂજન કરતા, ભોગ ધરતા અને પ્રેમપૂર્વક આરતી ઉતારતા. પદ્મનાભદાસના પિતા લગભગ ૪૦ વર્ષના થયા ત્યાં સુધી તેઓને કોઈ સંતતિ ન હતી.

એક સમય તેઓ "નૈમિષારણ્ય"માં ગયેલા, ત્યાં તેઓને રાત્રે સ્વપ્નમાં ભગવદાજ્ઞા થઈ કે અહીં તમે દુગ્ધપાન કરી એક શ્રીમદ્‌ભાગવતની સપ્તાહ કરો. તમારે ત્યાં એક હરિભક્ત પુત્ર થશે. આજ્ઞાનુસાર તેઓએ એક સપ્તાહ કરી. પછી તેઓ કન્નોજ આવ્યા. ત્યાં તેઓને સમયાનુસાર એક સુંદર પુત્રરત્નની પ્રાપ્તિ થઈ. અને તે પુત્રનું નામ તેઓએ "પદ્મનાભ" રાખ્યું.

પદ્મનાભ બહુ જ સુંદર તેજસ્વી અને અત્યંત તીવ્ર બુદ્ધિના હતા. નાનપણથીજ તેઓ અન્ય રમત ગમતને ત્યજી શાસ્ત્રના અભ્યાસમાંજ મગ્ન રહેતા.

લગભગ ૧૫૪૦ સુધીમાં તો તેઓએ મોટી મોટી સભાઓમાં જઈ શાસ્ત્રાર્થ કરવા શરૂ કર્યા. અને થોડાજ સમયમાં અત્યંત પ્રસિદ્ધિ પ્રાપ્ત કરી. તેઓ એટલા બધા પ્રસિદ્ધ થયા કે મોટાં મોટાં રાજ્યોમાં તેઓનું આદર સન્માન થવા લાગ્યું.

જ્યારે તેમના પિતા હરિશરણ થયા. ત્યારે તેઓએ પિતાનું સુપ્રસિદ્ધ વ્યાસાસન સંભાળ્યું. અને ત્યારથી તેઓ કથા કહેવા લાગ્યા. તેઓની કથા કહેવાની શૈલી એટલી સુંદર હતી કે અનેક ગામોના લોકો દૂર દૂરથી સાંભળવા આવતા અને મુગ્ધ થતા. જેથી તેમનો પૂર્ણ યશ સર્વત્ર પ્રસરી ગયો. આથી તેમને આજીવિકા ઘર બેઠે આવતી. વળી તેઓને એક નિયમ એવો હતો કે અધિક માસમાં

પૂર્ણ ભક્તિથી કેવળ દુગ્ધપાન કરીનેજ શ્રીમદ્‌ભાગવતનું પારાયણ કરતા. આ પ્રકારે કેટલાંક વર્ષો તેઓએ વ્યતીત કર્યાં.

સંવત ૧૫૫૨ લગભગ શ્રીઆચાર્યજી કન્નોજ પધાર્યા તે અરસામાં પદ્મનાભદાસ શ્રીઆચાર્યજીના દિગ્વિજયનો યશ સાંભળી દામોદરદાસને ત્યાં દર્શનાર્થ ગયા. ત્યાં પદ્મનાભદાસે શ્રીઆચાર્યજીના શ્રીમુખથી શ્રીમદ્‌ભાગવતના કેટલાએક પ્રસંગો શ્રવણ કર્યા. તરતજ તેમને શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપનું જ્ઞાન થયું, અને તેઓ સહકુટુંબ સેવક થયા. (પછીનો બધો પ્રસંગ વાર્તામાં જુઓ.)

પછી શ્રીઆચાર્યજી સાથે તેઓ વ્રજમાં આવ્યા ત્યાં સં. ૧૫૫૬ ના ફાગણ સુદ ૭ ના દિવસે કર્ણાવલમાં શ્રીમથુરેશજીને પધરાવી પાછા કન્નોજ આવ્યા. ત્યાં માહાત્મ્યજ્ઞાનપૂર્વક સેવા કરવા લાગ્યા. તે વખતે તેમને શ્રીઠાકુરજી સાનુભાવ થયા. તેમની કવિત્વશક્તિ પાછલથી આવિર્ભાવ પામી તેમણે અનેક પદો શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીઠાકુરજીનાં કર્યાં છે.

તેમનાં રચેલાં ૪૦ પદો વિદ્વાનોના અભિમાનને પૂર્ણતયા ચૂર્ણ કરે એવાં છે. ભગવત્કૃપા વિના સમજમાં આવે તેમ નથીજ. તે પદોદ્વારા સારી રીતે સમજી શકાય છે કે યદિ શ્રીઆચાર્યજીનું નિગૂઢ ભાવાત્મક સ્વરૂપ દામોદરદાસ અને પ્રભુદાસથી અતિરિકત કોઈએ પૂર્ણતયા જાણ્યું હોય તો એક પદ્મનાભદાસે જ અને "निगूढहृदयोनन्यभक्तेषु ज्ञापिताशयः।" આ શ્રીઆચાર્યજીનું નામ પણ અહિંજ (આ વાર્તામાં) વિશેષતયા સાર્થક દેખાય છે.

પદ્મનાભદાસજીની ભૂતલસ્થિતિ તેમના આ પદથી ચોક્કસ થઈ શકે છેઃ—

मधुर व्रजदेश वश मधुर कीनो।

मधुर गोकुल गाम मधुर वल्लभनाम मधुर विट्ठल भजन दान दीनो॥

मधुर गिरिधर आदि सप्ततनु वेणुनाद सप्त रंध्रन मधुररूप लीनो।

मधुर फलफलित अति ललित **पद्मनाभप्रभु** मधुर अलि गावत **सरस रंग भीनो** ॥ (બીજું પણ સાત બાલકોના નામનું એક પદ છે) એથી સ્પષ્ટ છે કે સાતે બાલકોના પ્રાકટ્ય સુધી પદ્મનાભદાસ વિદ્યમાન હતા. અને સાતમા બાલક શ્રીઘનશ્યામજીનું પ્રાકટ્ય ૧૬૨૭માં છે. (सह कृष्ण तेरस रविज रिक्ष शत कला श्रीविट्ठल भूप के (મૂલ પુરુષ) એટલે પદ્મનાભદાસની સ્થિતિ ૧૬૩૦ સુધી ચોક્કસ છેજ એ નિર્વિવાદ સિદ્ધ થાય છે. પદ્મનાભદાસનો કાવ્યરચનાકાલ. લગભગ સંવત ૧૬૦૦ નો અનુમાન થઈ શકે છે.

सो पद्मनाभदास चंपकलता सखि हे ॥ श्रीस्वामिनीजीकी ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैविक स्वरूप (जन्म ३) प्र० १ पें भावप्रकाश ओर श्रीमथुरेशजीके प्रागट्यको प्रकार

जब पद्मनाभदासने श्रीआचार्यजीसों बिनती करी जो हम ब्राह्मण हे ॥ भिक्षावृत्ति करेंगे ॥ यह टेक देखि श्रीआचार्यजी बहोत प्रसन्न भए ॥ (ओर कह्यो) **जो वैष्णवको टेक हि बडो धर्म हे ॥**

पाछें पद्मनाभदासके सगरे कुटुंबको (जब) अंगीकार कीए ॥ तब पद्मनाभदासने कही महाराज हमकों कहा कर्तव्य हे? ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे भगवद्सेवा करो ॥ तब पद्मनाभदासने कही ॥ महाराज मैंने तो पुराण महाभारत आदि शास्त्र बहोत देखे हें ॥ सो मोकों श्रीठाकुरजीके स्वरूपमें विश्वास आवनो कठिन हे ॥ जो स्वरूपको माहात्म्य प्रगट होतही देखूं तब मेरो विश्वास दृढ होइ ॥ काहेतें विश्वासही फलरूप हे ॥ (विश्वासः फलदायकः) तब श्रीआचार्यजी कहें

हमारे संग व्रज चलो ॥ तुमकों (माहात्म्य) दिखावेंगे ॥ तब पद्मनाभदास व्रजकूं चले ॥ सो महावन के पास रमनस्थल है ॥ तहां श्रीजमुनाजी के किनारे (सामने पार कर्णावलमें) श्रीआचार्यजी बिराजे हते ॥ प्रातःकाल समय हे ॥ ओर श्रीजमुनाजीको कराडो टूटचो ॥ तामेंते एक भगवत्स्वरूप जेसें ताडको वृक्ष (होय) इतने बडे, श्रीआचार्यजी के आगें आइ कहें ॥ मेरो सेवा करो* तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ महाराज या कालमें वैष्णवकी सामर्थ्य नांही ॥ जो आपुकी सेवा श्रृंगार करे ॥ सेवा कराइवे को मनोरथ होइ तो भक्तनसों पधराए जाय (एसे) गोदसें बेठो ॥ तब सेवा होई ॥ तब छोटो स्वरूप करि श्रीआचार्यजी के चिबुकसों मस्तक ठाकुरजी को लग्यो ॥ इतने बडे भए ॥ सो स्वरूप श्रीयमुनाजी गिरिराज सखा सखी गांऊ कुंज चोरासी कोस सगरो स्वरूपात्मक चिह्न सहित हे ॥ तातें श्रीआचार्यजीने श्रीमथुरानाथजी नाम करे ॥ (ओर) पद्मनाभदासकों कहे ॥ क्यों तेरो मनोरथ भयो ? तब पद्मनाभदास प्रेममें विह्वल होइ कहें ॥ महाराज आपु सरिखे मेरे धनी हो ॥ आपकी कृपातें कहा न होई ? ॥

---

* શ્રીમથુરાનાથજીનું પ્રાકટ્ય સં. ૧૫૫૬ ફાગણ સુદ ૭નું છે. આથી એ પણ અનુમાન સ્પષ્ટ થાય છે કે શ્રીઆચાર્યજી સંવત્ ૧૫૫૦ થી ૧૫૫૫ ની વચ્ચે કનોજ પધારેલા હોવા જોઈએ. અને પદ્મનાભદાસજી દામોદરદાસને ત્યાં શરણે આવેલા છે. તેથી દામોદરદાસને શરણે લઈ આપ દામોદરદાસને ત્યાં થોડા દિવસ બિરાજ્યા અને માર્ગની સેવા પરિપાટી આદિ બતાવી તેજ સમયમાં ભગવત્કથા સાંભળી પદ્મનાભદાસ પણ શરણે આવેલા છે.

तब श्रीआचार्यजी कहे **"यथा लाभ संतोष"**× करि भावपूर्वक सेवा करियो ॥ तब आज्ञा मांगी श्रीमथुरानाथजी कों कन्नोज में अपने घर पधराइ लाए ॥ प्रीतिपूर्वक सेवा करन लागे ॥ (पहले) भिक्षावृत्ति करतें ॥ तब पद्मनाभदास के मनमें आई जो में वैष्णव कहाईके भीख मांगो ? ॥ श्रीआचार्यजी यथालाभ संतोष सों कहे हें ॥ ओर उत्तम पक्ष यही हे ॥ "अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः" ॥२॥ या प्रकार अव्यावृत्तको नेंम ले सेवा मन लगाईके करन लागे ॥

॥ **इति मथुरेशप्राकट्य प्रकार** ॥

—: समस्त लीलाप्रकरण :—

पद्मनाभदास चंपकलता सखी को प्राकट्य हे ।

તેમના ધ્યાનનું કોષ્ઠક આ પ્રમાણે છે:—

પિતાનું નામ	માતાનું નામ	વર્ણ=રંગ	ચાલ વસ્ત્ર	ગુણ	ગાદ્ય	રાગ
ચંદ્રભાનુ	ચંદ્રકલા	કૃષ્ણ વર્ણ શ્વેત ઝાંઈ	હર્યો	કલાનિપુણ	રવાવ	કાન્હરા

ચંપકલતાજીને ત્યાં સત્તર લાખ ૧૭૦૦૦૦૦ ગાય છે. શ્રીચંદ્રાવલીજીના ભાવને મળે છે અને પરસ્પર સહવાસી છે. તેથીજ અહીં

× શ્રીઆચાર્યજીની આજ્ઞા " યથાલાભ સંતોષ "ની નિબંધમાં પણ છે. અને તેને અનુસરીને શ્રીહારરાયજી પણ આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છે.

" वैराग्यं परितोषं च लीलाभावाय भावयेत् " ॥ ६४३ ॥

(स्व० मा० श० स० से० नि०)

" श्रीकृष्णं पूजयेद्भक्त्या यथालब्धोपचारकैः " (निबंध)

પણ શ્રીગુસાંઈજીના પ્રાકટ્યના સહાયભૂત પદ્મનાભદાસ થયા. અને શ્રીગુસાંઈજીના સ્વરૂપનો (વેણુસ્વરૂપનો) અનુભવ પણ છે. તે ૪૦ પદમાં વર્ણવ્યો છે.

वार्ता प्रसंग २

*एक समे श्रीआचार्यजी प्रयाग में हते ॥ तहां पद्मनाभदास पास हैं ॥ तब रात्र प्रहर एक गई हती ॥ तब पद्मनाभदास सों श्रीआचार्यजीनें कह्यो ॥ जो श्रीअक्काजी पार हैं ॥ सो पार तें पधराय लाओ ॥ सो इतनो सुनि कें उठि चले ॥ तब पांच सात वैष्णव उहां सोये हते ॥ सो कहन लागे ॥ जो ब्राह्मण बावरो भयो हे ॥ या समें कहां जायगो ? ॥ नाव सब बंधी हे ॥ घटवारे सब घर गए हैं ॥ तातें या बिरियां जायवेकी नाहीं ॥ परि याको (पद्मनाभदास को) श्रीआचार्यजी महाप्रभून की आज्ञा को विश्वास हे ॥ जो यह बात अवश्य होईगी ॥ सो घाट उपर आये ॥ तब इत उत देखन लागे ॥ इतनेमें ही अकस्मात् एक लरिका एक डोंगी लेके आयो ॥ तब वाने पद्मनाभदास सों पूछी जो तु पार जाइगो ? ॥ तब पद्मनाभदासने कह्यो जो हां हां जाउंगो ॥ सो उन पार उतार दीनो ॥ पाछें फेरि पूछयो जो तू फेरि आवेगो ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो घडी दो में आऊंगो ॥ तब उन लरिकाने कह्यो जो डोंगी राखत हों, बेग आईयो ॥ पाछें अडेल

---

* સંવત ૧૫૭૧ ના વ્રજ ચૈત્ર વદ ૯ ની રાત્રે.

में आइके श्रीअक्काजी को पधराइ ल्याए * ॥ वाही डोंगी में बेठारि पार उतरे ॥ तब पाछें फेरि देखे तो डोंगी नांही ॥ ओर लरिका हू नांही ॥ पाछे श्रीअक्काजी को पधराय के लाये ॥ तब श्रीआचार्यजी पद्मनाभदास को आज्ञा दीनी ॥ जो जाउ सोइ रहो ॥ तब पद्मनाभदास जहां वैष्णव सब जाइ के सोए हते ॥ तहां आए ॥ तब वैष्णव पूछन लागे ॥ जो तूम कहा करि आए ? ॥

तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो एसे श्रीअक्काजी को पधराय लायो हूं ॥ तब सब वैष्णव नें कह्यो जो तुमने श्रीठाकुरजी को श्रम बहुत करायो ॥ पाछें उन वैष्णवननें (जब) श्री आचार्यजी सों कह्यो जो महाराज पद्मनाभदास ने श्रीठाकुरजी को श्रम बहुत करवायो ॥ तब श्रीआचार्यजीने कह्यो ॥ (जो) यह जो कछू भयो हे ॥ सो मेरी इच्छा सों भयो हे ॥ तातें तुम इन पद्मनाभदास सों कछु मति कहो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

यह वार्तामें यह सिद्धांत भयो जो गुरुके कार्यार्थ प्रभुकों कष्ट (श्रम) करावै तो वैष्णवकों बाधक नांही ॥ गुरुके प्रसन्न भए सब कार्य सिद्ध होइ ॥+ (दूसरो अभिप्राय) ओर उह रात्रि श्रीगुसांईजी के प्रागटचके गर्भ स्थितिको मुहूरत हतो ॥ तातें श्रीआचार्यजी आज्ञा कीए ॥ श्रीठाकुरजी डोंगी लाए ॥ तातें यह

* શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીગુસાંઈજીના સમયમાં પડદાની પ્રથા નહિં હતી. પડદાની પ્રથા સાત બાલકોના સમયમાં શ્રીનાથજીની

जताए जो श्रीगुसांईजीके लिए सगरो कार्य करें यामें कहा कहनों ? ॥

આજ્ઞાથી ચાલુ થઈ છે. વિશેષ તે સંબંધી ઇતિહાસ પ્રસંગોપાત આગલ ઉપર લખીશું.

+સરખાવો શ્રીહરિરાયજીનાં આ વાક્યોઃ—

यथाकथञ्चित्स्वस्वामिसन्तोषोत्पादनं हितम् ।

तस्मिंस्तुष्टे फलं सर्वं **सिद्धमेव न संशयः ॥२०॥** (स्व०मा०म०नि०)

વિશેષ ગુરુના સ્વરૂપજ્ઞાનને માટે શ્રીહરિરાયજીએ "गुरुदेवाष्टक" રચ્યું છે તે વાંચો. ગુરુની અપેક્ષિતા અને મુખ્યતા ક્રિશ્ચીયન, મોહમેદન, બૌદ્ધ, જૈન, શાંકર આદિ ધર્મોમાં પણ ખૂબજ કહી છે. વ્યવહારથી પણ મનુષ્ય માત્ર જન્મે ત્યારથી મરે ત્યાં સુધી ગુરુની (કોઇપણરૂપે) અપેક્ષા છેજ. ગુરુ વિના કોઈ પણ પ્રકારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતું નથી. તેમજ દરેક કાર્યમાં (લોક અને વેદમાં) ગુરુની અપેક્ષા છેજ.

માટેજ દરેક ધર્મમાં ગુરુને ઇશ્વરથી પણ અધિક માનવામાં આવ્યા છે. (અન્ય માર્ગ અને આ માર્ગના ગુરૂમાં શો તફાવત છે તે જાણવા માટે નીચે વાંચો.)

गुरु के प्रसन्न भए सब कार्य सिद्ध होई ॥

આ શ્રીહરિરાયજીના મતને ભાવનાવાળા શ્રીદ્વારકેશજી પણ અનુસરે છે તે આ પ્રમાણેઃ—

या भावना तब सिद्ध होइ जब गुरु प्रसन्न होय । तातें गुरु को प्रसन्न राखिये । गुरु हे सो हृदयांधकार के निवर्तक हे । 'गुशब्दस्त्वंधकारे स्यात् रुशब्दस्तन्निवर्तकः । अंधकारनिवृत्तत्वाद्गुरुरित्यभिधीयते' इति, हरि जब अप्रसन्न होइ तब गुरु रक्षा करे । जब गुरु अप्रसन्न होइ तब कोउ रक्षक नहिं । यातें तनुजा वित्तजा सेवा करिकें गुरुको प्रसन्न करिये । '**हरौ रुष्टे** गुरु त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुमेव प्रसादयेत्' । तहां मुख्य गुरु तो श्रीआचार्यजी तथा श्रीगुसांइजी । **ता पीछे इनको कुल गुरु हे** । श्रीकृष्णज्ञानदः, या पद करिके

यामें श्रीगुसांईजीके स्वरूपकी श्रीठाकुरजीतें अधिकता दिखाए ॥ (तीसरो

श्रीमहाप्रभुजी गुरु हे। ओर श्रीगुसांइजी में (श्रीआचार्यजीने) शेषमाहात्म्य तथा अशेष माहात्म्य यह दोउ माहात्म्य को स्थापित किये हें। या तें गुरु हे। 'श्रीविट्ठलेशे स्त्रखिलमाहात्म्यस्थापकाय नमः'। ओर कुलमें तो 'अस्मत्कुलं निष्कलंकं श्रीकृष्णेनात्मसात्कृतं'। या वाक्य तें कुल हें सो गुरु हे। यथा देहे तथा देवे, यथा देवे तथा गुरौ'। इंद्रियव्रत करिकें देह पोषन करिये। **तो प्रान पोषन सेवा होइ**। जेसें प्राणसेवा करनी तेसें देव सेवा करनी। प्राग सेवा करे तो इंद्रिय देहभावको प्राप्त होइ। 'आसन्यस्य हरेर्वापि सेवया देवभावतः'। आसन्य सो प्राण। हरिसेवा करे तो व्यापि वैकुंठकी प्राप्ति तब होइ जब गुरु सेवा करे। जेसी हरि सेवा तेसी गुरु सेवा। 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।'

देहसेवा तथा देवसेवा, गुरुसेवा, यह तीनों सेवा नित्य करनी ताको प्रकार। तहां देहसेवा तो याको जो पदार्थ अपेक्षित हे सो सिद्ध करत हे। तेसे देवसेवा जो पदार्थ अपेक्षित हे सोउ सिद्ध करत हे। दोइ सेवा तो भई। गुरुसेवा तो शेष रही। **यह सेवा होइ तो पहेली दोउ सेवा सिद्ध होइ**। (भावभावना)

પુષ્ટિમાર્ગીય ગુરુની શ્રેષ્ઠતાઃ—

श्रीमद्वल्लभाचार्यजी, श्रीगुसांईजी साक्षात् ईश्वर पूर्ण पुरुषोत्तम इनकी शरण गये। ओर मारग मे गुरु जीव हे, सेवा ईश्वरकी। या पुष्टिमारग में गुरु ही पूर्णपुरुषोत्तम, सेवाहू पूर्णपुरुषोत्तम की। सेवोपयोगी पदार्थ हू निर्दोष हे।

(श्रीद्वारकेशजी भावनावारे)

જે લોકો શ્રી આચાર્યજીએ નિબંધમાં કહેલાં લક્ષણો આજના ગોસ્વામી બાલકોમાં નથી એવા પ્રકારનો આક્ષેપ કરી અજ્ઞાની જનોને પુષ્ટિમાર્ગીય દીક્ષાથી રહિત કરી ઉંધે રસ્તે દોરે છે તે લોકોને શ્રીહરિરાયજીનાં આ વચનો સમજવાં જોઈએઃ—

अभिप्राय) ओर पद्मनाभदासकों पूरन विश्वास दिखाए ॥ जो श्रीआचार्य-जीके बचन खाली कबहूं न जाइ ॥ सर्वथा कार्य सिद्ध होयगो ॥

॥ इति प्रसंग २ समाप्त ॥

वार्ता प्रसंग ३

बहुरि एक समें श्रीआचार्यजी महाप्रभू श्रीगोकुल तें अडेल को जात हते ॥ तब एक व्योपारी क्षत्री कछुक वस्तु लेके साथ में चल्यो सो कन्नोज के उरे रह्यो ॥ श्रीआचार्यजी तो कन्नोज बीच पधारे ॥ व्योपारी पाछे रह्यो सो ताके ऊपर चोर परे ॥ वस्तु सब लुटि लीनी* ॥ श्रीआ-

---

अथाधुनिकतीर्थानामतथाभूततोऽपिहि ॥ पू० ॥
उपदेशस्तथाभूतगुरोरिव फलिष्यति ।
यदि दुःसङ्गदोषेण नान्यथा चेद् भवेन्मतिः ॥ ५१ ॥

(स्व० मा० शा० स० से० नि०)

ભાવાર્થઃ--હવે જો આધુનિક તીર્થરૂપ ગુરુઓ ઉપર જણાવેલા ગુરુ જેવા નથી, તો પણ તેઓ જે ઉપદેશ આપે છે, તે તો પહેલાં વર્ણવેલા સદ્‌ગુરુએ જ કહેલો ઉપદેશ આપે છે, માટે હાલના ગુરુઓ તેવા ન હોવા છતાં પણ તેમની પાસેથી જો ઉપદેશ લેવામાં આવે તો તે ઉપદેશ, જો દુઃસંગરૂપી દોષથી બુદ્ધિ ભ્રમિત થઇ નહિ હોય તો, પહેલાં બતાવેલા મુખ્ય સદ્‌ગુરૂના ઉપદેશની પેઠે જ ફળશે. આજ મત લેખવાળા શ્રીપુરુષોત્તમજીનો છે. તેમજ સમગ્ર ગોસ્વામીબાલકોનો છે. કેટલાએક બાલકોના મુખારવિન્દથી સાંભળ્યું છે કે **"અમે જીવને શરણે લઇ શ્રીમહાપ્રભુજીને સોંપીએ છીએ"**

*શ્રીઆચાર્યજીના ચરણારવિંદ જે છોડે છે તે આ લોક અને પરલોક બન્નેમાં વાસ્તવિક લુટાય છે જ, તે આ દૃષ્ટાંતથી સિદ્ધ થાય છે.

चार्यजी आप रसोई करि के श्रीठाकुरजी को भोग समर्प्यो इतनेमेंही पाछेंते ब्योपारी रोवत पीटत आयो तब पूछी जो श्रीआचार्यजी कहा करत हें ? तब पद्मनाभदास नें कह्यो जो भोजन करत होइँगे ॥ तब ब्योपारी ने कह्यो जो हमारो माल सगरो लुटि गयो हे ॥ ओर श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप भोजन करत हें ॥ तब पद्मनाभदास ने मनमें बिचार्यो ॥ जो यह बात श्रीआचार्यजी सुनेंगे तो भोजन न करेंगे ॥ तातें आप सुने नहीं (एसें करनो)॥

तब पद्मनाभदास वा ब्योपारी की बांह पकरि के बाहिर ले आये ॥ तब पूछि जो साँच कहे ॥ तेरो माल कितनो गयो हे ? तव उन ब्योपारी नें बतायो ॥ तब वा ब्योपारीकी बांह पकरि के पद्मनाभदास एक साह की दूकान पें ले गये ॥ ता साहनें पद्मनाभदास की वहुत आगतासागता करी ॥ पाछे वा साह ने कह्यो जो आग्या करो केसे पधारे हो ॥ तव पद्मनाभदास नें साहसों कह्यो ॥ जो या ब्योपारी को इतनो द्रव्य देनो चाहिये ॥ या द्रव्य को खतपत्र ब्याज हम लिखि देइंगे ॥ तब वा साहनें कही जो पद्मनाभदासजी तुम कों जितनो द्रव्य चहिए तितनो द्रव्य लेउ ॥ खतपत्र की कहा बात हे ? ॥ तब पद्मनाभदासने कह्यो ॥ जो पहिले तो खतपत्र लिखूंगो ॥ ओर पाछें द्रव्य लेऊंगो विना खतपत्र लिखे तो में लेउंगो नांही ॥ तब साह ने कही ॥ जो तुमारी इच्छा ॥ पाछें पद्मनाभदास ने खतपत्र ब्याज लिखि अपनो धरम

गहने लिखि दीनो * ॥ पाछें व्योपारी तो द्रव्य लेके अपने घर गयो ॥ तब पद्मनाभदास सों श्रीआचार्यजीने पूछी जो तू कहां गयो हो ॥ तब पद्मनाभदास नें कह्यो जो महाराज एक काम हो तहां गयो हो ॥ सो श्रीआचार्यजी आपु तो ईश्वर हें ॥ तत्काल बात को जानि गए ॥ तब पद्मनाभदास सों श्रीआचार्यजी नें कह्यो ॥ जो हमको वा व्योपारी के संग कछू बिसावनो हतो कहा ? जो वाको माल देते ? वह पाछें रह्यो तो हम कहा करें ? ॥ परि तेने बुरी करी ॥ जो रिन काढि के पैसा दीनो ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो महाराज रिन तो कालि देऊंगो ॥ यह कितनीक बात हे ॥ परि वह व्योपारी पुकारतो तो राज भोजन घडी दोय अवेरो करते ॥ तो मेरो सगरो जन्मारो वृथा होय जातो ॥ तब श्रीआचार्यजी नें कह्यो ॥ जो तेने धर्म गहने लिखि दीनो सो कहा हे ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो महाराज एसे गाढो लिखे बिना दियो न जाइ पाछें श्रीआचार्यजी आप तो अडेल पधारे ॥ पाछे पद्मनाभदास एक राजा हतो ॥ ताके पास गये ॥ पाछें राजाने कह्यो जो मोकों कृपा करि के कथा सुनावो ॥ तब पद्मनाभदास नें कह्यो ॥ जो राजा श्रीभागवत तो न कहूंगो ॥ कहो तो महाभारत सुनावों ॥ तव राजा नें कह्यो जो भलो

---

* તે સમયમાં ધર્મની કેટલી કીંમત સર્વ સામાન્યમાં પણ હતી તેનું સૂક્ષ્મ અવલોકન અહીં થાય છે. તે સમયના પુરુષો સત્યવચની અને ધર્મ ઉપર અપૂર્વ શ્રદ્ધાવાળા હતા.

महाभारत ही सुनावो ॥ तब महाभारत कहन लागे ॥ सो जब युद्ध को प्रसंग आयो ॥ तब सबन के हथियार छुडाइ धरे ॥ तब आगे कहन लागे ॥ सो कथा में कोऊ (एसो) वीररस उपज्यो सो आपुस में लात मुकिन सों लरन लागे * ॥ पाछें केतेक दिनमें महाभारत समाप्त भयो ॥ तब राजा बहुत दक्षिणा देन लाग्यो ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो ॥ जो इतनो द्रव्य नांहि लेऊंगो ॥ मेरे माथे रिन हे ॥ सो तितनो लेऊंगो ॥ पाछे वा साहको जितनो मूल व्याज देनो हतो तितनो लीनो ॥ बाकी सब फेरि डार्यो ॥ सो वे पद्मनाभदास एसे भगवदीय हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

तब ब्योपारीने कह्यो जो हमारो माल सब लुटि गयो ॥ आपु भोजनको पधारे हें ? ॥ यह कह्यो ताको कारन यह जो आपु दयाल व्हेके जीव दुःखि जानिके भोजन केसें करत हें ? ॥ जो दयाल हे सो परायो दुःख दूरि करिकें भोजन करत हे ॥ [तब पद्मनाभदास वह ब्योपारीकी बांह पकरिके बाहर लाय पूछे ॥ जो साँच कहियो तेरो माल कितनेको गयो हे ? ॥ तब उन ब्योपारीनें कही ॥ जो पंद्रह हजारको माल हतो ॥ बेचेंतें सतरे हजारको होतो] ॥ × × × जब पद्मनाभदास ब्योपारीको द्रव्य दिवायके घर आये तब श्रीआचार्यजीने कही (जो तेने) ब्योपारीको द्रव्य क्यों दिवायो ? ॥ रोन काढिके ॥ कछू हम वीमा कीयो हतो ? पाछें रह्यो लुटि गयो ॥ तें

---

*ઐશ્વર્ય ધર્મ જુઓ પદ્મ૦ની વાર્તાનું ૨૫૦ અને રહસ્ય

[ ] આટલી વાત ૧૭૫૨ ના પુસ્તકમાં વિશેષ પ્રાપ્ત થાય છે.

बुरी करी ॥ ताको कारन यह जो रिनहत्या माथें लीनी ॥ सो बुरी करी-सरीर को कहा भरोसो हे ? ॥ देह छूटि जाइ तो रिन माथे रहे ॥

तब पद्मनाभदासने कही ॥ वा व्योपारिको रुदन सुन घरी दोय आपु भोजन अवेरो करते ॥ मेरो जन्म वृथा होइ जातो ॥ (ताको अभिप्राय) सेवकके आगें स्वामीको कछू श्रम होइ ॥ सेवक श्रम दूरि न करें ॥ तो धर्म जाइ ॥ पाछें धिक्कार वह सेवककों जीवे सो वृथा हे ॥ ओर रिणकी केतिक बात हे ? ॥ अब चुकाई देऊंगो ॥ ताको कारन यह जो कालकी कहा सामर्थ्य हे॥ आपुकी कृपातें बाधक न होइगो॥× ओर धरम गहने धर्यो तामें एक भाव यह हे ॥ (जो) अपनो वैदिक ब्राह्मणको धर्म गहने धर्यो होइगो वह गौन भाव हे ॥ काहेतें श्रीआचार्यजीकी सरन आए॥ तब (सब) समर्पन कीए॥ जो वैदिक धर्म न्यारो रहे ॥ तो पुन्यको फल स्वर्ग भोगनो परे ॥ तातें इनने तो सर्व समर्पन करि एक पुष्टि भक्तरूप धर्म राखे हे ॥ ताहितें श्रीआचार्यजी हू पूछयो (जो) एसो धर्म साहके इहां गहने धर्यो ? ॥ परंतु पद्मनाभदासकों श्रीआचार्यजीको स्वरूप हृदयारुढ हतो ॥ **श्रीआचार्यजीके सुखके लिए ॥ धर्महूकी अपेक्षा राखें नाही** ॥+ गहने धरे॥ ओर ब्योपारिको द्रव्य देके बहोत मनमें प्रसन्न भए ॥ भली भई (ब्योपारी) इहां आयो ॥

× "તેને કાલ કર્મ નવ બાંધેરે યમ તે શિર ધનુષ્ય ન સાંધેરે એવો મારગ શ્રીવલ્લભવરનોરે, જહાં નહિ પ્રવેશ વિધિ હરનોરે," (વલ્લભાખ્યાન)

+ પુષ્ટિ ધર્મનાચે સારરૂપ (જુઓ પદ્મનાભદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય.)

जो चल्यो जातो तो जहां तहां देसमें निंदा करतो ॥ (एसी उत्तम दृष्टि पुष्टि भक्तनकूँ चाहिए) जो में श्रीआचार्यजीकी संग लुटि गयो ॥ काहेतें लौकिक राजाके संग लूटयो न जाइ तो एसे ईश्वरके संग लूटि गयो ? ॥ सो पद्मनाभदास कहे ॥ मेरे धर्मकी परीक्षा अर्थ लूटयो गयो ॥ सो ब्योपारीको द्रव्य दीयो ॥ अब जहां जाइगो तहां श्रीआचार्यजीकी बडाई करेगो ॥ मोकों नफा सहित द्रव्य दीए ॥ या भावसों पद्मनाभदासकी श्रीआचार्यजीमें अनिर्वचनीय प्रीति हे ॥ × × ×

ओर राजा जादा द्रव्य देन लाग्यो सो आप (पद्मनाभदास) यातें न लीए ॥ जो इनको अव्यावृतको नेम हे ॥ वृत्तिके अर्थ कथा नांही कहनी ॥ यह संकल्प हे ॥ यह सगरो काम श्रीआचार्यजीके सुखके अर्थ किए ॥ सो साहु को रुपैया दिवाइ धर्म को कागद लिखे हते सो ले आए ॥ पाछें घर आय सेवा करन लागे ॥

॥ इति प्रसंग ३ समाप्त ॥

નોંધઃ--દાસ અને સેવકમાં નીચે પ્રમાણેનો ભેદ જાણવોઃ—

દાસ હોય તે સ્વામીની આજ્ઞાની રાહ જોતો નથી તેમજ સ્વામીની આજ્ઞાને પૂર્ણપણે જાણીને જ તેનું ઉચિત પાલન કરે છે. સ્વામીને સુખ કયા પ્રકારે થાય ? તેજ વિચારમાં દાસ નિમગ્ન સદૈવ હોય છે. અને તે ગુપ્તપણે પરોક્ષરૂપે સદૈવ સ્વામીના સુખના કાર્યમાં તત્પર રહે છે. સ્વામીને પોતાના કાર્યની જાણ ન થાય તેની બહૂ જ સાવધાની રાખે છે. આ દરેક વસ્તુ પદ્મનાભદાસે આ પ્રસંગમાં કરી દેખાડી છે. સેવક હોય છે તે સ્વામીની આજ્ઞાની રાહ જુએ છે. આજ્ઞાને અનુ-સાર (ઉચિત અથવા અનુચિતનો વિચાર કર્યા વિના) ધર્મ સમજી

ओर पद्मनाभदास के घर बेटी कुमारी हती ॥ ताके निमित्त एक बर श्रीआचार्यजी को सेवक चहियत हतो ॥ सो वैष्णव सों पूछन लागे ॥ तब वैष्णव नें कह्यो ॥ जो एक वर श्रीआचार्यजी को सेवक हे ॥ परि सनोढिया ब्राह्मण हे ॥ सो पद्मनाभदास को सेवक सुनत ही लौकिक व्यवहार की तो सुधि नाहीं आई ॥ वैष्णव नें कह्यो जो भलो वैष्णव हें ॥ याको कन्या दीजिये ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो भलो ॥ तब पद्मनाभदास ने वा वैष्णव को कुंकुम मगाई तिलक कीयो ओर कह्यो में बेटी तुमकों दे चुक्यो ॥ लगन को दिन तुम पूछो ता दिन ब्याह करूं ॥ विवाह सही करि प्रसन्न होइ अपने घर आए ॥ तब बडी बेटी एक तुलसां हती सो ब्याह होत ही विधवा भई ॥ लौकिक पति को मुख नांहि देख्यो ॥ सो श्रीमथुरानाथजी की सेवा में तत्पर हती तासों कह्यो जो अपनी बेटी को विवाह अमुके वैष्णव सों सही करि आयो हूं ॥ तब तुलसांने कह्यो जो वह तो सनोढिया ब्राह्मण हे ॥ हम कन्नोजिया ब्राह्मण हे ॥ सो

वार्ता प्रसंग ४

કાર્ય કરે જાય છે. એટલે સ્વામીના હાર્દને જાણતો નથી. સ્વામીનું સુખ શેમાં છે તે પણ વિચાર કરતો નથી. દાસ ધર્મનું સ્વરૂપ વ્રજભક્તોએ (રાસ સમયે), શ્રીઆચાર્યચરણે (બન્ને ભગવદ્ આજ્ઞા સમયે) અને દામોદર પદ્મનાભ તથા રજો આદિ પરમ મહાનુભાવ ભગવદીયોએ કૃતીદ્વારા જીવોને સમજાવ્યું છે એ દાસ્ય ધર્મ એજ પુષ્ટિમાર્ગ અને તે ફલાત્મક ધર્મ હોઇ ભગવત્સ્વરૂપ જ છે. (મર્યાદા દાસ્યધર્મ જે હનુમાનજીમાં હતો તે નહિં.)

एसे केसे होइ ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कह्यो जो अब तो भई सो भई ॥ तब तुलसां ने कही जो सगाई फेरो ॥ तब पद्मनाभदास ने कही ॥ जो छूरी लाओ ॥ अंगूठा काटो ॥ जा अंगूठा करि तिलक कीयो हे ॥ तब तुलसां ने कह्यो ॥ जो अंगूठा केसे काटिए ॥ तब पद्मनाभदास ने कही तो सगाई केसे फेरिए ?॥ अंगूठा कटे तो सगाई फिरे ॥ पाछें पद्मनाभदास ने विवाह करि दीनो ॥ जाति के सब झख मारि रहे ॥ वैष्णव के कहेको एसो विश्वास ॥ तातें सगाई न फेरी ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

जब तुलसांने कह्यो ॥ अंगूठा केसे काट्यो जाय ? ॥ तब पद्मनाभदासने कह्यो ॥ श्रीआचार्यजी के सेवक पर तन मन धन न्योछावरि करिए+ ॥ सो सगाई केसें फेरि जाइ ? ॥

+ આ શ્રીહરિરાયજીની ગદ્ય વાણીને શ્રીહરિરાયજીની પદ્ય વાણી સાથે રાખવો:--

वारूं तनमन वल्लभियन पर ।

मेरे तन को करूं बिछोना शीश धरूं इनके चरनन तर ॥

× × ×

છેલ્લી લીટી

दास रसिक बलैया लेले वल्लभीयनकी चरन रज अनुसर ॥

ક્યાં આ સર્વોત્તમ વૈષ્ણવ પ્રત્યેનો શુદ્ધ પ્રેમ ? અને ક્યાં આજકાલના આક્ષેપ કર્તાઓનાં મલિન હૃદય ?

(આ મારગમાં તો શું ? પરંતુ સર્વત્ર જગતમાં વ્યવહારથી લઈને છેક ભક્તિ સુધીની સિદ્ધી સુધી ભકતોનો મહિમા પ્રત્યક્ષ કે અપ્રત્યક્ષ રૂપે સર્વને માનવો પડે છે જ.)

સરખાવો પરમાનંદદાસનું (અષ્ટસખાનું) પદ

आये मेरे नंदनंदन के प्यारे ।

(અષ્ટસખા) સૂરદાસજીનાં પદઃ—

गिरिधर जब अपनो करि जाने। ताको मन भक्तन की सेवा भक्त चरनरज सदा लुभाने ॥

(२) प्रभु जन पर प्रसन्न जब होहीं।

तब वैष्णवजन दर्शन पावे पाप रहे नहिं कोई॥

हरि लीला उर आवे ताके सकल वासना नासे ।

सूरदास निश्चे विचार करि हरि स्वरूप जब भासे ॥

(અષ્ટસખા) કૃષ્ણદાસનું પદઃ—

ताहीको शिर नाइये जो श्रीवल्लभसुत पदरज रति होय ।

× × ×

(અષ્ટસખા) છીત સ્વામીનું પદઃ—

मोहि बल हे दोउ ठोर को ।

एक भरोसो हरिभक्तन को दूजो नंदकिशोर को ॥

× × ×

શ્રીવલ્લભજી મહારાજનું પદઃ—

आये मेरे श्रीवल्लभ के दास।

ताकी सरवर नहि त्रिभुवन में सुनो वेद इतिहास ॥ १ ॥

× × ×

ताकी महिमा को कवि बरनत सकुचत सरस्वती व्यास।

तीर्थन को अति तीर्थ करियत पद रज गंध सुवास ॥

ભક્ત કહો સાધુ કહો સંત કહો પરોપકારી કહો કે વૈષ્ણવ કહો તેની મહિમા સર્વ સંપ્રદાયોમાં સર્વ જગતમાં સર્વ ગ્રન્થોમાં (બાઇબલમાં પણ) પાને પાને પ્રત્યક્ષ કે અપ્રત્યક્ષ રૂપે રહેલી છે. અહીં વિશેષ ન કહેતાં આગલ અન્ય પ્રસંગોમાં વર્ણન કરીશું.

या प्रकार तुलसाकों **मारग को अभिप्राय बताए*** ॥

ता दिन तें तुलसाको प्रेम वैष्णवमें पद्मनाभदासके संगतें भयो ॥

सो श्रीठाकुरजी तुलसाहूको अनुभव जतावन लागे ॥ पाछें प्रसन्न होई के

---

* २ સરખાવો શ્રીકાકા વલ્લભજીનું ૧૪ મું વચનામૃત (તેમાં આપેલો પ્રસંગ)

મારગનું મૂલ વૈષ્ણુવ જ છે. વૈષ્ણુવની સેવા એ સર્વોપરિ વસ્તુ છે. તે વૈષ્ણુવ કોટિમાં વ્રજ ભક્તો, શ્રીઆચાર્યચરણુ (શેષ માહાત્મ્ય સ્વરૂપ), શ્રીગુસાંઈજી, સમસ્ત વલ્લભકુલ, દમલા, પદ્મનાભદાસ અને રાજા આશકરણુ જેવાનો સમાવેશ થાય છે. આ ભકતોનાં સ્વરૂપ पुष्टि प्रबाह मर्यादा ગ્રન્થમાં શ્રીઆચાર્યચરણે કહેલા " स्वरूपेणावतारेण " એ શ્લોક અનુસાર જાણુવા. તેથી જ શ્રીગુસાંઈજીની આજ્ઞાથી સત્યભામાજીએ રાજા આશકરણુને રાજભોગના થારની સામગ્રી લેવડાવી. શ્રીમહાપ્રભુજીએ અડેલમાં કૃષ્ણુચૈતન્યને અનોસરના સમયમાં વિના સમર્પેલી સામગ્રી લેવડાવી અને અક્કાજીને આજ્ઞા કરી કે તેમના હૃદયમાં સાક્ષાત્ પ્રભુ બિરાજમાન છે. માટે તેમની આગલ સામગ્રી ધરવામાં કાંઈ વાંધો નથી (જુઓ પ્રદીપ) તેજ પ્રમાણે શ્રીહરિરાયજીના સમયમાં એક વિરક્ત વૈષ્ણુવ (રાજા આશકરણુના સમાન) ને શ્રીહરિરાયનીની આજ્ઞાથી એક ડોકરીએ વિના સમર્પેલો ખીરનો ડબરો ધર્યો. શ્રીહરિરાયજીએ સર્વ સમક્ષ કહ્યું કે મારગનો સિદ્ધાંત એ ડોકરીએજ જાણ્યો. એ વૈષ્ણુવને સંદેહ થયો. ત્યારે સંદેહ નિવારણાર્થ તે ડોકરીની પાસે અનોસરના સમયમાં તે વૈષ્ણુવને મોકલ્યો. ત્યાં તે વૈષ્ણુવ જુએ છે તો ખીરનો ડબરો લઈ શ્રીઠાકોરજી ડોકરીની છાતી ઉપર બેઠા રહ્યા છે—

શ્રીઆચાર્યજી અને શ્રીગુસાંઈજીનું, આચાર્ય કોટિ, ભક્ત કોટી અને ઈશ્વર કોટી એમ ત્રણે કોટિમાં પ્રાધાન્યત્વ છે. અને ત્રણે કોટિમાં

वैष्णवकों अपनि बेटि ब्याहि दिए ॥ जाति सगरि झखि मारि रही ॥ ताको कारन यह हे ॥ (जो) जहां तांई द्रढ स्नेह नांहि ॥ तहां तांई लौकिक वैदिकको डर हे ॥ जब द्रढ स्नेह प्रभूमें भयो ॥ तब सगरी चिंता मिटी ॥ लौकिक वैदिक बाधा हूं न करि सके+ ॥ एसे एक वैष्गव पद्मनाभदास भए ॥

॥ इति प्रसंग ४ समाप्त ॥

પણ ભકત કોટિ સર્વોપરિ છે. તે શ્રીમદ્‌ભાગવત આદિથી સિદ્ધ છે. શ્રીઆચાર્યજી સ્વયં ત્રણે કોટિને સ્વીકારે છે જુઓ:—

" इति श्रीकृष्णदासस्य " અહિં ભકત કોટિ

" नहिविभुर्वैश्वानराद्वाक्पतेः " અહિં ઇશ્વર કોટિ

" इति श्रीवल्लभाचार्य विरचितं " અહિં આચાર્ય કોટિ

માટે પુષ્ટિમાર્ગમાં વૈષ્ણવોની સેવા મુખ્ય છે. તેમાં શેષ બન્ને સેવાનો સમાવેશ રહેલો છે. (હરિ અને ગુરુની સેવાનો.) વિષયાંધ હૃદય આ વસ્તુ કયાંથી સમજી શકે ?

+ સરખાવો નારદભક્તિ સૂત્ર :—

સૂત્ર ૧૨ भवतु निश्चयदाढ्यार्दूर्ध्वं शास्त्र रक्षणं ।

અર્થ:—દઢ નિશ્ચય થયા પહેલાં શાસ્ત્ર રક્ષણ (શાસ્ત્રોક્ત કર્મોનું અનુષ્ઠાન) હોય.

૧૩ अन्यथा पातित्याशंकया। અર્થ:—અન્યથા પતિત થવાની શંકા છે.

૧૪ लोकोपि तावदेव किंतु भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीरधारणावधि । લોક (લોક વ્યવહાર) પણ ત્યાં સુધી (દઢ નિશ્ચય થયા પૂર્વતક) છે. કિન્તુ ભોજનાદિ વ્યાપાર તો જ્યાં સુધી શરીર છે, ત્યાં સુધી છે.

સારાંશ કે જ્યાં સુધી ઇશ્વરમાં નિરોધરૂપા ભક્તિ દઢ ન થાય ત્યાં સુધી શાસ્ત્રોક્ત કર્મ પાલન અવશ્ય છે. નહિ તો પતિત

ओर एक क्षत्राणी पद्मनाभदासके घर नित्य आवती ॥ तब पद्मनाभदासकी बेटी तुलसांने एक

वार्ता प्रसंग ५

दिन वासों कह्यो ॥ जो क्षत्राणी तूं नित्य क्यों आवत हे ? तब वा क्षत्राणीनें कही जो ए महापुरुष हें॥ बडे भगवदीय हें ॥ ओर मेरे संतति नांही होति हे॥ तातें आवति हों ॥ तुम मेरी बिनती पद्मनाभदासजीसों करियो ॥ तब एक दिन तुलसांने पद्मनाभदाससों कह्यो जो या क्षत्राणीके संतति नांही ॥ ताके लिए तुमसों बिनती करत हे ॥ तब पद्मनाभदासने तुलसांसों कह्यो जो जल लाउ ॥ तब तुलसांने जल आगे लाइ धर्यो॥ तब वह जल लेके चरणोदक करि वा क्षत्राणीको दीयो ॥ ओर कह्यो जो जा तेरे पुत्र होइगो* ॥ ताको नाम मथुरादास धरियो ॥ पाछें वाके पुत्र भयो ॥ (ताको) नाम मथुरादास धर्यो ॥

થવાની શંકા રહે છે. અને લોક વ્યવહાર પણ દૃઢ ભક્તિ ન થાય ત્યાં સુધી જ છે. ઈશ્વરમાં દૃઢ ભક્તિ થયા પછી લોક અને વેદ બન્નેનો ત્યાગ છે. કેટલાક એવો કુતર્ક કરે છે કે પહેલા ખાવુંપીવું છોડી દો ત્યારે લોક વેદનો ત્યાગ કર્યો ઉચિત કહેવાય, પરંતુ ઉપરોક્ત સૂત્રથી સિદ્ધ થાય છે કે ભોજનાદિ વ્યવહાર તો શરીર જ્યાં સુધી છે ત્યાં સુધી છે. તેનું વિશેષ વિવેચન ૨જ્જેની વાર્તામાં આપ્યું છે ત્યાં જુઓ.

* શ્રીઆચાર્યજીના સેવકો પણ શ્રીઆચાર્યજીની માફક પૂર્ણસામર્થયુક્ત છે. દૃષ્ટાંતરૂપેઃ—પ્રભુદાસે અહીરનીને મુક્તિ આપી ગદાધરદાસે માધવદાસને ભક્તિ આપી. જે ભક્તિ આપવાને બ્રહ્માદિક

अपनो चरणोदक क्यों दीए ?।। भगवदीय अपनी बडाई तो करावत नांही ।। तातें श्रीठाकुरजीको चरनोदक दीयो होयगो ।। तहां कहत हें ।। जो पद्मनाभदासनें बिचारी जो तुच्छ कामना पुत्रादिककी हे ।। याके लिए श्रीठाकुरजी को चरनोदक कहा ? श्रीठाकुरजीको श्रम काहेकों कराऊं ? ।। तातें अपनो चरणोदक दिए ।। परंतु पद्मनाभदास सदा श्रीआचार्यजी के स्वरूप में मगन रहत हें ।। (देखो पद्मनाभदास कृत ४० पद) सो जल ले श्रीआचार्यजी के भाव तें दिए ।। ओर इनको कछू कामना की बडाई की अपेक्षा नांही है ।। भगवदीय को आश्रय करें ।। सो सगरो मनोरथ वाको पूरन होइ ।। यह पुत्र की कहा बात हे ? ताकों (क्षत्राणीकों) पुत्रकामना हती सो पुत्र दीए ।। परंतु बाधक नांही ।। जो अपने कीए को अहंकार नांहि ।। ता समय जो बुद्धि की प्रेरणा भई ।। सो भगवद् इच्छा तें कार्य करत हैं ।। अपनो कीयो जानत नांहीं हें । श्रीगुसांईजी लिखे हें " बुद्धि प्रेरक कृष्णस्य पादपद्मं प्रसीदतु " जो कार्य होत हे। जेसी ताकी बुद्धि प्रेरक होई करत हे सो कार्य सब कृष्णही को जानना ।। जो अपनो ओर को जाने सोई संसार समुद्र में भ्रमत हे ।। तातें पद्मनाभदास ने अपनो चरणोदक दिए ।। परंतु यह भाव नांहि जो मेरे चरनोदकसों पुत्र होइगो ।। भगवदइच्छा तें सब होत हे ।। यह सिद्धांत दिखाए ।।

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश.

इति प्र. ५ समाप्त.

પણ અસમર્થ છે. તેવીજ રીતે પદ્મનાભદાસે પુત્ર આપ્યો. તેમાં જરાય આશ્ચર્ય નજ હોય. સેવક સેવ્યના ચિંતવનથી તદ્રૂપતાને પ્રાપ્ત થાય છે. લોકમાં કીટ ભ્રમર ન્યાય પ્રત્યક્ષ દ્રષ્ટાંતરૂપ છે.

ओर एक समें बडे रामदासजी अपने सेव्य श्रीठाकुरजी कों पद्मनाभदास के घर पधराइ के श्रीनाथजी-

वार्ता प्रसंग ६

के दरसन कों गए ॥ सो श्रीनाथजी की सेवामें श्रीआचार्यजी की आज्ञा तें रहे ओर श्रीनाथजी की सेवा करन लागे ॥ श्रीनाथजी के भीतरिया* भए ॥ तब पद्मनाभदास श्रीठाकुरजी की सेवा करन लागे ॥ सो कितनेक दिन पाछे मुगल की फौज आई ॥ सो तानें गाम लूट्यो+ सो श्रीठाकुरजीकों एक मुगल ले गयो ॥ तब पद्मनाभदास वा मुगलके साथ दिन सातलों रहे ॥ जल पान हू न कर्यो ॥ तब आठमे दिन मुगलसों मुगलानीने कह्यो ॥ जो यह ब्राह्मण जलपान नाहिं करत हे ॥ याको सात दिन भए हें ॥ अन्नजल छोडे ॥ सो जो यह मरेगो तो तेरे माथे हत्या चढेगी× ॥ तातें याको देवता हे ॥ सो वाकों दे ॥ तब मुगल ने श्रीठाकुरजी पद्मनाभदास कों दीए ॥ सो लेके पद्मनाभदास अपने घर आए ॥ ता पाछे आप स्नान करि श्रीठाकुरजी को पंचामृत स्नान करवायो ॥ अंग वस्त्र करि श्रृंगार कर्यो ॥ रसोई करि भोग समर्प्यो ॥ पाछें समयानुसार भोग सराय अनोसर करि पाछें

---

* શ્રીમહાપ્રભુજીના સમયમાં મુખ્યાજીનેજ ભીતરીયા કહીને સંબોધતા.

+ ઐતિહાસિક તત્ત્વ. ‘ લૌકિક ભાષા ’ (રહસ્ય ભાષાને ઉપયોગી હોવાથી સૂક્ષ્મરૂપે આપી છે)

× સાચું આત્મબલ આનું નામ કે જેનાથી એક દુષ્ટાત્માના હૃદયમાં પણ સદ્‌વિચાર આવ્યા. અહીં ઐશ્વર્ય કહ્યું છે.

वैष्णवन कों महाप्रसाद लिवायो ॥ पाछें आप महाप्रसाद लियो ॥ ओर जा दिन श्रीठाकुरजी कन्नोज में मुगल के हाथ परे ॥ ता दिन बडे रामदासजी ने हू यह बात जानी ॥ सो ता दिन तें बडे रामदासजी ने हू सात दिनलों भोजन नांहि कियो ॥ परि श्रीनाथजी की सेवा सावधानतासों करत रहे ॥ यह बात पद्म-नाभदासजी ने अपने घर बेठे जानी॥ जो रामदासजी ने हू या बात के उपर बहोत दुःख पायो ॥ यह जानि पद्मनाभदास श्री-नाथजी के दरसन कों तथा रामदासजी के मिलिवे कों श्रीनाथजी-द्वार (गिरिराज–जतिपुरा) गये ॥ सो श्रीनाथजी के दरसन कीये ॥ पाछें रामदासजी कों मिले ॥ तब रामदासजी सों पद्मनाभदासजी नें कह्यो ॥ जो होंतो दुःख पायो सो तो न्याव हे ॥ जो तुम मेरे माथे सेवा पधराय आए ॥ परि तुमने दिन सातलों प्रसाद न लियो ॥ सो काहेते ? तब रामदासजी ने कह्यो जो तुम कहत हो सो तो साँच परि मेंहू तो बहोत दिन-लों सेवा करी हे ॥ तातें इतनो संबंध तो चाहिए ॥ पाछें कितनेक दिन रहिके पद्मनाभदास श्रीनाथजी सों तथा राम-दासजी सों बिदा होइके अपने घर कन्नोज आए ॥ पाछें फेरि सेवा करन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

या बार्तामें यह सिद्धांत दिखाए ॥ जो पुष्टिमार्गीय वैष्णव के ठाकुर अपने घर पधारे ॥ तो भिन्न भाव न राखनो+ ॥ श्रीआचार्यजी के संबंधी जानि माथे पधारे

+संप्रदायनी परिपाटीनुं ज्ञान आ प्रसंगमां समायेलुं छे.

जानि सेवा करनी ।। और रामदासजी के भावमें यह जताए जो अपने: सेव्य (सेवाके) ठाकुर कहूं पधराइ निश्चित न होइ ।। उनके दुःखतें दुःखि होई ॥ उनके सुख तें सुख पावे ।। यह सिद्धांत दिखाए ॥

॥ इति प्रसंग ६ समाप्त ॥

वार्ता प्रसंग ७

बहुरि एक समय पद्मनाभदास ने बिचारी जो श्रीठाकुरजी सहित कुटुंब सहित श्रीआचार्यजी के दरसन करिए ।। श्रीमुख के वचनामृत सूनिए ।। सो श्रीठाकुरजी सहित कुटुम्ब सहित अडेल में आए ।। सो कछुक दिन रहे ।। परि द्रव्य को संकोच बहुत हतो ।। तातें श्रीठाकुरजी को भोग समर्पे ।। सो छोला तलि के समर्पे ।। सो छोला आछी रीति सों बीनि के पहले दिन भिजोइ राखे दूसरे दिन नीकी भांति सो तलि के समर्पे ।। सो या भांति पातरि में एक मूठि दारि की भावना करते ।। एक मूठि भात की ।। एक मूठि खीर की ।। साकादिक सब को नाम ले न्यारि न्यारि मूठि धरतें ।। सो श्रीठाकुरजी सगरी सामग्री के भावसों आरोगते ।। या प्रकार नित्य करें ॥ पाछें एक दिन एक वैष्णव श्रीआचार्यजी सों यह सब प्रकार कहे; जो महाराज पद्मनाभदास श्रीठाकुरजी को

या भांति छोला समर्पत हे ॥ सो एक दिना श्रीआचार्यजी भोग समर्पवे की बिरियां पद्मनाभदास के :घर पधारे ॥ सो पद्मनाभदास सों पूछे जो यह ढेरि न्यारि न्यारि क्यों हे ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कही यह दारि हे यह भात हे ॥ यह खीर हे ॥ यह कढि हें ॥ यह साकादिक हे ॥ या प्रकार सब ढेरि कों सामग्री बताए ॥ तब श्रीआचार्यजी महाप्रभून को हृदय भरि आयो ॥ ओर जान्यो जो याके द्रव्यको संकोच हे तातें यों करत हे ॥ परंतु द्रव्य को उपाय नांहि करत हे । बडो धैर्य हे ॥ तातें याके उपर श्रीठाकुरजी बडे प्रसन्न हे ॥ पाछे श्रीआचार्यजी घर पधारे भोजन कीए ॥ ओर श्रीअक्काजी सों कहे ॥ जो पद्मनाभदास के घर द्रव्य को बहोत संकोच हे ॥ सो छोला नित्य श्रीठाकुरजी कों धरत हें ॥ तब श्रीअक्काजी ने संझा समय सगरी सामग्री सिद्ध करि (चुनबीन फटकके) एक वैष्णव के हाथ पठाई ॥ तब तुलसां ने पद्मनाभदास सों कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी के इहां सों सामग्री आई हे तब पद्मनाभदास ने कह्यो हम जांने अब हमको काढिवे को उपाइ किए हे ॥ जतन सों धरि राखो ॥ तब तुलसां ने धरि राखी ॥ पाछे दूसरे दिन फेरि सामग्रि सांझ कों श्रीअक्काजी ने पठाई ॥ तब तुलसां ने फेरि पद्मनाभदास सों कही ॥ तब पद्मनाभदास ने कही हमकों बेगि बिदा दिए ॥ तातें सवेरे चलेंगे ॥ अब यह धरि राखो ॥ पाछें प्रातःकाल भयो ॥ तब श्रीठाकुरजी

कों बेगि ही राजभोग सों पहोंचि ॥ श्रीमथुरानाथजी सों पूछे जो महाराज आपकों श्रीआचार्यजी के घर पधारिवे की इच्छा होइ ॥ तो उहां नाना प्रकार की सामग्री हे ॥ मेरे इहां तो जो समय जेसो प्राप्त होइ ॥ तेसों धरुंगो ॥ तब श्रीमथुरानाथजी ने कही मोकों तेरो कीयो भावत हे ॥ तातें जो धरेगो ॥ सो प्रीति तें अरोगूंगो ॥ तब अनोसर कराइ ॥ एक नाव भाडे करि लाए ॥ तुलसां सो कहे ॥ दोउ दिन को सीधो सामग्री हे ॥ सो श्रीअक्काजी को दे आव ॥ तब तुलसां सारी सामग्री श्रीआचार्यजी के यहां दे आई ॥

पाछें सगरी वस्तू नाव पर धरि श्रीमथुरानाथजी कों नाव पर पधराई श्रीआचार्यजी के पास बिदा होंन आए* ॥ ओर

---

*અહીં સાંપ્રદાયિક પરિપાટીનું જ્ઞાન થાય છે. અને તે આજ પણ પ્રાયઃ ગોસ્વામિ બાલકોમાં અવશ્ય જોવામાં આવે છે. તેમજ કેટલાક મહાનુભાવ વૈષ્ણવોમાં પણ આ પરિપાટી જોવામાં આવે છે, કોઇપણ બાલક અથવા વૈષ્ણવ અન્યત્ર પધારે ત્યારે પોતાના ઠાકોરજી અથવા જે સ્થલે રહેતા હોય ત્યાંના મુખ્ય સ્વરૂપો (શ્રીનાથજી આદિ) સ્વગુરુ અથવા કોઇપણ વલ્લભકુલ જે પોતાના ગામમાં બિરાજતા હોય તેમનાથી વિદાય થઇ (ભેટ આદિથી સન્મુખ થઇ) પછી પરદેશ જાય છે. કાંકરોલીના ઘરમાં આ રીત હજુ સુધી બહુજ સારી રીતે સચવાઇ રહી છે. જ્યારે કાંકરોલીના બાલકો પરદેશ પધારે છે ત્યારે પોતાના સેવ્ય શ્રીદ્વારકાનાથજી ઉપરાંત શ્રીનાથદ્વાર પધારી શ્રીનાથજી આદિ સર્વે સ્વરૂપોને સન્મુખ થઇ વિદા થઇ પછી પરદેશ પધારે છે.

दंडवत करि बिनती कीनी जो महाराज आज्ञा होइ तो घर जाय ॥ तब श्रीआचार्यजी पूछे ॥ जो श्रीठाकुरजी कहां हें ? ॥ तब पद्मनाभदास ने कही महाराज नाव पर पधारे हें ॥ तब श्रीआचार्यजी बिदा कीये । (ओर) मनमें बिचारे ॥ जो अंचको पद्मनाभदास क्यों गयो ? तब श्रीअक्काजी ने कही दोय दिन सिधा पठायो सो फेरि दे गए ॥ तब श्रीआचार्यजी ने कह्यो जो सीधो पठवायो तातें गयो ॥ नांही तो न जातो ॥ एसे श्रीआचार्यजी ने श्रीमुख तें कह्यो ॥

पाछें पद्मनाभदास घर जाय सेवा करन लागे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

या वार्ता में यह जताए ॥ जो गुरु द्रव्य श्रीठाकुरजी के द्रव्य तें हू भारी हे ॥ तातें श्रीभागवत में (स्कं. ११ अ. १७ श्लोक २८) कहे हें ॥ भिक्षा मांगि के लाई गुरु के आगे धरिए ॥ जो गुरु आज्ञा देई तो खाई ॥ नांहि तो भूख्यो रहि जाइ ॥ परंतु मांगे नांहि ॥ जो मांगि भिक्षा हू आज्ञा बिना नहि लीनी जाय तो गुरुको (द्रव्य) केसे लियो जाइ ? ॥ तातें श्रीआचार्यजी विवेकधैर्याश्रय में लिखे हैं ॥ जो “त्रिदुःख सहनं धैर्य” ॥

जब मुगल ठाकुर ले गयो तब पद्मनाभदास चाहे तो भस्म करि डारें परि पद्मनाभदास (कष्ट) सहे ॥ आप सात दिन भूखे रहे ॥ वासों कछू न कहे ॥ (यह अलौकिक दुःख कह्यो) यह लौकिक दूःख जो बेटी परज्ञातकों दिनी ॥ यह ज्ञातमें निंदा सो सहे ॥ खानपानादिक को दुःख

सो सहे ॥ परंतु धर्म न छोडे ॥ तातें श्रीगोकुलनाथजी श्रीसर्वोत्तमकी टीकामें लिखेहैं ॥ कोटिन वैष्णवनमें दूर्लभ पद्मनाभदास सारिखे हें ॥ सो श्रीआचार्यजी के मारगको **श्रीआचार्यजीके स्वरूपको जानत हे** ॥×

॥ इति प्रसंग ७ समाप्त ॥

सो उन पद्मनाभदास की उपर श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सदा प्रसन्न रहते, तातें इनकी वार्ताको पार नांहि ॥ सो कहां तांई लिखिये ?

॥ वार्ता ४ ॥ **(वैष्णव ५)**

પ્રસંગ ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્યઃ—

આ પ્રસંગ સં. ૧૫૮૩માં બનેલો છે. અને પદ્મનાભદાસને પણ આજ સમયમાં શ્રીઆચાર્યજીના નિગૂઢ સ્વરૂપનું જ્ઞાન પૂર્ણરૂપે થયું હોય એમ નીચેની પંક્તિઓથી જણાય છે.

श्री मुख के वचनामृत सुनिए । અહિં સુધાનું આકર્ષણ છે.

सो या भांति पातरि में एक मुट्ठी दारि की भावना करते ।

× + ×

અહિં ભાવની સિદ્ધિ સ્પષ્ટ જણાય છે. કારણ કે તે તે ભાવનાની વસ્તુ તાદૃશ્ય થતી એમ આ વાક્યથી સમજાય છેઃ—

सा श्रीठाकुरजी सगरी सामग्री के भावसें अरोगते ।

જ્યાં સુધી ભાવની પૂર્ણ સિદ્ધિ નથી થતી ત્યાં સુધી ત્રણે પ્રકારના દુઃખને સહન કરવાની શક્તિ પ્રાપ્ત થતી નથી. જે પદ્મનાભદાસમાં પુત્ર આપવા તેમજ ૧૭૦૦૦ રૂપીઆ સહેજે

× શ્રીઆચાર્યજીના સ્વરૂપ (ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક)નું જ્ઞાનથયેલું છે. વિશેષ જુઓ પ્ર. ૭નું પરિશિષ્ટ રહસ્ય—

પ્રાપ્ત કરવાની શક્તિ હોય તે આવું કષ્ટ શું કામ વેઠે? મુગલને ત્યાં પણ અસહ્ય કષ્ટ વેઠયું, તે ધૈર્યની પરકાષ્ઠા છે. પરંતુ આ કષ્ટ જુદા પ્રકારનું છે. અહિંઆં તો શ્રીમથુરેશજીમાં શ્રીઆચાર્યજીની ભાવના તેમજ છોલામાં પણ ભાવાત્મક સામગ્રીની ભાવના એ, સમગ્ર ભાવાત્મક સ્વરૂપની પદ્મનાભદાસમાં સ્થિતિ સુદૃઢ છે તે સમજાય છે. (ભાવનું સ્વરૂપ જુઓ વાર્તા રહસ્ય) અને એ ભાવની પ્રાપ્તિ થયા પછી સ્વરૂપની બાહ્ય અપેક્ષા રહેતી નથી માટેજ પદ્મનાભદાસે શ્રી મથુરેશજીને પૂછયું महाराज आपकों श्रीआचार्यजी के घर पधारिवे की इच्छा होई तो उहां नाना प्रकारकी सामग्री हे ॥

જે ભાવમાં બાહ્ય સ્વરૂપની અપેક્ષા નથી, તે ધર્મી વિપ્રયોગાત્મક રૂપ જાણવો. (જુઓ દામો૦ હર૦ની વાર્તાના પ્ર. ૧૦નું પરિ. રહસ્ય) તે અહીં પદ્મનાભદાસને સિદ્ધ થયો. અને આ ધર્મી વિપ્રયોત્મક સ્વરૂપ ભાવરૂપ શ્રીઆચાર્યજી (કૃષ્ણાસ્ય) મહાન કષ્ટથી અનુભવાય છે. (જુઓ "વાર્તા–રહસ્ય" તથા શ્રીહરિ૦ કૃત૦ ભાવના) તેથી જ પદ્મનાભદાસ ત્રણે પ્રકારના દુઃખને સહન કરી શકયા. પરંતુ પદ્મનાભદાસને હજુ ભૂતલમાં સ્થિત રાખવાના હોવાથી શ્રીમથુરેશજી તેમની પાસેજ રહ્યા. ત્યાર પછીનો કેટલોક પ્રસંગ "ભાવસિંધુ" માં છે તે અવશ્ય જોવો તેમાં પદ્મનાભદાસની વિકલતા અને અસ્વાસ્થ્ય સહેજે જણાઈ આવે છે.

તુલસાંની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ—

આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યજીના હૃદયરૂપ નિરોધાત્મક લીલાના યશ સ્વરૂપ છે. તેમાં વિશેષ કહેવું વ્યર્થ છે. કારણ કે યશનું સ્વરૂપ ત્યારેજ પ્રકટે છે જ્યારે કોઈ અસાધારણ કાર્ય સિદ્ધ થાય છે. તેજ પ્રકારે તુલસાંદ્વારા શ્રીઆચાર્યચરણના ભાવાત્મક પ્રભુ શ્રીગોપીજનવલ્લભે લોકવેદાતીત સ્વતંત્ર શરણમાર્ગરૂપ ભક્તિને આ વાર્તામાં

પ્રકટ કરી (જુઓ પ્રસંગ ૧નું રહસ્ય) અને તે અસાધારણ લોકવેદ વિરૂદ્ધ કાર્યની સિદ્ધી તેજ આ વાર્તાના યશ સ્વરૂપનું નિરૂપણ છે. લોક અને વેદમાં વિરૂદ્ધાચરણથી અપયશની પ્રાપ્તિ છે. કિંતુ આ સ્વતંત્ર ભક્તિમાર્ગમાં લોક વેદ વિરૂદ્ધ આચાર હોવા છતાં યશ સ્વરૂપ શ્રીકૃષ્ણની સ્થિતિ હોવાથી તે સ્વયં (સ્વતંત્ર ભક્તિ) યશ સ્વરૂપ છે. અને તે આ વાર્તામાં નિરૂપેલી છે. માટેજ આ વાર્તા યશ સ્વરૂપ છે.

તુલસાંનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ—

પદ્મનાભદાસનું લગ્ન સં. ૧૫૩૪ માં એક કન્નોજીયા બ્રાહ્મણની કન્યા સાથે થયું હતું. પદ્મનાભદાસની સ્ત્રીની ઉમર તે વખતે બાર વર્ષની હતી જ્યારે પદ્મનાભદાસની ઉમર વર્ષ ૧૪ ની હતી. જ્યારે પદ્મનાભદાસ વર્ષ ૧૮ ના થયા ત્યારે સંવત ૧૫૩૮ માં તેમને ત્યાં એક પુત્રીનો જન્મ થયો. અને તેનું નામ પદ્મનાભદાસે તુલસાં રાખ્યું. આ તુલસાં રૂપ ગુણ અને શીલથી ખરેખર અદ્ભુત હતી. તે નાનપણથી જ સ્વભાવે શાંત અને વિશ્વાસુ હતી. વળી તે ધર્મપરાયણ પણ હતી. તેની અત્યંત સાત્વિક વૃત્તિ જોઇને પદ્મનાભદાસ તેના ઉપર ખૂબ મમતા રાખતા. તુલસાં ઉપર પદ્મનાભદાસનો પ્રભાવ સારો હતો. તુલસાં પદ્મનાભદાસની આજ્ઞામાં સદૈવ રહેતી. અને પિતાના વાક્યને ઇશ્વરવાક્ય સમજી તેનું સંપૂર્ણ પાલન કરતી. સં. ૧૫૪૯ માં તુલસાંનું લગ્ન જાતિના એક છોકરા સાથે કરવામાં આવેલું પરંતુ તે થોડાજ મહિનામાં હરિશરણ થઈ જવાથી તુલસાં બાલ વિધવા થઈ. તુલસાંને સંસારનું મુદ્દલે જ્ઞાન ન હતું. શ્રીભાગવત અહર્નિશ શ્રવણ કરતી. અને તેમાં જ તે નિમગ્ન રહેતી. સં. ૧૫૫૨ માં પદ્મનાભદાસ શ્રીઆચાર્યજીની શરણે આવ્યા તે વખતે પદ્મનાભદાસે પોતાના સમગ્ર કુટુંબને પણ સમર્પણ કરાવ્યું. તેજ સમયે તુલસાં પણ શરણે આવી. પછી સં. ૧૫૫૬ માં જ્યારે શ્રીમથુરેશજીને પદ્મ-

નાભદાસે ઘરમાં પધરાવ્યા જ્યારે તુલસાં પણ ભગવત્સેવામાં ધીરે ધીરે અનુકૂળ થઈ. થોડા સમયમાં તો તુલસાંની શ્રીમથુરેશજીમાં પૂર્ણ આસકિત થઈ. અને મથુરેશજીને જ પોતાનું સર્વસ્વ માનવા લાગી.

એક સમય તુલસાં અનોસરમાં શ્રીમથુરેશજીના સ્વરૂપનું સાંગોપાંગ ધ્યાન કરવા લાગી. જ્યારે તે શ્રીમથુરેશજીના સ્વરૂપ સુધાનું પૂર્ણ પાન હૃદયમાં એક ધ્યાનાવસ્થિત પણે કરી રહી હતી તે સમયે જોત જોતાંમાં શ્રીમથુરેશજી ધ્યાનમાંથી અંતર્ધ્યાન થયા. ત્યારે તુલસાંને મહાન્ વિરહ ભગવત્સ્વરૂપની પ્રાપ્તિ અર્થે થયો. તે વિરહથી તુલસાંના હૃદયમાં સ્થિત શ્રીમથુરેશજીનું સ્વરૂપ બહાર આવિર્ભાવ પામ્યું.* અને તે સ્વરૂપે તેને સાક્ષાત્ થઈ દર્શન આપ્યું. તે સ્વરૂપ "છોટા મથુરેશજી" તરીકે ઓળખાય છે અને હાલ તે કોટામાં બિરાજે છે. પછી તુલસાં આ સ્વરૂપની સેવા કરવા લાગી.

(વ્રજ) સંવત ૧૫૮૨ માં શ્રીઆચાર્યજી વ્રજમાંથી અડેલ પધારતી સમયે કનોજ પધાર્યા ત્યારે આ સ્વરૂપને પુષ્ટ કરી તુલસાંને પધરાવી આપ્યું. તુલસાંએ ઘણા વર્ષ સુધી આ સ્વરૂપની સેવા કરી. સંવત ૧૬૩૦ માં જ્યારે પદ્મનાભદાસ લીલામાં પ્રાપ્ત થયા ત્યારે શ્રીગુસાંઈજી કનોજ પધાર્યા અને તુલસાંને ત્યાં મુકામ કર્યો. (જુઓ પ્ર. ૨) તુલસાં તે વખતે ૯૨ વર્ષની હતી. છતાં શ્રીઠાકોરજીની અને શ્રીગુસાંઈજીની સેવા પૂર્ણ ઉત્સાહ અને દૈન્ય યુકત પ્રેમથી કરતી. જેથી શ્રીગુસાંઈજી તેનો પ્રેમ અને દીનતા જોઈ ગદગદ થઈ તુલસાંની ભૂરિ ભૂરિ પ્રસંશા કરતા. (વિશેષ જુઓ વાર્તા) તુલસાં લગભગ ૧૬૩૨ માં ભગવદ્ચરણારવિંદને પ્રાપ્ત થઈ.

---

* સરખાવો શ્રીઆચાર્યજીનો સિદ્ધાંતઃ—

क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत् ।
तदा सर्वं सदानंदं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥ (निरोध० ल०)

अब श्री आचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास की बेटी तुलसां तिनकी वार्ता ओर ताको भाव लिख्यते ।।

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैविक स्वरुप

ए लीलामें पद्मनाभदास की सखी हे ॥ पद्मनाभदास तो चंपकलता अष्टसखीनमें ॥ ओर चंपकलताकी सखी मणिकुंडला ॥ जेसें मणिकी ज्योतिकी कुंडाली चारो ओर फूले ॥ सो (यह) तुलसां सात्विक भक्त हे ॥ पद्मनाभदास की आज्ञामें तत्पर हे ॥

वार्ता प्रसंग १

एक दिन तुलसां के घर वैष्णव आयो ॥ सो श्रीआचार्य जी को सेवक हतो ॥ सो श्रीमथुरानाथजी के दरशन राजभोग आरती के किये ।। तब तुलसां ने उह वैष्णव सों कह्यो ॥ जो उठो स्नान करो ॥ महाप्रसाद लेउ ।। तब उह वैष्णव ने कह्यो जो होंतो घर जाइ स्नान करूंगो ।। तब तुलसां चुप करि रही ।। पाछे वह वैष्णव उठि के अपने घर गयो ॥ तूलसां के मनमे बहोत खेद भयो ॥ जो मेरे घर तें वैष्णव भूख्यो गयो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ताको कारन यह महाप्रसादकी नांहि करी ॥ जोर ज्ञात व्योहारके लिए लीयो नांहीं ॥ सो तुलसां समज गई ॥ तातें आग्रह नांहीं कियो ॥ यह गौड ब्राह्मण हतो ओर लीलामें ललिताजीकी सखि हे ॥ सौरभा इनको नाम हे ॥ इनके अंगते अत्तर गुलाबकी सुगंध आवती ॥ यह वैष्णव ललिताजीकी सखि हे ॥ ओर

तुलसां चंपकलताकी सखि हे ॥ ओर तुलसांके बस श्रीमथुरानाथजी हें ॥ तातें यह वैष्णवनें महाप्रसाद न लियो ॥

जो ललिताजीकी आज्ञा बिना केसें लेउ ? ॥ तातें यह वैष्णव अपने घर चल्यो गयो ॥ तब तुलसांके मनमें खेद भयो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

तब मनमें आई जो ज्ञाति व्योहार के लिये सखडी न लीनी होइगी ॥ तो भलो परि सबेरे पूरी प्रसाद लिवाऊंगी ॥ पाछे मेदा छानि सिद्ध करि राख्यो ॥ पाछे सोइ रही ॥ ता दिन तुलसां ने महाप्रसाद नांहि लियो ॥

पाछे रात्रिकों श्रीमथुरानाथजी ने तुलसां सों स्वप्न में कह्यो ॥ जो सवारे वा वैष्णव को महाप्रसाद लिवाइयो ॥ वह वैष्णव अपने घर महाप्रसाद न लेइगो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यामें यह जताए जो कालि उह वैष्णव महाप्रसाद लेइगो ॥ तू चिंता मति करे ॥ पाछें श्रीठाकुरजी नें उह वैष्णव को जताए ॥ जो तुलसां के इहां महाप्रसाद क्यों न लियो ? ॥ सवेरे लीजियो ॥ ललिताजी की हू आज्ञा हे ॥ सो (तब) ललिताजी हू कहे ॥ तूलसां के इहां महाप्रसाद लीजो ॥ हमारे उनके भावमें भेद नांहि ॥

पाछे प्रातःकाल तुलसांने पूरी करी ॥ श्रीठाकुरजी कूँ जगाए ॥ सेवा सिंगार करन लागी ॥

वार्ता प्रसंग १ इतनेही में उह वैष्णव सवारे नहाय गुरु के श्रीठाकुरजी की सेवासें पहोंचि तुलसां के घर आयो । जब तुलसां भोग समर्पि के बाहर आई ॥ तब वा वैष्णवसों जय श्रीकृष्ण कीयो ॥ ओर तुलसां ने कह्यो ॥ जो उठो स्नान करो भगवद्स्मरण करो ॥ तब वा वैष्णवने कही मे स्नान करि अपरसहि में आयो हूं ॥ (तथा कहुं वार्ता मे यह हे जो स्नान करि तिलक मुद्रा करि भगवद्स्मरण कीयो) समय भए तुलसांने राजभोग सरायो आरती करि ॥ वैष्णव ने दरसन कीयो ॥ पाछे तुलसां श्रीठाकुरजी को अनोसर करि बाहर आई ॥ ओर वा वैष्णव को प्रसाद की पातर धरी ॥ तामें पुरी बुरा दहींकरा ? (दहींथरा) संधानो धर्यो ॥ ओर कह्यो जो प्रसाद लेउ ॥ तब वा वैष्णव ने कही जो यह नाहि लेऊंगो ॥ सखडी महाप्रसाद धरो, लेऊंगो ॥ तब तुलसां ने कह्यो कछू संकोच मति करो यह तो ज्ञाति को ब्योहार हे ॥ तब वैष्णवने कह्यो जो सो तो साँच ॥ पहले तो मेरे मनमें एसी ही ॥ परि अब तो आज्ञा भइ हे ॥ तातें अब तो सखडी महाप्रसाद लेऊंगो ॥ तब तुलसां(ने)सखरी अनसखरी दोऊ धरि वैष्णव के आगे, पाछे वा वैष्णव ने सखडी प्रसाद लीयो ॥ प्रसाद ले वह वैष्णव अपने घर गयो ॥ तब तुलसां मनमें बहोत प्रसन्न भई ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यामें यह जताए ॥ वैष्गव घर आवे ॥ तिनको यथाशक्ति सन्मान करनो ॥ काहे ते श्रीभागवतमें कहे हे ॥ जा घरमें जलादिकनको हू सन्मान नांहि हे ॥ वाको घर सर्पको बिला सो जाननो ॥ सो तुलसांको वैष्णव पर एसो ममत्व हतो ॥

॥ इति प्रसंग १ समाप्त ॥

પ્રસંગ ૧નું સમાધાન અને રહસ્યઃ—

પૂર્વપક્ષીઃ—આ પ્રસંગથી કેટલોક મર્યાદી વર્ગ પંક્તિ ભેદ તોડતો હોય એમ અમને લાગે છે. કારણ કે આમાં તુલસાં અને આગંતુક વૈષ્ણવ બન્ને એક જ્ઞાતિના નહિં હોવા છતાં તેઓએ પંક્તિ-ભેદ તોડી સખડી મહાપ્રસાદ લીધો એ આ પ્રસંગમાં સ્પષ્ટ જ છે.

સિદ્ધાન્તીઃ—આપનું કહેવું યથાર્થ છે કે ઉપર્યુક્ત, બન્ને વૈષ્ણવો એ પંક્તિ-ભેદ તોડી સખડી મહાપ્રસાદ લીધો. પરંતુ સખડી મહા-પ્રસાદ ક્યારે અને કેમ લીધો તે પણ આ પ્રસંગમાં સ્પષ્ટ જ છે. જુઓ :—तब तुलसांने कह्या कछू संकोच मति करो ॥ यह तो ज्ञाति को ब्योहार हे ॥ (અહીં સ્વયં તુલસાં જ્ઞાતિ વ્યવહારનું સમર્થન કરે છે ઉલ્લઘન કરતી નથીજ) तव वैष्णवने कह्यो जो सो तो साँच ॥ पहेले तो मेरे मनमें एसी हो ॥ (અહીં આગંતુક વૈષ્ણવે પણ જ્ઞાતિ વ્યવહારને માન્ય કરેલો સ્પષ્ટજ છે) परि अब तो आज्ञा भई हे ॥ (અહીં સખડી મહાપ્રસાદ લેવાનું કારણ બતાવ્યું અને ભગ-વદાજ્ઞા લોક વ્યવહારથી શ્રેષ્ઠ છે તે સિદ્ધ કર્યું છે) तातें अब तो सखडी महाप्रसाद लेउगो ॥

આ પંક્તિઓથી આપ જાણી શકો છો કે આહિં તુલસાં અને આગંતુક વૈષ્ણવની જ્ઞાતિ વ્યવહાર તોડવાની કે મર્યાદા ઉલ્લંઘન કરવાની મુદ્દલે ઇચ્છા ન હતી. પરંતુ કેવલ ભગવદાજ્ઞાથી જ તેઓએ વ્યવહારને તોડ્યો. આ જ્ઞાતિ વ્યવહાર લોક સિદ્ધજ હતો. વેદસિદ્ધ પણ ન હતો. કારણ કે બન્ને બ્રાહ્મણ જ હતાં. ફક્ત આચાર વિચારને લઇને જ તેઓમાં ભિન્નતા છે. એટલે ભગવદાજ્ઞા આગલ આ લોકવ્યવહાર ટકી શકે નહિ જ. જ્યાં પ્રત્યક્ષ રૂપે (કોઈ પણ રીતે) વિશેષ પ્રકારની ભગવદાજ્ઞા થાય ત્યાં પરોક્ષાત્મક સામાન્ય પ્રકારની વેદ આજ્ઞા, અને અન્ય સર્વ (મર્યાદા) નો ત્યાગ કહેલો છે ત્યાં બિચારા લોકવ્યવહારનું મહત્ત્વ તો હોયજ ક્યાંથી? જુઓ શ્રીઆચાર્યચરણ શી આજ્ઞા કરે છે?

"सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया।" (नवरत्न)

"विशेषतश्चेदाज्ञा स्याद् अंतःकरणगोचरः॥

तदा विशेष गत्यादि भाव्यं भिन्नं तु दैहिकात्' (वि० धै० आ०)

પુષ્ટિમાર્ગમાં ભગવદાજ્ઞા જ મુખ્ય પ્રમાણ રૂપ (प्रमाणंभगवद्वाक्यैः) માનેલી છે. તેના અભાવમાં ગુરૂએ બતાવેલી સેવાની મર્યાદા (રીત) મુખ્ય છે.

આ સેવાની મર્યાદામાં યથાધિકાર લોક વેદનો સમાવેશ થઇ જ જાય છે.

પૂર્વપક્ષી:—આવા પ્રકારની ભગવદાજ્ઞા થવાનું કારણ શું?

સિદ્ધાન્તી:—આવા પ્રકારની ભગવદાજ્ઞામાં તુલસાંનો શુદ્ધ પ્રેમજ એક માત્ર કારણભૂત છે. લોક અને વેદમાં પણ એ સ્પષ્ટજ છે કે ભોજનના સમયે યદિ કોઈ અતિથી પોતાના ઘરે આવે તો તેને યથાશક્તિ સત્કાર અવશ્ય કરવો, એ ગૃહસ્થાશ્રમી માત્રનું કર્તવ્ય છે, અન્યથા તે ગૃહસ્થાશ્રમી (યદિ વિરક્ત પુરૂષ પણ ઘર કરીને રહેતો હોય તો તેને પણ ગૃહસ્થિત હોવાથી આ ધર્મ લાગુ પડે છે) પતિત થાય છે.

આવા પ્રકારે તુલસાં ગૃહસ્થિત ઉપરાંત વૈષ્ણવો ઉપર પરમ પ્રેમ રાખતી હતી. અને તે પ્રેમમાં પદ્મનાભદાસની કૃપાજ કારણભૂત હતી (જુઓ પદ્મનાભદાસની વાર્તા પ્રસંગ ૪)

સર્વેશ્વર સર્વાત્મા પ્રભુ ઉપર પરમ વિશુદ્ધ નિષ્કામ અને પૂર્ણ પ્રેમ થયો ત્યારે જ જાણવો જ્યારે પ્રભુના સંબંધવાળી તમામ વસ્તુ (વેષ, ચિહ્ન, ભાષા, સેવોપયોગી પદાર્થ અને સેવકો આદિ) ઉપર પ્રભુવત્ સ્નેહ સહજ થાય.* (બનાવટી અથવા કથન માત્ર નહિ) તો વૈષ્ણવો ઉપર પ્રેમ હોય તેમાં આશ્ચર્ય શું ?

માટેજ શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુ પણ વૈષ્ણવોમાં પોતાપણાનું મમત્વ કરવું તેને માટે આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છેઃ—

स्वकीयता तदीयेषु तद्भिन्ने भिन्नता मता ॥ १८ ॥ (शि० १)

વળી વૈષ્ણવો ઉપર કેવો ભાવ હોવો જોઇએ તે માટે આ પ્રમાણે આજ્ઞા કરે છેઃ—

तदीयेषु च तद्बुद्ध्या **वरः स्थाप्योविशेषतः** ।
यथा दूतीषु भवति विषयिणां मतिस्तथा ॥ १९ ॥ (शि० १)

આવાં તો ઘણાં વાકયો સર્વ ભક્તિમાર્ગના ગ્રન્થોમાં **સિદ્ધાન્ત રૂપે** પ્રાપ્ત છે (તે અમે દયા ભવૈયાની અને અન્ય વાર્તાઓમાં આપીશું) એટલે દરેક વૈષ્ણવોનું સહજ કર્તવ્ય છે કે પોતાને ત્યાં સમય ઉપર આવેલા વૈષ્ણવનું (વેશધારી યા નામધારીનું પણ) યથા શક્તિ સાદર શ્રદ્ધાપૂર્વક સન્માન કરેજ (કિંતુ સંગ તો વિચારીને જ કરવો) તે સિદ્ધાંતમાં નિચોડરૂપ એક દોહો અત્યંત ઉપયોગી હોવાથી અહિં આપ્યો છેઃ-

हरिजन आवे द्वारपें हसि नमावे शीश ।
वाके मन की वे जाने मेरे मन जगदीश ॥ (तुलसी)

---

* લોકોમાં પણ એક ક્ષુદ્ર વસ્તુના પ્રેમનું દ્રષ્ટાંત મોજુદ છે. અને તે મજનું નું. મજનું લોકમાં એટલો ઉત્કૃષ્ટ પ્રેમી થયો કે લૈલાંના ગામના કુત્તા ઉપર પણ લૈલાંવત્ પ્યાર કર્યો. એ શુદ્ધ પ્રેમની સહજ નિશાની છે.

જ્યારે આ કર્તવ્ય સર્વ સામાન્ય ને માટે પણ છે તો પરમ ભાગવત શુદ્ધ અને નિર્દોષ બ્રહ્મ દ્રષ્ટિવાળી પુર્ણ પ્રેમી તુલસાંને માટે હોય તેમાં આશ્ચર્ય શું ?

આથી જ્યારે આગંતુક વૈષ્ણવ સમય ઉપર (અનસખડી નહિ હોવાના કારણથી) પોતાના ઘરમાંથી વિમુખ ગયો ત્યારે તુલસાંને અત્યંત કલેશ થયો. અને તે સ્વાભાવિક છે. "**भक्त विरह कातर करुणामय डोलत पाछें लागे**" (सूर०) એવા કારૂણીક પ્રભુથી તે કલેશ સહ્યો ન ગયો. જેથી બન્નેને આજ્ઞા કરી. ભગવદાજ્ઞા થવાનું આ કારણ છે.

પૂર્વપક્ષી:--સખડી મહાપ્રસાદ જ લેવાની ભગવદાજ્ઞા થવાનું કારણ શું ? અનસખડી પ્રસાદથી પણ વૈષ્ણવનું સન્માન થઈ શકતું હતું. અને તેથી લોકવ્યવહાર પણ સચવાતો હતો.

સિદ્ધાન્તી:—આપનું કહેવું ઉચિત છે. પરંતુ સ્વયં શ્રીકૃષ્ણે પ્રકટાવેલા લોકવેદાતીત નિર્ગુણ ભક્તિમાર્ગનું સ્વરૂપ સમજાવવાને અને લોકમાં પણ તેની ઉત્કૃષ્ટતા સિદ્ધ કરવાને અર્થેજ આવા પ્રકારની (લૌકવેદ વિરૂદ્ધ) સ્વતંત્ર આજ્ઞાઓ ભક્તોના ચરિત્રોમાં તેમજ ભક્તિમાર્ગના સિદ્ધાન્તાત્મક પ્રસ્થાન ચતુષ્ટય આદિ ગ્રન્થોમાં પણ જોવામાં આવે છે.

દષ્ટાંત રૂપેઃ—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥ (गीता)

ગીતામાં શ્રીકૃષ્ણે બે પ્રકારના શરણ માર્ગ અર્જુન પ્રતિ કહેલા છે. એકથી ચાર અધ્યાય સુધીમાં જ્યાં જ્યાં શરણનું વર્ણન છે, ત્યાં ત્યાં વેદોકત શરણનો પ્રકાર કહેલો છે. અને પાંચમા અધ્યાયથી જેમ જેમ અર્જુનને શ્રીકૃષ્ણ પ્રતિ દ્રઢ વિશ્વાસ થતો ગયો તેમ તેમ તેને સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક શરણ માર્ગનો ઉપદેશ કરેલો છે. વેદોકત

શરણમાર્ગ એ પ્રમાણ સ્વરૂપ છે અને તેની શકિત પણ મર્યાદિત છે. જ્યારે સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક (જેમાં શ્રીકૃષ્ણજ સ્વયં શરણ રૂપ હોય તે) શરણમાર્ગ પૂર્ણ સામર્થ્ય યુકત અને અમર્યાદિત છે. આ પ્રમેયાત્મક શરણમાર્ગ સ્વયં ફલ સ્વરૂપ છે. અને તે શ્રીમદાચાર્યચરણે શ્રીકૃષ્ણના હાર્દને જાણી આ વિપરીત આચાર વિચાર યુકત કલિકાલના જીવોના ઉદ્ધારાર્થે તેનો ઉપદેશ કર્યો. તેથી શ્રીગુસાંઈજીએ શ્રીઆચાર્યજીનું નામ સર્વોત્તમસ્તોત્રમાં " पृथक् शरण मार्गोपदेष्टा " યોજ્યું છે. (વિશેષ આ પ્રસંગ શ્લોકો દ્વારા સમજાવીને આગલ ઉપર વિવેચન કરીશું)

ઉપર્યુકત શ્લોકમાં શ્રીકૃષ્ણે પૂર્ણ રૂપે સ્વતંત્ર શરણમાર્ગ અર્જુન આગલ પ્રકટ કરી દીધો છે. તે આ પ્રકારેઃ--

સર્વ ધર્મો (લોકવેદાદિના) ને છોડવાથી થતું જે પાપ તેમાંથી હું તને (અર્જુનને) મુકત કરીશ. અહીં પોતાના સ્વરૂપ બલનો પ્રયોગ બતાવ્યો છે. એટલે કર્તુ અકર્તુ અન્યથા કર્તુંમ્ સર્વ સામર્થ્યવાન શ્રીકૃષ્ણના શરણસ્થ જીવને લોકવેદાદીનાં શાસનો લાગુ પડતાં જ નથી. એટલે ત્યાં (સ્વતત્ર પ્રમેયાત્મક શરણમાર્ગમાં) તેમાં (વેદાદિમાં) કહેલા દોષોની જરા પણ સંભાવના રહેતી નથી જ. આનું નામજ પુષ્ટિ (સ્વતંત્ર) શરણ માર્ગ છે. જેમાં શ્રીકૃષ્ણજ એક માત્ર રક્ષક છે. આ માર્ગમાં દ્રઢતાપૂર્વક જેઓ સ્થિર છે, અથવા પ્રભુ જેને સ્વયં લોક અને વેદમાં અસ્વાસ્થ્ય પ્રાપ્ત કરાવીને સ્થિત કરે છે, તેને વેદાદિના શાસનની જરાય અપેક્ષા રહેતી નથી જ (જે પુરૂષો પુષ્ટિ ભકિતમાં દ્રઢ નિશ્ચયવાળા નથી તેઓ માટે વેદાદિમાં કહેલા સાધન ધર્મોની અત્યંત અપેક્ષા છે. એ નિશ્ચે સમજવું) ઉપરોકત સિદ્ધાંતને નારદ ભકિત સૂત્રોની પણ પુષ્ટિ છે. (જુઓ સૂત્ર ૧૪ મું પદ્મનાભદાસની વાર્તાના પ્રસંગ ૪ ની નોંધ)

આવો સ્વતંત્ર પ્રમેયાત્મક ભકિતમાર્ગ લોકમાં પ્રકટ કરી તેની

ઉત્કૃષ્ટતા જણાવવાને અર્થેજ આવા પ્રકારની (લોકવેદ વિરૂદ્ધ) આજ્ઞા સ્વતંત્ર રૂપે શ્રીહરિએ કરી.

હવે આ પ્રસંગનું સૂક્ષ્મ રહસ્ય નિરૂપીએ છીએઃ—

આ પ્રસંગમાં લોકવ્યવહાર સાચવીને તેથી (પ્રતિબંધાદિથી) ઉત્પન્ન થતા ભગવદ્વિષયક તાપક્લેશનું અનુસરણ કેવી રીતે (દૈન્યતાપૂર્વક) કરવું ? તે તુલસાંએ સ્વયં દૈવીજનોના હિતાર્થે કરી બતાવ્યું છે.

જ્ઞાતિ વ્યવહારનો વિચાર કરીને જ તુલસાંએ તે વૈષ્ણવને જરાયે પ્રસાદ લેવાનો આગ્રહ ન કર્યો. પરંતુ તેથી (આજ કાલની માફક) હૃદયમાં સંતોષ કરી તુલસાં બેસી પણ ન રહી. પોતાના ઘરમાં સમય ઉપર આવેલા પોતાના પરમ પ્રિય પ્રભુના સંબંધવાળા વૈષ્ણવનો પોતાના તરફથી સત્કાર ન થયો તેનો તુલસાંને અત્યંત તાપ થયો. તેના ફલ સ્વરૂપ શ્રીપ્રભુએ તેની આર્તિ પૂર્ણ કરી.

એટલે તાપાત્મક સ્વરૂપ શ્રીઆચાર્યજીની ધારણા માત્રથી જ શ્રીઠાકુરજી લીલા પરિકર સહિત તુલસાંને સાધન રૂપ થયા (આનું નામજ પુષ્ટિમાર્ગ અથવા સ્વતંત્ર ભક્તિમાર્ગ, આ માર્ગમાં શ્રીકૃષ્ણજ પ્રમાણ પ્રમેય સાધન અને ફલરૂપ હોવાથી વેદાદિ પ્રમાણોની અપેક્ષા હોતી નથીજ.) અને તે તાપાત્મક શ્રીવલ્લભ લીલામધ્યપાતી હોવાથી સર્વ લીલા આપોઆપ સાનુકૂળ બને છે.

આવા સ્વતત્ર ભક્તિમાર્ગમાં શ્રીહરિ પણ બાધ કરવાને સમર્થ નથી તો વેદાદિ તો બાધ કેમ જ કરી શકે? (हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे ॥)

આ પ્રકારે આ પ્રસંગમાં સ્વતંત્ર ભક્તિમાર્ગનું નિરૂપણ કર્યું. આ પ્રસંગમાં શ્રીઆચાર્યજીનું તાપાત્મક સ્વરૂપ કહ્યું. (જુઓ "વાર્તા–રહસ્ય.")

बहुरि एक समे× तुलसां के घर श्रीगुसांईजी पधारे ॥

वार्ता प्रसंग २

तब तुलसां ने बहुत भली भांति सों सेवा कीनी ॥ श्रीठाकुरजी तें अधिक जानि के सेवा कीनी ॥ तब श्रीगुसांईजी बहुत प्रसन्न भए ॥ ओर एक दिन श्रीगुसांईजी भोजन करि के पोढे हते ॥ तुलसाँ भगवद्वार्ता करि श्रीगुसांईजीकों प्रसन्न कीए ॥ तब तुलसां सों अति प्रसन्नता में भगवद्वार्ता करत में श्रीगुसांईजी ने श्रीमुख सों कह्यो ॥ जो पद्मनाभदास की संतति एसीही चाहिए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

याको अर्थ यह जो लीलामें सखी हे ॥ एसी क्यों न होई ॥ तहां श्रीगुसांईजी चंद्रावलीजी रूप हे ॥ सो इनको परकीया भाव श्रीठाकुरजी सों हे ॥ तातें हास्य बहोत प्रिय हे ॥ सो कटाक्ष के वचन पूछे जो श्रीठाकुरजी अपने स्वरूपानंद को अनुभव जतावत हे ? तुम हू तो सखी हो ॥ श्रीठाकुरजी की सेवा करि के बस कीए ॥ तातें हमारे साझेमें तुमहू हो ॥ या प्रकार व्यंगके वचन कहे ॥ परंतु तुलसां शुद्ध सात्विक हे ॥ इनकों कटाक्ष बहोत नांहि हे ॥ सुधी हे ॥

पाछे श्रीगुसांईजी ने तुलसां सों पूछी जो श्रीठाकुरजी सानुभावता जतावत हें ? ॥ तब

वार्ता प्र. २ शुरु

तुलसांने कह्यो ॥ जो महाराज अब तो (हम) पेट भरि खइयत हें ओर नींद

× સંવત ૧૬૩૦-૩૧માં જુઓ તુલસાં નો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસ.

भरि सोइयत हें । परि श्री आचार्यजी के ग्रन्थ को पाठ नित्य करियत हें ॥ तब श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पेट भरिके खइयत हें ॥ नींद भरिके सोइयत हें ॥ सो यह जो जितनो रस हमारे पेटमें समात हे ॥ जेसें हम पात्र हें ॥ तितनो श्रीठाकुरजी अनुभव जतावत हें ॥ तातें श्रीठाकुरजीकी संग नींद-भरि सोइयत हें ॥ काहेते हमारो स्वकीया भाव हे ॥ तातें सखी हें ॥ चिंता नांहि हे ॥ मुख्य अर्थ यह ॥

ओर गुरु भावसों यह अर्थ जो महाराज हम अनेक जन्म श्रीठाकु-रजीसों बिछुरिके पायो ॥ परंतु काहू योनिमें पेट नांहि भर्यो ॥ ओर सुख सों नींद नांहि आई ॥ अब आपु कृपा करिके सरन लिए ॥ सो अबके जनममें पेट हू भर्यो ॥ ओर श्रीठाकुरजीको एक आश्रय करिकें सोएहू ॥ सगरे जनम अविद्या करि दुःखमें बिताए ॥ एक अर्थ यह ॥

ओर दैन्य पक्षमें यह जो हमकों कहा अनुभव करावें ॥ पेट भरिके खइयत हें ॥ नींद भरिके सोइयत हें ॥ जेसे पशुको खाइवेको ओर सोइ-वेको काम ॥ ओर काम परवसतें कोई लादे जो मारे तब करे ॥ तेसें हमहू प्रीति खानपानमें हे ॥ सेवा लोगनकी निंदा भए ते है ॥ जो बडे पद्मनाभदासकी संतति सेवा नांहि करत ॥ या प्रकार लोगनकी प्रतिष्ठा अर्थ ॥ तातें हमकों कहा अनुभव जतावें ? ॥ श्रीसूरदासजीनें गायो हे ॥ "सूर अधमकी कोन चलावें उदर भरे अरु सोये" ॥ एसे अधम जो हे ॥ तिनकी बात नांहि करनी ॥ जो सरीरको सुख चाहत हे ॥ या प्रकारके हम हें ॥ परंतु श्रीआचार्यजी के ग्रन्थको पाठ सदा करियत हें ॥

ताको भाव यह जो एसेहू अधमको श्रीआचार्यजीके ग्रन्थ मात्र कहे ॥ भावहू न जानत होइ तो पाठहीके किए ते श्रीठाकुरजी सगरो अनुभव जतावे ॥ तातें यह कहि अपनो पुरुषारथ नाहिं कहे ॥ श्रीआचार्यजीको प्रताप कहे ॥ जो उनके ग्रन्थके पाटतें कृपा प्रभू करत हें ॥ या प्रकार प्रेममें लपेटे वचन तुलसांके सुनिके श्रीगुसांइजीको हृदय भरि आयो ॥

॥ इति प्रसंग २ समाप्त ॥

एसी भगवदीय तुलसां हती ॥ जिनके उपर श्रीगुसांईजी सदा प्रसन्न रहते ॥ तातें इनकी वार्ताको पार नांही ॥ सो कहां तांई लिखिये ॥

यह वार्ता ४की अन्तर्गत हे तातें वार्ता ४ (९६ मध्ये । वैष्णव ७ भए ॥) (६ठे वैष्णव जिनने तुलसांके यहां प्रसाद लीयो सो)

પારવતીની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્ય:-

આ વાર્તા શ્રીધર્મરૂપ છે.

શ્રીનું સ્વરૂપ આગળ કહ્યા પ્રમાણે (જુઓ કૃષ્ણદાસ મેઘન અને પદ્મનાભદાસની વાર્તા) "श्रियोहि परमाकाष्ठा" इति वचनात् સ્વામીની આજ્ઞા ઉપર પરમ વિશ્વાસ છે.

અહીં પણ પારવતીએ શ્રીગુસાંઈજીની આજ્ઞા ઉપર પૂર્ણ વિશ્વાસ રાખી શ્વેતકુષ્ઠથી થતી ગ્લાનીનો સર્વાંશે ત્યાગ કર્યો અને તે ભગવત્ સેવામાં સ્થિત રહી. જુઓ વાર્તાના આ શબ્દો:—

जो प्रभूनकी (श्रीगुसांईजी की) आज्ञा प्रमाण चलती ।

પારવતી ને શ્રીગુસાંઈજી ઉપર દૃઢ વિશ્વાસ હતો માટે અન્ય ઔષધિ આદિ કોઇ પણ ઉપાય ન કરતાં શ્રીગુસાંઈજી ઉપરજ

વિશ્વાસ રાખી શ્રીગુસાંઈજીને પત્રદ્વારા પોતાની ગ્લાનીનું નિવેદન કર્યું (રોગનું નહીં)

જુઓ આ શબ્દો:—

मेरी बिनती तुम श्रीगुसांइजी सों करियो ॥ मेरी देहको यह प्रकार भयो हे ॥ तातें मोकों सेवा करत पाक करत बहुत ग्लानि आवत हें ॥

અને શ્રીગુસાંઈજીની કૃપાથીજ હું સારી થઈ છું. એવો દ્રઢ વિશ્વાસ પારવતીને હતો.

જુઓ આ શબ્દો:—तामें लिखि जो महाराज के प्रतापतें नीकी भई हों ॥

આ બધા શબ્દોથી એ સિદ્ધ થાય છે કે પારવતી ને શ્રીગુસાંઈજી ઉપર અતુલીત શ્રદ્ધા હતી. અને તે સ્વામી પ્રત્યેની શ્રદ્ધા-વિશ્વાસ જ–શ્રીધર્મરૂપ છે.

પૂર્વપક્ષી:—

તુલસાં, પારવતી, અને રઘુનાથદાસ ત્રણે શ્રીઆચાર્યજીના સેવકો હોવા છતાં શ્રીગુસાંઈજી દ્વારા તેમના ઉપર ભગવત્કૃપા કેમ થઈ ?

સિદ્ધાન્તી:—પ્રશ્ન યથાર્થ છે. આ ત્રણે ભક્તો સ્વકીય ભાવવાળા છે, એટલે શ્રીઆચાર્યજીએ તેમને શરણે લીધા. પરન્તુ તેઓ ક્રિયા પ્રાધાન્ય બાહ્ય ધર્મરૂપ સંયોગ રસવાળા હોવાથી સગુણ છે. (જુઓ નિર્ગુણ–સગુણ ભેદ "વાર્તા માહાત્મ્ય") એટલે તેઓને પરકીય ભાવદ્વારા સ્વકીયત્વની વૃદ્ધી છે. તેથી શ્રીગુસાંઈજી પરકીય ભાવરૂપ શ્રીચંદ્રાવલીજીનું સ્વરૂપ હોવાથી તેમના દ્વારા આ ભક્તોના ભાવનું પોષણ છે. (વિશેષ શ્રીગુસાંઈજીના સ્વરૂપનો પ્રકાર વાર્તા ભાગરમાં આપવામાં આવશે ત્યાં જોવું.)

પારવતીનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ-

પદ્મનાભદાસ ને કુલ ત્રણ સંતતી ક્રમશઃ તુલસાં, જનાર્દન, અને નાની પુત્રી યમુના હતી. જનાર્દનનો જન્મ સં. ૧૫૪૦માં તુલસાંના જન્મથી બે વર્ષ પછી થયો હતો. અને નાની પુત્રી યમુનાનો જન્મ સંવત ૧૫૪૬માં થયો હતો.

જનાર્દન જ્યારે અગ્યાર વર્ષનો થયો ત્યારે તેનું લગ્ન એક જ્ઞાતિની દસ વર્ષની સુન્દર રૂપવતી પારવતી નામની કન્યા સાથે પદ્મનાભદાસે કર્યું.

જનાર્દન સંવત ૧૫૬૦માં વીસ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને ત્યાં એક રઘુનાથ નામક પુત્રનો જન્મ થયો. તે પુત્ર પાછળથી ઘણોજ વિદ્વાન અને સુપ્રસિદ્ધ થયો. (જુઓ વાર્તા)

ભાગ્યવશાત્ જનાર્દન સં૦ ૧૫૬૩માં હરિશરણ થયો. તે વખતે રઘુનાથદાસનું લાલન પાલન તેની માતા પારવતી પૂર્ણ પ્રેમથી કરતી.

પારવતી એક દ્રવ્યવાન પિતાની પુત્રી હોવાથી તેણીને દ્રવ્યની મુશ્કેલી નડી નહિં. તેણીએ રઘુનાથદાસને કાશી મોકલી ભણાવ્યો.

પારવતી પદ્મનાભદાસના હરિશરણ થયા પછી ભગવદ્સેવામાં તુલસાંને અનુકૂળ થઈ. અને શ્રીમથુરેશજીની સેવા અત્યંત પ્રેમથી કરવા લાગી. જેના પરિણામે શ્રીમથુરેશજી એને સાનુભાવ થયા. શ્રીમથુરેશજીએ તુલસાંની ભગવદ્લીલા પ્રાપ્તિ પછી લગભગ ૩ વર્ષ પારવતી પાસે સ્વતંત્રરૂપે સેવા કરાવી. સં. ૧૬૩૫ લગભગ પારવતીની દેહ છુટી.

अब पद्मनाभदास के बेटा ताकी बहू पारवती तिनकी वार्ता ॥ और ताको भाव ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैविक स्वरुप

ए राजसी भक्त हे ॥ पद्मनाभदास तो चंपकलता अष्ट सखीन में तिनकी सखी सुचरिता सो इहां पुरुषोत्तमदास मेहरा क्षत्री भए॥ सो सुन्दर चरित्र सबकों सुखरूप कार्य के करता हें ॥ ए ओर सुचरिता की सखी रुपविलासिनी हे ॥ सो यहां पारवती भई॥ सो लीला में पारवती को रूप बहोत सुन्दर हतो ॥ सो राजसी हे ॥ अपनो रूप बहोत संवारती ॥ सो रूप के गर्व तें लीला सों गिरी*

वार्ता प्रसंग १

सो पारवती श्रीठाकुरजीकी सेवा नीकी भांति सों करती ॥ पुरुषोत्तमदास मेहरा इनको नीकी भांति सों जानते सो जब कन्नोज जातें तब याके घर उतरते ॥ सो एक समें पुरुषोत्तमदास मेहरा कन्नोज आइ अडेल श्रीगुसांईजी के दरशन कों गए ॥ (लीला के गर्व की निवृत्ती के अर्थ) यहां पारवती के हाथ पांच सुफेद भए ॥ तब ग्लानि दैन्यता भई ॥ तब अपने पूर्व स्वरूपकी हू (लीला के स्वरूप की) खबरि

---

* પારવતી પુષ્ટપુષ્ટિ જીવ છે. એટલે તેની ગણત્રી મિશ્રપુષ્ટિમાં છે તે જીવો (મિશ્રપુષ્ટિ) શ્રાપાદિકથી ભૂતલમાં આવે છે. " आसक्तो भगवानेव शापं दापयति " (પુષ્ટિ પ્રવાહ મર્યાદા.)

परी ॥ जो में पुरुषोत्तमदास की सखी हों ॥ मेरो काम इन-द्वारा होयगो ॥ तब पत्र पुरुषोत्तमदास कों लिख्यो जो मेरी बिनती तुम श्रीगुसांईजी सों करियो ॥ मेरी देह को यह प्रकार भयो हे ॥ तातें मोकों सेवा करत पाक करत बहुत ग्लानि आवति हें ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ताको आशय यह हे जो में श्रीठाकुरजी सों रूप को गर्व कीयो (लीला में) ताको फल पायो ॥ अब कब कृपा करेंगे सो श्रीगुसांईजी सों बिनती करि लिखियो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

यह पत्र पठाया ॥ एक मोहर श्रीगुसांईजी कों भेट पठाई ॥ सो पत्र पुरुषोत्तमदास ने श्रीगुसांईजी को बांचि सुनायो ॥ मोहोर आगे राखी ॥ बिनती कीनी ॥ तब श्रीगुसांईजी पुरुषोत्तमदास कों कहे ॥ जो दिन दोई चारि में कहूंगो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

सो याते जो लीला में रूप को गर्व ता अपराध तें (यह) भयो ॥ तथा ओरहू कोई अपराध न होइ ॥ सो बिचारे ॥ तब ओर अपराध नाहिं देखे ॥

---

* पुष्टया विमिश्राः सर्वज्ञाः (श्रीआचार्यचरण.)

फेर तीन दिन पाछे श्रीगुसांईजी ने पुरुषोत्तमदास सों कही ॥ जो पारवती को पत्र लिखो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

जो थोरे दिन में शरीर को भोग निवृत्त होइगो ॥

सेवा में ग्लानि मति करियो ॥ श्रीठाकुरजी थोरेसे दिन में तेरो रोग निवृत्त करेंगे ॥ तब पुरुषोत्तमदास मेहरा ने पारवती को पत्र लिख्यो ॥

तामें श्रीगुसांईजी के श्रीमुख के बचन कहे सो लिखि पठाए ॥ सो पत्र पारवती के पास पहोंच्यो ॥ सो पत्र बांचि के पारवती प्रसन्नता सों सेवा करन लागी ॥ सेवा करत ग्लानि मनमें न लावे ॥ पाछे महिना तीन चारि में हाथ पांव नीके भए ॥

तब पारवती बहोत प्रसन्नतासों सेवा करन लागी ॥ तब फेर श्रीगुसांईजी कों पत्र लिखि, पुरुषोत्तमदास मेहरा की पास पठायो ॥ तामें लिखी जो महाराज के प्रतापतें नीकी भई हों ॥ ओर भेट पठाई ॥ सो पुरुषोत्तमदास मेहराने श्रीगुसांईजी को बांचि सुनायो ॥ तब श्रीगुसांईजी बहोत प्रसन्न भए ॥ सो पारवती एसी भगवदीय हती ॥ जो प्रभून की आज्ञा प्रमाण चलती+ तातें श्रीगुसांईजी सदा इनके उपर प्रसन्न रहते ॥ तातें इनकी वार्ता को पार नांही ॥ सो कहां तांई लिखिये ॥

यह वार्ता ४ की अन्तर्गत हे तातें वार्ता ४ (९६ मध्ये । वैष्णव ९ भये) (पुरुषोत्तमदास मेहरा समेत)

\+ श्री धर्म देखो पारवतीकी वार्ताको रहस्य.

રઘુનાથદાસની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને તેનું રહસ્યઃ-

આ વાર્તા જ્ઞાન ધર્મ રૂપ છે.

પુષ્ટિ ધર્મના જ્ઞાનરૂપ મારગની પ્રણાલીકા, સિદ્ધાન્તરહસ્ય, કૃષ્ણાશ્રય, નવરત્ન, અને સેવાફલ છે. આમાં સમગ્ર પુષ્ટિમાર્ગના ફલાત્મક જ્ઞાનનું નિરૂપણ છે અને તે શ્રીગુસાંઈજીએ રઘુનાથદાસના હૃદયમાં સ્થાપ્યું. (જુઓ વાર્તા)

જ્ઞાની પુરૂષો સેવા કરી શક્તા નથી તેમ અહિં પણ રઘુનાથદાસથી (ક્રિયાત્મક) સેવા થઈ શકી નહિ.

જ્ઞાનધર્મરૂપ શ્રી યદુનાથજીની માફક રઘુનાથદાસે પણ સ્વતંત્ર પણે સેવા કરી નથી.

રઘુનાથદાસ શાસ્ત્ર અને સાંપ્રદાયિક સિદ્ધાંતોના અવલોકનમાં જ જીવન પર્યંત મગ્ન રહ્યા.

રઘુનાથદાસ નો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ-

રઘુનાથદાસના પિતાનું નામ જનાર્દન અને માતાનું નામ પારવતી હતું. તેનો જન્મ ૧૫૬૦માં થયો હતો. પારવતી એ નાનપણથી જ પાલનપોષણ કરી તેને મોટો કર્યો હતો. તેનો પિતા જનાર્દન રઘુનાથદાસને બહુ જ નાની ઉમરનો છોડી પરલોક વાસી થયો હતો. જ્યારે રઘુનાથદાસ વીસ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને વિશેષ શાસ્ત્રીય અભ્યાસાર્થે પારવતીએ તેના મામાની સાથે કાશી મોકલ્યો. ત્યાં તે લગભગ વીસેક વર્ષ રહ્યો અને શાસ્ત્રનું ખૂબ અધ્યયન કર્યું. સર્વે શાસ્ત્રનો પારંગત થયો. પારવતી દ્રવ્યવાન પિતાની પુત્રી હોવાથી રઘુનાથદાસને દ્રવ્ય સંબંધી કોઈ પણ પ્રકારની આપત્તિ પડી નહિ.

પછી રઘુનાથદાસ ઘર આવી પોતાની વિદ્યાના અનુભવાર્થ પંડિતોની સભામાં જવા લાગ્યો. સર્વે જગ્યાએ તેની ખ્યાતિ અત્યંત થઈ.

રઘુનાથદાસને પદ્મનાભદાસે જ શ્રીઆચાર્યજી પાસે બ્રહ્મસંબંધ લેવડાવ્યું હતું. (પછીનો પ્રસંગ વાર્તામાં) રઘુનાથદાસનું અવસાન સંવત ૧૬૩૮ લગભગ થયું,પછી શ્રીમથુરાનાથજી શ્રીગુસાંઈજીને ત્યાં પધાર્યા.

अब श्रीआचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास के नाती पारवती को बेटा रघुनाथदास तिनकी वार्ता आर ताको भाव ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैनिक स्वरुप

पारवती लीला में रूपविलासिनी राजसी भक्त* ओर रघुनाथदासको नाम गुनाभिरान्या ॥ इन में गुन बहोत जो कोई ओरसों एक दिन में काम होइ सो एक घरि में यह करें ॥ सो ए तामसी हे ॥ सो दोऊ सुचरिता की सखि बरावरि की हें ॥ पुरुषोत्तमदास मेहरा की दोऊ आज्ञाकारिनी हें ॥

वार्ता प्रसंग १

सो रघुनाथदास कासी गए ॥ तहां बहोत शास्त्र पढि के श्रीगोकुल आए ॥ श्रीगुसांईजी के दरसन कीए ॥ दंडोत करी ॥ तब श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी के सेवक जानि (के) बहोत आदर सन्मान किए ॥ आप कथा सुबोधिनीजी की कहते ॥ तब रघुनाथदास कों आगे बेठावते ॥ सो एक दिन परमानंद सोनी ने रघुनाथदास सों पूछी ॥ जो तू तो कासीमें बहोत शास्त्र पढ्यो हे ॥ सो आज श्रीगुसांईजी ने कहा कथा कही हे ॥ सो कहो ॥

---

* મિશ્ર પુષ્ટિજીવ

श्रीगुसांईजी श्रीआचार्यजी के सेवक पद्मनाभदास की सखी जानि रघुनाथदास को बहोत आदर करते ॥ ओर परमानंददास को नाम लीला में चंद्रका हे ॥ चंद्रमा की उजियारी वत इन की देह की कांति हे ॥ श्रीगुसांईजी (श्रीचंद्रावलीजी) अनेक चंद्रमारुप तिनकी अंतरंगिनि यह हे ॥ तातें रघुनाथदास सें कटाक्ष के वचन कहे ॥

श्रीहरिरायजी कृत आधिदैनीक स्वरुप

तब रघुनाथदासने परमानंद सोनीसों कह्यो जो तुम सांच पूछो तो में कछू समझत नांही ॥ श्रीआचार्यजी के मारग की परिपाटी ओर मारग की बात नांहि जानत हों रघुनाथदास को मान (विद्या को मद) सब मर्दन व्हे गयो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

यामें यह जताए जो शास्त्रादिक वेद पुरान के पढे तें श्रीआचार्यजी के ग्रन्थको सिद्धान्त जान्यो न जाइ ॥ कृपाहि को मारग हे ॥ सो कृपाहि तें जान्यो जाइ ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

पाछे परमानंद सोनी ने श्रीगुसांईजी सें कही जो महाराज रघुनाथदास तो कछू समझत नांहि ॥ तब श्रीगुसांईजी ने रघुनाथदास कों चारि ग्रन्थ अर्थ सहित पढाए (ओर) मारग की प्रणालिका कही ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

(चार ग्रन्थ के नाम) १ सिद्धान्तरहस्य ग्रन्थ में सगरे मारग को सिद्धान्त बताए ॥ २ कृष्णाश्रय ग्रन्थ में एक आश्रय दृढ करि दिए ॥ ३ नवरत्न ग्रन्थ में लौकिक वैदिक चिंता दूर करि दीनी ॥ ४ सेवाफल में सेवा को फल बताइ दिए ॥ पाछे रघुनाथदास समुझन लागे ॥ श्रीगुसांईजी की कथा को भेद लीला को प्रकार सब जानन लागे ॥ बडे पंडित भए ॥

इति प्र. १ समाप्त.

वार्ता प्रसंग २

सो केतेक दिन पाछे कन्नोज में अपने घर आज्ञा मांगि के आए ॥ भगवत्सेवा में ममत्व बढ्यो ॥ तब माता पारवति सों कह्यो । जो होंतो न्यारो होउंगो ॥ श्रीठाकुरजी की सेवा करोंगो ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

यह कहेवे में अभिप्राय यह हे ॥ जो पारवती ओर रघुनाथदास बराबरि की सखी हे ॥ तामें पारवती राजसी हे ॥ ओर रघुनाथदास तामसी भक्त हे ॥ सो पारवती ने श्रीठाकुरजी बस कीए हें, सेवा करि के ॥ सो भेद रघुनाथदास ने देख्यो ॥ सो एऊ बराबरि के ॥ तामसि सो सह्यो न गयो ॥ जो मेरे

श्रीठाकुरजी इननें मन लगाइ के वस किये हें सो अब में बस करों ॥
तातें पारवति तें कहें ॥ में न्यारो होइ के सेवा करूंगो ॥

तब पारवती ने कही जो भलेही सेवा करि ॥ प्रीति काहू
के बांटे में नांहि ॥ श्रीआचार्यजी की
वार्ता प्रसंग २ गुरु कृपा ते होइगी ॥ पाछे रघुनाथदास
न्यारे भये ॥ सो वाकी माता पारवती
जल भरि लावे ॥ पात्र मांजे ॥ श्रीठाकुरजी की परचारगी
सब करि पाछे अपने न्यारे घरमें आय अकेली लीटी करिके
भावसों भोग धरे ॥ पाछे जलके घूंट सों उतार के लेइ ॥
श्रीठाकुरजी की सेवा शृंगार बिना सगरो राजस
खानपान देह सुख सब त्याग कीयो ॥ या भांति सों
करत दिन द्वे चारि बीते ॥ पाछे श्रीमथुरानाथजीने कह्यो ॥ तू
धन्य हे मेरी सेवा नांहि छोडे ॥ अपनो सुख सब छोडे ॥
मनमें तापहू बहोत कीए ॥ अब तू कबहू तो दारि करि ॥
मेरो गरो अकेली लीटी× लेत खरखरात हे ॥ तब पारवती
ने कह्यो जो महाराज तुम तो रघुनाथदास के इहां दारि भात
खीरि आदि सब सालन सामग्री नित्य अरोगत हो ॥ गरो
क्यों खरखरात हे ? ॥ तब श्रीठाकुरजीने पारवती सों कह्यो ॥
जो मोकों तो तेरो कीयो भावत हे । तातें लीटी अकेली
अरोगत हो ॥

× ક્વચિત બાટીનો પણ ઉલ્લેખ છે.

यह कहि (यह) जताए जो प्रीति की लीटि मोकों प्रिय हे ॥ अहंकार करि छप्पनभोग प्रिय नांहि हे ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

रघुनाथदास के इहांहू अरोगत हों ॥ श्रीआचार्यजी की कान तें ॥ परंतु तेरो कीयो बहोत भावत हे ॥ यह कहि यह जताए ॥ जो भक्तजन सुख लेइ श्रीठाकुरजी लीए जानिए ॥ ओर इतनो कहे पारवती सों ॥ सो पारवती के लिए जो में अपने गरे को नाम लेउंगो ॥ तब यह सगरी सामग्री करेगी ॥ पाछें प्रसाद लेइगी ॥ तब मोकों सुख होइगो ॥

या प्रकार पारवती को सुख विचारे ॥ तब पारवती सगरो सामग्री अपने घर करन कों

वार्ता प्रसंग २ शुरू

दोरी आवती ॥ दार भात साळन सब करती ॥ पारवती ने बिचार्यो जो श्री-ठाकुरजी सुखी होइ सा करनो ॥

पाछे रघुनाथदास कछूक दिन सेवा करि ॥ पाछे ज्ञान भयो जो पारवती की सेवा अहंकार करि छुडाइ !! तातें प्रभू मो पर अप्रसन्न हे ॥ तातें भगवदीय सों मिलि के चळूंगो ॥ तो श्रीठाकुरजी प्रसन्न होइंगे ॥ अहंकार कीए मेरी यहू सेवा जाइगी ॥ यह ज्ञान श्रीगुसांईजीने मारग को सिद्धान्त बतायो हतो, तातें उनकी कृपा तें भयो ॥ तब रघुनाथदास पारवती सों कहे ॥ माता अब तुमही सेवा करो ॥ तुम आज्ञा करो सो में करूं ॥ में चूक्यो ॥ तब पारवती कों कछू ईरसा तो नांही ॥

शुद्ध भक्त हे ॥ सो प्रसन्न होइ रसोई करन लागी ॥ रघुनाथदास सों शृंगारादि करावे ॥ या प्रकार एसें करत पारवती के संग करि रघुनाथदास कों प्रीति भई ॥ तब दोउन को बराबरि अनुभव होन लाग्यो ॥ या प्रकार पद्मनाभदास को परिवार अलौकिक भयो ॥ या प्रकार (८४ मध्ये) वैष्णव सात भए ॥ परंतु पद्मनाभदास के कुटुंब सहित वार्ता एक जाननी तातें वैष्णव ४ भए ॥ (९६ मध्ये वै. १० भए)

રજોબાઈની વાર્તાનું સ્વરૂપ અને રહસ્યઃ-

આ વાર્તા વૈરાગ્ય ધર્મ રૂપ છે.

પુષ્ટિમાર્ગનો વૈરાગ્ય એ વિરહ રૂપ છે. અને તે વિરહનો અનુભવ રજો ને છે. માટે આ વાર્તા પુષ્ટિના વૈરાગ્ય રૂપ કહી છે. "विरहानुभवैकार्थसर्वत्यागोपदेशकः" એ શ્રીઆચાર્યજીનું નામ અહિં સાર્થક છે. રજોને શ્રીઆચાર્યજીના આધિદૈવિક સ્વરૂપનો અનુભવ છે તેથી તેઓ સર્વ પ્રકારની લૌકીકાસક્તિનો સર્વાંશે ત્યાગ કરી આપશ્રીના ચરણમાં સ્થિત છે. "संत्यज्यसर्वविषयांस्तवपादमूलम्" એ શ્રી-ગોપીજનોના વાકયનો અનુભવ રજો કરે છે. શ્રીઆચાર્યજીના અર્થે સર્વ પ્રકારના સુખનો ત્યાગ કર્યો છે.

શ્રીગોકુલનાથજી (ચતુર્થપુત્ર) સર્વોત્તમ ઉપરની પોતાની સ્વતંત્ર ટીકામાં "दासदासीप्रियः" ત્યાં દામોદરદાસને દાસ અને રજોને દાસીમાં અગ્રગણ્ય ગણે છે એટલે આ રજો દામોદરદાસની સમાન કોટીનાં છે.

રજોને પરમાનંદરૂપ વિપ્રયોગાત્મક સ્વામિની સ્વરૂપનો અનુભવ છે. (જુઓ "વાર્તા-રહસ્ય")

રજોનો શેષ ભૌતિક ઇતિહાસઃ-

કાશીમાં એક ક્ષત્રી રહેતો હતો. તે ગંગાજીનો પૂર્ણ ભક્ત હતો તેમજ તે દ્રવ્યસંપન્ન પણ હતો. તેને કોઈ સંતાન નહતું. જ્યારે તે લગભગ ૫૦ વર્ષનો થયો ત્યારે તેને સંતાનની આશા છોડી દીધી. અને પોતાના દ્રવ્યનો ઉપયોગ દાનપુણ્યમાં કરવાનો નિશ્ચય કર્યો. એજ રાત્રે શ્રીગંગાજીએ તેને સ્વપ્નમાં આજ્ઞા કરી કે હે ક્ષત્રી! તું શોચ ન કર, તારે ત્યાં એક અદ્‌ભૂત કન્યાનું પ્રાકટ્ય થશે. તેથી તે ક્ષત્રીએ શ્રીગંગાજીના વચન ઉપર વિશ્વાસ રાખી કેટલોક સમય ધાર્મિક કૃત્યોમાં વિતાવ્યો. થોડા સમય બાદ તેને ત્યાં એક પુત્રીનું પ્રાગટ્ય થયું તેનું નામ તેને રજો રાખ્યું. રજો એક અતિ અદ્‌ભૂત સ્વરૂપવાન હતી તેના લલાટમાં પૂર્ણ ભગવદ્‌તેજ ઝળહળતું હતું. તે એટલી બધી સ્વરૂપવાન હતી કે તેની પરછાંઈ ધરતી ઉપર પડતી. છતાં તે પૂર્ણ વૈરાગ્યયુક્ત હતી. નાનપણથી જ નિત્ય તે શ્રીગંગાજીનું પૂજન કરવા શ્રીમહાલક્ષ્મી (શ્રીઆચાર્યજીનાં પત્ની) સાથે જતી. જ્યારે તે દસ વર્ષની થઈ ત્યારે તેનું લગ્ન એક જ્ઞાતિના છોકરા સાથે કરવામાં આવ્યું. રજોના પિતાનું ઘર શ્રીમહાલક્ષ્મીજીના પિતા ભટ્ટ જેકીસનજી સાથે જ હોવાથી તે બન્નેમાં અત્યંત પ્રેમ હતો. શ્રીમહાલક્ષ્મીજીના લગ્નનું સમગ્ર ખર્ચ રજોના પિતાએ કર્યું હતું. જ્યારે શ્રીમહાલક્ષ્મીજી શ્રીઆચાર્યચરણ સાથે અડેલમાં કાયમ રહેવા લાગ્યાં ત્યારે રજો પણ પોતાના પતિ અને પિતા સાથે અડેલમાં જ રહેવા ગઈ. રજોનો શ્રીમહાલક્ષ્મી સાથેનો પ્રેમ અત્યંત ગાઢો હતો. શ્રીમહાલક્ષ્મીજી વિના એક ક્ષણ પણ અલગ રજો રહેતી ન હતી. રજો સ્વભાવથી જ પૂર્ણ વૈરાગ્યવાન હતી. તે અહર્નીશ ભગવત્સેવામાં જ પોતાનો સમય વ્યતીત કરતી. શ્રીઆચાર્યચરણે રજોને માથે એક ભગવત્સ્વરૂપ (શ્રીબાલકૃષ્ણજી) પધરાવી આપ્યું હતું. તેની તે અહર્નીશ સેવા કરતી. શ્રીઆચાર્યચરણ ઉપર તેની અતુલીત શ્રદ્ધા હોવાથી તે ભગવત્સ્વરૂપમાં શ્રીઆચાર્યચરણનીજ ભાવના કરતી. અને તેની ભાવનાને અનુસાર શ્રીઆચાર્યચરણ રજોને

અનુભવ કરાવતા. રજો ને વૈષ્ણવો ઉપર પણ અત્યંત પ્રેમ હતો. આવ્યા ગયા વૈષ્ણવોનું નિત્ય મહાપ્રસાદ આદિથી સમાધાન કરતી. દામોદરદાસ હરસાની અને શ્યામદાસ સુતારની તે પૂર્ણ કાળજી રાખતી. સમય ઉપર પ્રસાદ લેવડાવતી. રજોનો જન્મ અનુમાનતઃ સં.૧૫૪૦ લગભગ મનાય છે અને તિરોધાન સં.૧૫૮૭-૮૮નું માનવામાં આવે છે.

अब श्रीआचार्यजी महाप्रभून के सेवक रजो क्षत्राणी तिनकी वार्ता ओर-ताको भाव ॥

सो रजो क्षत्राणी लीला में ललिताजी की सखी हैं ॥ इनको नाम रतिकला हैं ॥ रति जो प्रीति ताकी कला ॥ अथवा रति जो विहार ताकी कला जो जिनको श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजी को विहार सिद्ध होइ ॥ यही भाव में मगन हैं ॥ ओर जानत ही नांही ॥ श्रीस्वामिनीजी के लिए नाना प्रकार की सामग्री करनी ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

निकुंजादिक में रात्रि को दूधादिक अरोगावनो ॥ यह ललिताजी की सेवा हे ॥ तातें यहांहू रजो कें यह नेम जो रात्र की सामग्री नित्य नेम सों श्रीआचार्यजी कों आरोगावनो ॥ सो लीला में रतिकला को बहोत ताप हतो ॥ जो श्रीस्वामिनीजी कों परोसों (एसो) भाग्य मेरो कब होय ? ॥ काहेतें (जो) अरोगावनो सो ललिताजी की सेवा हे ॥ सो केसें मिले ? ॥ ललिताजी तो अत्यंत प्रिय मध्याजी हे ॥ सगरी लीला की सिद्धि करता ॥ सो ताप रतिकला के हृदय को हे ॥ (सो) अब श्रीआचार्यजी (श्रीस्वामिनीजी) मनोरथ पूरन करें, ताप मिटाए ॥ काहेतें ? ॥ नारायणदास ब्रह्मचारी ब्राह्मण हते ॥ तिनकी करी खीरि श्रीगोकुलचंद्रमाजी खीरि लेवे कों श्रीआचार्यजी सों कहे ॥ तब श्रीआ-

र्यजी कहे ॥ पाक केसें लियो जाइ ? ॥ पाछे श्रीगोकुलचंद्रमाजी के ग्रन्थ (वाक्य) तें लीए ॥

ओर इहां रजो क्षत्राणी हती॥ ताकी अनसखडी आप नित्य नेम सों लेते ॥ सो लीला संबंध को भाव बिचारि के॥ तथा रजो एकांगी अनन्य भक्त के बस होइके, सो प्रेमके भरतें मर्यादा छूटि जाय ॥ यामें रजो को प्रेम जताए ॥ रजो के प्रेमतें मर्यादा स्वरुप को तिरोधान होइ जातो ॥ लीला रस में मगन होइ सामग्री अंगीकार करें ॥

वार्ता प्रसंग १ — सो रजो नित्य पकवान सामग्री करि रात्रकों ले आवति ॥ सो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आरोगते ॥ वाके नेम हतो ॥

सो एक दिन लक्ष्मन भट को श्राद्ध दिन हतो ॥ सो श्रीआचार्यजीने ब्राह्मण भोजन कों बुलाए हते ॥ तहां घृत थोरो सो चहियत हतो ॥ तब श्रीआचार्यजीने एक वैष्णव सों कह्यो जो रजो के इहां ते घृत ले आवो ॥ सो एक वैष्णव जाइ के रजो सों कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजीने घृत मंगायो हे ॥ तब रजोने वा वैष्णव सों कह्यो जो घृत काहेको मंगायो हे ? ॥ तब वा वैष्णवने कह्यो, जो लक्ष्मण भट्टजी को श्राद्ध दिन आज हे ॥ सो ब्राह्मण भोजन कों बुलाए हे तहां घृत घट्यो हे ॥ सो तातें मंगायो हे ॥ तब रजो ने कह्यो जो घृत मेरे नांही हे, जाय कहीयो ॥ तब वैष्णव फिरि आयो ॥ ओर श्रीआचार्यजी सों कह्यो जो महाराज रजो के घृत नांहि हे ॥ तब श्रीआचार्यजी कहे ॥ जो एकबार तू फेरि जा ॥ खीजि के कहियो जो घृत दे ॥ तब वह वैष्णव फेरि आयो ॥ रजो सों

कह्यो ॥ जो श्रीआचार्यजी खीझत हें ।। तातें घी देउ ॥ तोहू रजोने घृत दीनो नाहीं ।। कह्यो मेरे घृत नांहीं हे ॥ कहां ते देऊं ? तब वैष्णव फिरि आय श्रीआचार्यजी सों कह्यो जो महाराज रजो घृत नांही देत ॥ पाछे और ठोरते घी मगाई काम चलायो ।। पाछे रात्र भई ।। तब रजो सामग्री सिद्ध करि श्रीआचार्यजी पास आई ।। तब श्रीआचार्यजी पीठि दे बेठे ।। तब रजोने कह्यो ॥ जो महाराज, जीव तो दोष ते भर्यो हे ।। अपराध कहा जो आप दरसन नांहि देत ।। तब श्रीआचार्यजीने कह्यो जो आज लक्ष्मण भट्टजी को श्राद्ध हतो ॥ सो तेंने घृत क्यों नाहि दीनो ? तब रजोने कही मेरे घी नांहि हतो ॥ तब श्रीआचार्यजीने कही सामग्री कहां ते करि लाई ? ।। तब रजोने कही महाराज आपु के घरमें हू घी हतो क्यों नाहीं लीए ?।। तब श्रीआचार्यजी कहे उह तो श्रीठाकुरजी को हतो ।। वामें ते केसें लीयो जाई ? ।। तब रजोने कही मेरे घरमें कोन हे ? ।। श्रीठाकुरजी तें अधिक आपको स्वरुप हे । सो आपकी लीला संबंधी सामग्री में ते श्राद्ध में कैसे दऊं ? ॥ ओर में लक्ष्मन भट्ट की लोंडी नांहि हों ॥ में तो आपकी लोंडी हों आप मेरी परीक्षा लेन अर्थ घी मगायो, सो पहले वैष्णव पठायो तब तो लौकिक आवेस सों घी घटयो ।। तब आपु कहे रजो सो ले आवो ॥ यह लौकिक मवाह आज्ञा जानि के मेंने घी की नांहि करि ।। सो पाछें आपु यह मनमें बिचारे जो श्राद्ध के लिये ब्राह्मण भोजन में बेगे चाहिए ।।

फेरि जो उह वैष्णव आईकें कह्यो ॥ जो खीजि के कहे घी देहू ॥ तब में मर्यादा जानी ॥ जो पुष्टि कार्य में क्रोध को प्रयोजन हे नांहि ॥ काहेतें भावही सों सगरी वस्तु सिद्ध हे ॥ ओर मर्यादा में तो वेउ वस्तु विना कर्मको नास होइ ॥ (वस्तु तें) पूरनता हें॥ तातें वस्तु के लिये क्रोध हे ॥ जो वह वस्तु आवश्यक चाहिए ॥ तातें मर्यादाकी आज्ञा हु नांहि माने ॥ ओर मर्यादा के कार्यार्थ घी हू नांहि दीयो ॥ पाछें तीसरे पुष्टि के आवेश ते मांगते तो में घी देती ॥ ओर आपुको घी मंगावनो हतो ॥ (तो) इतनो उह वैष्णव सें। कहि देते ॥ जो रजो सो कहियो ॥ तेरे पुष्टि धर्म में हांनि नांहि हे, घी दीजो ॥ तो में काहेको फेरती ॥ ओर महाराज जानि बूझि के कूवा में केसे परूं ? ॥ आपुकी कृपा तें इतनो ज्ञान भयो तब में घी नांहि दीयो ॥ आपु;तो बुद्धि प्रेरक हो ॥ मेरे हृदय में बेठि के घी देवे की नांहि कहे ॥ उहां के घी मगाए ॥ सो में बिना मोल की दासी हों ॥ आपु कृपा करिए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

याहि तें शिक्षापत्र में कह्यो हें * श्रीठाकुरजी की आज्ञा तीन प्रकार की हे ॥ लौकिक आज्ञा प्रवाहसें के करन अर्थ ॥ याहि तें श्रीभागवत में लौकिक आदि कार्य यह तीन हो बरनन हें ॥ अलौकिक कार्य में श्रीठाकुरजी को आश्रय ओर भगवदोयको संग ॥ वैदिक कार्य में तीर्थ देव पूजा कर्मादि ॥ लौकिक में कुटुंब पालनों खानपान शरीर को सुख ॥ सो तीन्यों फलहू न्यारे न्यारे कहे

* જુઓ શિ. ૬ શ્લોક ૪-૫

हैं ॥ लौकिक तें संसार ॥ वैदिक तें स्वर्गादिक ॥ अलौकिक तें भगवद् प्राप्ति ॥ या प्रकार के भेदसों घी नांहि दीयो ॥

वार्ता प्रसंग १ शुरु

तब श्री आचार्यजी प्रसन्न होइ के दरसन दिए ॥ तब रजो नें सामग्री श्रीआचार्यजी के आगे राखि ॥ ओर कह्यो जो अरोगो ॥ तब श्रीआचार्यजीने रजो सों कह्यो जो आजु श्राद्ध दिन हे ॥ सो दूसरी बेर लेनो नांहीं ॥ तब रजो ने कह्यो ॥ जो महाराज घर की होइ सो लोगन के मर्यादा के लीए मति लेहू ॥ यह तो लीयो चाहिए ॥

श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश

ताको अर्थ यह जो लीला के भाव सों **अपने निज स्वरुप सों अरोगो** ॥ अब मर्यादा को आवेश कहां राखोगे ॥ लीला के आवेश में मन दीजे ॥ भक्तन को मनोरथ पूरन करो ॥ इतनो सुनत ही **आप (में) पुष्टि लीला को आवेश व्हे गयो** ॥

मर्यादा की आज्ञा सब जात रही ॥ सामग्री अरोगे ॥ जेसे परमानंदजी गाए ॥ "हरि तेरी लीला की सुधि आवे" ॥ इतनो सुनत ही तीन दिनलों शरीरको अनुसंधान न रह्यो ॥ एसे लीला में आवेस होइ ॥ रजो को मनोरथ पूरन कीए ॥ तातें रजो एकांगी भगवदीय हे ॥

तब रजो के आग्रह तें श्रीआचार्यजी ताहू दिन सामग्री अरोगे ॥ सो वह रजो क्षत्राणी श्रीआचार्यजी महाप्रभून की एसी कृपापात्र भगवदीय ही ॥ ताते इनकी वार्ता को पार नांही ॥ सो कहां तांई लिखिये ॥ (९६ मध्ये वै. ११ भये)

८४ मध्ये वैष्णव ५

वार्ता समाप्त ॥

શંકા સમાધાન અને રહસ્ય:–

પૂર્વપક્ષી:—આ વાર્તામાં વર્ણાશ્રમ ધર્મનો સ્પષ્ટ વિરોધ કહેલો છે. અને શ્રીઆચાર્યચરણ વર્ણાશ્રમ ધર્મના અત્યંત પક્ષપાતી છે માટે આ વાર્તા સંશોધ્ય છે.

સિદ્ધાન્તી:—આપ પુષ્ટિમાર્ગના જ્ઞાનથી પૂર્ણ પરિચિત નથી તેમ અમને આ પ્રશ્નથી સહજ જણાઈ આવે છે. બીજા પ્રકારે સ્પષ્ટ કહીએ તો આપ લોક અને શાસ્ત્રના જ્ઞાનમાં પણ અર્ધદગ્ધ છો એટલે જ આપને આવા પ્રકારના કુતર્કો આવી નિર્દોષ સર્વોત્કૃષ્ટ દશાને સમજાવનારી વાર્તામાં થાય છે.

આપ વર્ણાશ્રમ ધર્મનું સ્વરૂપ જાણો છો ? વર્ણાશ્રમનો ધર્મ કયા પ્રકારનો, કેવો અને કેટલો બલિષ્ઠ છે તે જાણો છો ? તેમજ પુષ્ટિ ભક્તિનું સ્વરૂપ આપ જાણો છો ?

પૂર્વપક્ષી:—મારા જ્ઞાનથી હું એટલું કહી શકું છું કે વર્ણાશ્રમ ધર્મનું સ્વરૂપ સ્મૃતી પ્રતિપાદ્ય આચાર વિચારનું છે. અને તે વર્ણાશ્રમ ધર્મ એ દેહનો ધર્મ છે અને તેનું બલ પણ મર્યાદીત છે.

જ્યારે પુષ્ટિ ભક્તિ એક સ્વતંત્ર અમર્યાદિત અને પ્રમેયબલ વાળી હોઈ આત્માના ધર્મ રૂપ છે. વળી વર્ણાશ્રમ ધર્મ કાલાધીન અને પરિવર્તનીય છે જ્યારે પુષ્ટિ ભક્તિ રૂપી ધર્મ ત્રિકાલાબાધિત અને સર્વ સમયમાં સર્વ સ્થલે સર્વ પ્રકારથી અપરિવર્તનીય છે. મારી સમજ પ્રમાણે આ ઉપરોક્ત શાસ્ત્ર સિદ્ધ વાત વિદ્વાનોને માન્ય છે.

સિદ્ધાન્તી:—યદિ આપ ઉપરોક્ત કથનને સ્વીકારો છો તો આપના મુખથી જ આપ કહી શકશો કે પુષ્ટિ ભક્તિ રૂપી પ્રમેય-બલયુક્ત ત્રિકાલાબાધિત ધર્મ આગળ વર્ણાશ્રમ ધર્મ ક્ષુદ્ર અને નિસ્તેજ છે તેથી વર્ણાશ્રમ ધર્મ આશ્રયને યોગ્ય નથી જ.

પૂર્વપક્ષી:—હા, તે તો અમે સ્વીકારીએ છીએ જ કે વર્ણાશ્રમ ધર્મ ભક્તિમાર્ગીય જીવો ને માટે આશ્રયરૂપ નથી કારણ કે તે દેહ

ધર્મ છે તેમજ આ કલિયુગમાં તેનું વિશુદ્ધ રૂપમાં સાંગોપાંગ અસ્તિત્વ પણ નથી છતાં તે ત્યાજ્ય પણ નથી જ.

સિદ્ધાન્તી:—અમારો એ સિદ્ધાન્ત જ નથી કે વર્ણાશ્રમનો હરેક મનુષ્યે ત્યાગ કરવો. કારણ કે તેના ત્યાગથી પાખંડીત્વ અને અશુદ્ધતા પ્રાપ્ત થાય છે. માટે શ્રીમદાચાર્યચરણના કથનાનુસાર જેવા સ્વરૂપમાં તે ધર્મ પ્રાપ્ત થતો હોય તેવા સ્વરૂપમાં તેનું પાલન અવશ્ય કરવું. પરંતુ તે કેવી રીતે? ભક્તિરૂપી આત્મધર્મમાં જે વખતે જેટલી આવશ્યક્તા તેની હોય તેટલા જ પ્રમાણમાં અને તે પણ કપટ રૂપથી જ એટલે મનરહિતપણે.

વળી આ સર્વ પ્રકાર સાધન દશાના ભક્તોને માટે છે. જેમને ભક્તિ પૂર્ણ રૂપે પ્રાપ્ત થઈ નથી તેમને માટે જ.

જ્યારે વૈદિક કર્મોમાં અને જ્ઞાનમાં પણ વર્ણાશ્રમનો ત્યાગ કેટલીય જગ્યાએ કરવાનો સ્વયં શાસ્ત્ર આજ્ઞા કરે છે જેવાં કે:— બ્રહ્મચર્ય અવસ્થામાં, સંન્યાસ અવસ્થામાં, તો પછી ભક્તિમાં તેનો ત્યાગ હોય તેમાં કહેવું જ શું?

એક વિપ્રને બ્રહ્મચર્ય અવસ્થામાં વૃદ્ધિ સૂતક આદિ કંઈપણ શાસ્ત્ર રીતીથી લાગતું નથી. તેવી જ રીતે સન્યાસમાં પણ છે.

જ્યારે કર્મ જ્ઞાનાદિની સન્યાસાદિ અવસ્થામાં આવા પ્રકારના ત્યાગો રહેલા છે તો ભક્તિની ઉત્કૃષ્ટ દશામાં (ભક્તિના સન્યાસરૂપ વિરહદશામાં) વર્ણાશ્રમ તો સહજ ત્યાગ થઈ જાય તેમાં સંદેહ હોય જ કેમ? ભક્તિનું સ્વરૂપ જ માહાત્મ્ય જ્ઞાનપૂર્વક સુદ્રઢ સ્નેહનું છે. એટલે તે સિદ્ધ થયા પછી (સુદઢ પ્રેમ પ્રભુમાં થયા પછી) તેને માટે શાસ્ત્રીય વિધિ નિષેધનું સ્થાન જ હોતું નથી. સૂરદાસજી પણ એજ સમજાવે છે કે सूरदास जाके नेम धरम ब्रत सो प्रेमी कोडी को તે પ્રેમનું સ્વરૂપ

જ એવું છે જેમાં લોક અને વેદના રાગનો અને જ્ઞાનનો પૂર્ણ અભાવ છે. તો તેનું અસ્તિત્વ તો હોય જ ક્યાંથી ?*

હવે એ પ્રેમમાં પણ વિપ્રયોગની કોટી સ્વતંત્રરૂપ હોવાથી મુખ્ય છે. એટલે ધર્મી વિપ્રયોગવાળા ભક્તોને પોતાના સ્નેહી તરફના સુખની મુદ્દલે અપેક્ષા રહેતી નથી જ. તેમજ સ્વરૂપ તકની અપેક્ષા રહેતી નથી. આટલી નિઃષ્કામભક્તિ અને પૂર્ણ સુખનો ત્યાગ કેવલ આ ધર્મીવિપ્રયોગ દશામાં જ છે. તે ભક્તો કેવલ પોતાના સ્વતંત્ર ભાવમાં જ વિલસે છે.

યદ્યપિ પ્રેમમાં સ્વયં લોકવેદના રાગનો અભાવ હોવાથી તે ભક્તિના સન્યાસરૂપ છે. તદપિ તે સન્યાસરૂપ પ્રેમની પણ આંતરીક સન્યાસ અવસ્થા તે આ ધર્મીવિપ્રયોગ અવસ્થા છે. એટલે તે અવસ્થામાં બાહ્યક્રિયાત્મક ભાવ (કામભાવ)ની **તેમજ સ્વરૂપની પણ અપેક્ષા નથી હોતી તો બિચારા વર્ણાશ્રમ ધર્મની અપેક્ષા તો હોય જ કેમ ?**

આ ધર્મીવિપ્રયોગવાળા ભક્તો સ્વતંત્ર ભક્તો છે. અને તે આંતરીક સન્યાસ અવસ્થાવાળા છે. ત્યાં વેષ ક્રિયા આદિની અપેક્ષા નથી. કેવલ ભાવમાં જ વિલસનારા ભાવાત્મક ભક્તોની તે કોટી છે.

તે ભક્તિનું સ્વરૂપ નાદરજી પોતાના ભક્તિસૂત્રમાં આ પ્રમાણે સમજાવે છેઃ—

૨ ॐ सा कस्मै परमप्रेमरुपा । તે ભક્તિ ઇશ્વરમાં પરમ પ્રેમરૂપા છે.

૩ ॐ अमृतस्वरूपा च । અને તે અમૃત સ્વરૂપા છે.

૪ ॐ यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृतीभवति तृप्तोभवति । જેને પ્રાપ્ત કરીને મનુષ્ય સિદ્ધ થાય છે અને અમૃત થાય છે અને તૃપ્ત થાય છે.

---

* સરખાવો અષ્ટ સખાની વાણીઃ—

केसें कीजे वेद कह्यो विधि निषेध को नाहिन ठोर रह्यो ।

दुःख को मूल सनेह सखीरी सो उर पेठ रह्यो ।

परमानंद प्रेम सागरमें पर्यो सो लीन भयो ।

૫ ॐ यत्प्राप्य न किंचिद्वांछति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति। જેને પામી (મનુષ્ય) પછી ન કોઇને ચાહે છે અથવા શોક કરે છે અથવા દ્વેષ કરે છે અથવા (કોઇમાં) રમે છે અથવા (કોઇ વિષયનો) ઉત્સાહ કરે છે.

૬ ॐ यज्ज्ञात्वा मत्तोभवति स्तब्धोभवत्यात्मारामोभवति। જેને જાણીને પાગલ થઇ જાય છે સ્તબ્ધ થઇ જાય છે અને **આત્મારામ થઇ જાય છે.**

૭ ॐ सा न कामयमाना निरोधरूपात्। તે (ભક્તિ) કામના ને અર્થ નથી થતી કારણ કે (આ) નિરોધરૂપ છે.

હવે નિરોધનું સ્વરૂપ સમજાવે છે.

૮ ॐ निरोधस्तु लोकवेदव्यापारसंन्यासः। નિરોધ તો લોક વેદ વ્યાપારનો ત્યાગ કરવો તે છે.

૯ ॐ तस्मिं अनन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च। અને એમાં અનન્યતા અને તેના વિરોધિયો ઉપર ઉદાસીનતા પણ નિરોધ છે.

૧૦ ॐ अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता। અન્ય આશ્રયોનો ત્યાગ કરવો તે અનન્યતા છે.

૧૧ ॐ लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता। લોક અને વેદમાં શ્રીમદ્ભગવદનુકુલાચરણ કરવું એજ તદ્વિરોધિષુદાસીનતા છે. એટલે લોક અને વેદમાં કેવળ **પ્રેમપાત્રના અનુકૂલ આચરણ કરવાથી** તે અનન્યતાના વિરોધી કર્મોમાં ઉદાસીનતા આપોઆપ થાય છે.

૧૨ ॐ भवतु निश्चयदाढर्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणं। નિશ્ચય દ્દઢ થયા પહેલાં શાસ્ત્ર રક્ષણ હોય। (અર્થાત્ શાસ્ત્રના કહેલા કર્મોનું અનુષ્ઠાન ભક્તિના દ્દઢ નિશ્ચય થયા પહેલાં સુધી જ છે.

૧૩ ॐ अन्यथा पातित्याशंकया। **અન્યથા પતિત થવાની શંકા છે.** (જ્યાં સુધી પુષ્ટિ ભક્તિમાં દ્દઢ નિશ્ચય નથી ત્યાં સુધી વર્ણાશ્રમ ધર્મની પૂર્ણ આવશ્યકતા છે. આશ્રયરૂપે નહિ કિંતુ કર્તવ્ય-રૂપે) અન્યથા તે જીવ પતિત થાય એમ શંકા રહે છે.

૧૪ ॐ लोकोपि तावदेव किंतु भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीरधारणा-

વધિ। લોક (લોકવ્યવહાર) પણ ત્યાં સુધીજ (અર્થાત નિશ્ચય થયા પૂર્વતક) છે કિંતુ **ભોજનાદિ વ્યાપાર તો જ્યાં સુધી શરીર છે ત્યાં સુધી છે.**

હવે આપ જાણી શકશો કે આમાં બતાવેલું નિરોધનું સ્વરૂપ (સૂત્ર ૮ અને ૯માં) શ્રીઆચાર્યચરણ અને રજો બન્નેને સિદ્ધ થયેલું છે. જુઓ શ્રીઆચાર્યચરણ સ્વયં આજ્ઞા કહે છે કે:—**अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः । ९३ (नि०ल०)**

હું રોધ વડે નિરૂદ્ધ છું અને નિરોધની પદવીને પામેલ છું. તેવી જ રીતે રજો પણ નિરોધ ને સારી રીતે પ્રાપ્ત થયેલાં છે તે ભાવસિંધુ, વાર્તા આદિમાં રજોના પ્રસંગથી સ્પષ્ટ થાય છે. જેવી રીતે વ્રજભક્તો એ પંચાધ્યાઈ સમયે જ્યારે શ્રીઠાકોરજીએ ધર્મનો ઉપદેશ કર્યો ત્યારે સામે પ્રતિઉત્તર આપીને પોતાની અચલ ભક્તિથી શ્રીઠાકોરજીમાં રહેલા અનિરૂદ્ધ (ધર્મોપદેશક) વ્યુહનું નિવારણ કર્યું. તેવી રીતે રજોએ પણ શ્રીઆચાર્યચરણમાં રહેલા મર્યાદા આવેશને પોતાની અચલ ભક્તિયુક્ત પ્રાર્થનાથી દૂર કર્યો. અને કેવલ શુદ્ધ પુષ્ટિસ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરી સામગ્રી અરોગાવી (જુઓ વાર્તા) એટલે શ્રીઆચાર્યચરણ અને પરમભક્ત રજો બન્નેનાં સ્વરૂપ શુદ્ધ પુષ્ટિભક્તિરૂપ* હોવાથી સૂત્ર ૧૨ માં કહ્યા અનુસાર વેદની મર્યાદાની

---

* સર્વાત્મભાવ યુક્ત (વિશેષ જુઓ શ્રીહરિ૦ કૃત सर्वात्मभाव निरुपणम्) જેઓ સર્વભાવથી ભજન કરે છે તેને લૌકીક વૈદિકની શી અપેક્ષા રહે ? નજ રહે "ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकै वदिकैरपि" "લોકવૈદિક ત્યાગ શરણ ગોપી શકો."

सर्वत्यागस्तु सहजो यत्र लौकिकवेदयोः।
नैरोक्ष्यं स भावस्तु सर्वभावो निगद्यते ॥ १२ ॥ (शि० ३४)

મર્યાદામાં બ્રહ્મભાવ તેવીજ રીતે પુષ્ટિની ઉત્કૃષ્ટ દશામાં સર્વાત્મભાવ છે.

દ્રષ્ટાંતરૂપેઃ-નાભાજી, (કુતરામાં પણ બ્રહ્મના દર્શન કર્યા અને રોટી લઈ ગયું ત્યારે ઘી ચોપડવા દોડયા) તેવીજ રીતે અહિં પણ તે દશામાં લૌકીક વૈદિકની દૃષ્ટિ સહજ અને સ્વતઃ નષ્ટ થઈ જાય છે. **રજો આવાં સર્વાત્મભાવવાળાં ભક્ત છે.**

તેઓને અપેક્ષા મુદ્દલે હોય જ નહિ. તે ભક્તિનું સ્વરૂપ એવું છે કે તેને પ્રાપ્ત કરીને ભક્ત ભક્તિમાં પાગલ થઈ જાય છે, નિરક્ષેપ થઇ જાય છે. લોકવેદાતીત થઈ સ્વયં આત્મારામ થઇ જાય છે. (જુઓ ૪–૫–૬ સૂત્ર) હવે આવી દશામાં બિચારો ક્ષુદ્ર બાહ્ય ધર્મરૂપ દેહધર્મ (વર્ણાશ્રમ) ટકી જ ક્યાં શકે ?

આવી ભક્તિમાં સૂરદાસજીના કથનાનુસાર "वेद पुरान ज्योतीष बडे ठग जानत फांसी जीको ।" એનો વસ્તુતઃ અનુભવ થાય છે. આ ભક્તિમાર્ગની સન્યાસરૂપ વિપ્રયોગ અવસ્થામાં ન વેદની સ્થિતિ છે ન લોકની. કારણ કે તે ભક્તિ પ્રાપ્ત થવાથી તે ભક્ત સ્વયં લોકવેદાતીત થઈ જાય છે.

વળી શ્રીહરિના સમાન રૂપ, ગુણ અને શીલવાળા વૈષ્ણવોમાં જ્ઞાતિબુદ્ધિ રાખવાથી મહાન દોષ થાય છે તેવું શાસ્ત્ર કહે છે. (જુઓ ભારતેંદુનું નારદ ભક્તિસૂત્ર ઉપરનું ભાષ્ય; તેમાં અનેક પ્રમાણોનો સંગ્રહ છે)

नयस्यजन्मकर्मीभ्यांन वर्णाश्रमजातिभिः ।

सज्जतेस्मिन्नहंभावो देहेवै सहरेः प्रियः ॥

આવા વૈષ્ણવોમાં જાતિબુદ્ધિ કરવી તે ૬૪ અપરાધોમાંનો એક અપરાધ છે.

ॐ नास्तितेषुजातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः (ना०भ०सू०७२)

અર્થઃ—એવા (ભક્તો)માં જાતિ, વિદ્યા, રૂપ, કુલ, ધન અને ક્રિયા આદિનો ભેદ નથી.

ॐ यतस्तदीयाः । (७३)

અર્થઃ—કેમકે એ (ભક્તો) એના છે.

એજ પ્રમાણે શ્રીહરિરાય મહાપ્રભુએ પણ શિક્ષાપત્રમાં કહ્યું છે.

આતો થઈ શાસ્ત્રીય વાત. હવે આપણે સાંપ્રદાયિક વાત કરીએ આ વાર્તાના શબ્દો જોવાથી આપણે એ સ્પષ્ટ સમજી શકીએ છીએ

કે આચાર્યચરણે મર્યાદા રૂપથી (આચાર્ય રૂપથી) આ સામગ્રી અંગીકાર કરી નથીજ. પરંતુ લીલાના નિજસ્વરૂપ શ્રીસ્વામિની રૂપથીજ. જુઓ આ શબ્દો:-

ओर इहां रजो क्षत्रानी हती॥ ताकि अनसरवडी आपु नित्य नेम सों लेते **सो लीला संबंध को भाव विचारि के × ×× लीला रस में मगन व्है सामग्री अंगीकार करे** × × + ताको अर्थ यह जो लीला के भावसों **अपने निज स्वरुपसों आरोगो** (શ્રી હરિ૦) એટલે એ સ્પષ્ટ છે કે શ્રીઆચાર્યચરણ શ્રીસ્વામિની રૂપથી સામગ્રી આરોગતા માટે અહિં વર્ણાશ્રમ ધર્મનો પ્રશ્નજ રહેતો નથી.

શ્રીઆચાર્યચરણનું સ્વરૂપ શ્રી ગુસાંઇજી " વસ્તુતઃકૃષ્ણ એવ" એમ કહે છે. એટલે નિજ વિવિધ પ્રકારના સ્વરૂપોનો અનુભવ શ્રી આચાર્યચરણ ભકતોને પોતપોતાની ભાવના અનુસાર કરાવે તેમાં જરાય આશ્ચર્ય હોયજ નહિ. અને તેથીજ કૃષ્ણદાસજીએ (અષ્ટસખા) ગાયું છે કે कोऊ कहे विप्र, कोऊ विविध पंडित कहे, कोऊ कहे अंश,कोऊ आत्मारामी । **स्वकीयजन एक, मन निश्चे निरधार कीयो वस्तुतः कृष्ण जे बंधे दामी** એટલે નિજજનો ને તો શ્રીઆચાર્યચરણે પોતાના दामोदर સ્વરૂપનોજ અનુભવ કરાવ્યો છે.

आचार्यवान् पुरूषोवेद । आचार्यमाम् विजानीयात् । આવાં અનેક શાસ્ત્રીય વાકયોથી પણ શ્રીઆચાર્યચરણનું ઇશ્વિરત્વ સિદ્ધ છે.તેથી આચાર્ય-

---

કોટાના સુપ્રસિદ્ધ વિદ્વાન અને સંપ્રદાયના મર્મજ્ઞ શ્રીયુત ગોકુલદાસજી મુખીયાજી (શ્રીમથુરેશજીના) આ પ્રસંગ માટે આ પ્રમાણે લખે છે :—

जीन पुस्तकमें अनसखडी अरोगने का लिखा है उनहो पुस्तक में यह बात स्पष्ट की गई है कि श्रीआचार्यचरण स्वामिनी रुप से सामग्री अरोगते । इस लीए इस वार्ता से वर्णाश्रम धर्म में कीसी भी प्रकार की हानी नहिं होती है ।

માં પ્રમેયબલ રહેલું છે, અને તે પ્રમેયબલથી યદિ લોકમાં કોઈપણ આચાર્ય કવચિત્ કોઈ લોકવેદ વિરૂદ્ધ સાહસ કરે તો તે તેમના ઇશ્વરત્વના સ્પષ્ટીકરણ રૂપ છે. તેથી પણ આ વાર્તા શ્રીઆચાર્યચરણના પ્રમેયબલને દેખાડનારી છે—અને આવાં ચરિત્રો શંકરાચાર્ય આદિ અન્ય આચાર્યોમાં પણ સ્પષ્ટ થએલાં છે.

શ્રીગોપીજનોની માફક રજોને ભક્તિ પ્રાપ્ત થયેલી હોવાથી તે લૌકિક સ્ત્રી નહિં હતી કિંતુ શ્રુતીઓના પણ ભાવરૂપ હતી- આથી આ વાર્તામાં લૌકીક દૃષ્ટીને સ્થાન નથી જેને સ્વતંત્ર ભક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે તે આત્મારૂપ થાય છે તે ન તો સ્ત્રી રહે છે ન પુરૂષ. તેમાંથી સ્ત્રી અને પું બન્ને ભાવ નષ્ટ થઈ જાય છે—

પૂર્વપક્ષી:—આપનો ઉત્તર સપ્રમાણ અને યથાર્થ છે એટલે હવે અમને એ શંકા રહેતી નથી કે શ્રીઆચાર્યચરણે આમાં વર્ણાશ્રમ ધર્મનું ઉલ્લંઘન કર્યું છે. અથવા તો આ વાર્તા કલ્પિત છે. કિંતુ હવે અમે એમ કહી શકીએ છીએ કે આ વાર્તા શુદ્ધ ભક્તિની પરમોત્કૃષ્ટ દશાની સ્થિતિનું સુનિપૂણ પ્રતિપાદન કર્તા હોઈ અવશ્ય મનનીય છે.

પરન્તુ આ વાર્તાને ન સમજી અન્ય સામાન્ય લોકો આ સિદ્ધાંતનો દુરૂપયોગ કરે (એટલે વર્ણાશ્રમ ધર્મનો ત્યાગ કરે) તો તેની જવાબદારી આ વાર્તા પ્રગટ કરનારને માથે છે કે નહિં?

સિદ્ધાન્તી:—ત્યાં પણ આપની ભૂલ થાય છે દૃષ્ટાંત તરીકે શ્રીમદ્ભાગવતમાં વ્રતચર્યા રાસાદિ પ્રસંગોનું શ્રી શુકે વર્ણન કર્યું છે. અને તેના રહસ્યને અજ્ઞાની પુરૂષ ન સમજી વિરૂદ્ધાચરણ કરે અથવા ટીકા કરે તો શું તેની જવાબદારી શ્રીશુક ઉપર રહે છે કે?

શ્રીશુકે તો એવી પરમ પુનિત શ્રીકૃષ્ણની નિર્દોષ લીલાઓનું વર્ણન કર્યું છે કે જેના શ્રવણથી જ મનુષ્ય કૃતકૃત્ય થાય છે. અભાગ્ય વશ કોઇ ઉંધે રસ્તે જાય તો તેની જવાબદારી તેની અજ્ઞાનતાની જ છે શ્રીશુકની નહિ. તેજ પ્રમાણે અહીં સમજવું.

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदनम्

अस्ति महनीयमहिम्नो मेदपाटमहीमण्डलस्य मण्डनायितायां पावनप्रतोल्यां पुरि कांकरोल्यां मणीवासमसुषमासन्निवेशा कांकरोलीश्वराध्यक्षत्वसुस्था विद्याविभागाभिधैका संस्था। यस्यां सुविशालकलेवरस्य सरस्वतीभण्डारसदभिधस्य विविधविषयकप्राचीनतमलिखितग्रन्थसंग्रहस्य विराजतेतमां महती सत्ता।

सौभाग्येन तद्व्यवस्थापनकार्यनियोजितः शुद्धाद्वैतसंप्रदायसंस्कृत ग्रन्थेषु व्यलोकयं छन्दोमय्यां सुरसरस्वत्यामवतारितं सपदिपुष्टिभक्तिमार्गरहस्यावबोधनचतुरं चतुरशीतिवैष्णववार्तामालाख्यं सद्ग्रन्थम्। शुद्धाद्वैततत्त्वजिज्ञासुभिरपि गीर्वाणवाणीप्रणयिभिर्मनीषिभिरद्यावध्यपि अनधिगमितसमुचितसम्मानं सम्प्रति च संस्कृतगिरा परिवर्तितत्वेन तेषामेव सत्क्रियापात्रत्वयोग्यममुमवलोक्य स्वान्तं नितान्तममोदत, समभवच्च समुद्गतोत्कलिकं साहित्यक्षेत्रे प्रकाशमुपगतस्य सुन्दरवेषेण विचरतस्तस्य प्रेक्षणाय।

भगवतः श्रीनिकेतनस्याकम्पयानुकम्पया समायात एवासौ सुसमयोऽमुं प्रकाशमानेतुम्; येन विद्याविभागसंचालकाः पण्डितप्रवरकण्ठमणि शास्त्रिणोऽमुं प्रकाशयितुमैच्छन्, साम्प्रदायिकसाहित्यसेवनधर्मा परिखोपाह्वद्वारकादाससद्वैष्णवस्तत्प्रकाशनव्ययमुपार्ज्य दातुं स्वोत्साहं प्रादर्शयत्, विद्याविभागाध्यक्षमहानुभावाः सदुदारविचारविद्योतमानमानसाः श्रीगो. १०८ श्रीव्रजभूषणलालजीमहाराजचरणाश्च तममुं सद्व्यवसायमन्वमन्यन्त। तदैव च यद्यपि सुरभारतीविभारतेभ्यः कोविदेभ्यस्तु संस्कृतानुवादमयस्य तद्-

ग्रन्थस्य स्वातन्त्र्येण साकल्येन च प्रकाशनमेवाभ्यरोचेत; किन्तु तथा प्रकाशितस्तु स केवलं विद्वत्समाजस्यैव सम्मानपात्रमभिनन्दनीयश्च स्यात्, न तु संस्कृतभाषासम्बन्धिस्वल्पज्ञानं धृतवतो जनसाधारणस्यापि, तेन वाञ्छितस्य संस्कृतवार्ताप्रचारस्याभावः कदाचित्सम्मुखमापतेत्; अतः "ग्रन्थोऽसौ मूलेन (भाषावार्तारूपेण), तदुपरि श्रीहरिरायमहानुभावचरणप्रकाशितेन भावप्रकाशेन, तत्सम्बन्धिटिप्पणान्तरेण च सह प्रकाशितः सर्वोपयोगितामावहन् भूयांसं प्रचारमधिगमिष्यतीति दृष्ट्या मूलादिभिः सहैव यथासुविधं खण्डश एव प्रकाशमानेतुं निरचीयत । अस्तु !

तस्यैव ग्रन्थरत्नस्य प्राथमिकं वार्ताष्टकं प्रारम्भिकभागरूपेण प्रकाशमुपनतस्तत्रभवतां भवतां करयुगलीमलंकरोति । एतदवलोकनेन विदितं स्याद् यत्—साकल्येन प्रकाशमुपनतेनानेन भक्तिमार्गीयसंस्कृतसाहित्यं विकलतां विजहद् भृशं भ्राजिष्यते । यतो हि भक्तिमार्गसाहित्ये भाष्यनिबन्धादिग्रन्थानां बाहुल्ये सत्यपि चरित्रग्रन्थानां तु नितान्तमभाव एव । भाष्यनिबन्धेषु संप्रदायस्य सिद्धान्तानां रहस्यानां च विद्यमानेऽपि विशदस्वरूपे तेभ्योऽमुमनाकलयतां संसारव्यवहारमाचरतामपि भक्तिमार्गीयत्वाभिमानिनामनधिगतशास्त्रशाणोत्तेजितसुशेमुषीकाणां मन्दाधिकारिणां हृदयेषु सरलया गिरा पुष्टिभक्तिमार्गरहस्यानि प्रवेशयतः संस्कृत भाषाभाषिणां मनीषिणामपि शास्त्रकान्तारसततपरिभ्रमणपरिश्रान्तायां मतौ च ऋते क्लेशादेव शुद्धाद्वैतसिद्धान्तानवतारयतोऽस्य ग्रन्थस्य साम्प्रदायिक साहित्ये महद् गौरवम्, प्रपूर्यते चानेन संस्कृतसाम्प्रदायिकसाहित्यक्षेत्रे रिक्तमतिमहनीयं चरित्रग्रन्थस्थानम् ।

ग्रन्थोऽयं हिन्दीभाषायां राजमानानां चतुरशीतिवैष्णववार्तानां

श्रीनाथदेवकृतः संस्कृतानुवादः। अनुवादत्वादेव यथास्थानं निवेशयितुं शक्यत्वेऽप्यलंकाराणां नास्त्यस्मिन् सन्निवेशः। अनुवादस्यानुवादत्वं तु तत एव सिद्ध्यति, यदा कस्यांचिदेकस्यां भाषायां सालंकारो निरलंकारो वा समुपलभ्यमानः कोऽप्यर्थो भाषान्तरशब्दैस्तथैवोपस्थाप्येत। शब्दालंकारा यद्यनुवादग्रन्थे प्रयासमन्तरा स्वयमेव निविष्टाः स्युस्तर्हि न ते कदाचिदपि तदनुवादत्वविघातकाः। यतो हि कीदृशा अपि स्युर्नाम शब्दाः, अर्थोपस्थापनं तु कैश्चिदपि करणीयमेव भवेत्; यदि कुत्रापि अश्रव्यादिशब्दानां स्थाने सुभाष्याणि श्रवणमधुराणि मनोहराणि च पदानि प्रयुज्येरन्, तदा को नाम दोषो भवेच्छब्दालंकाराणाम्। किन्तु त एव यदि श्रममङ्गीकृत्यापि निर्बन्धेन निबद्धा भवेयुस्तर्हि पाठकानां मनः क्षणं प्रतिपाद्यविषयादाक्षिप्य स्वशोभानिरीक्षणाभिमुखीकरणेन, सातत्यप्रयोजितत्वादरुचिजनकत्वेन, कविकौतुकमाकलयतां तत्त्वान्वेषिणां वैराग्यवतां कदाचिदश्रद्धेयतोद्भावकत्वेन तेषां दोष एव। अतो नास्ति निर्बन्धप्रयोजितानां शब्दालङ्काराणां कुत्राप्यावश्यकता, विशेषतोऽनुवादग्रन्थे, तत्रापि च भक्तिमार्गीये चरित्रग्रन्थे। अर्थालङ्कारास्तु सर्वथैवानुवादग्रन्थे अप्रयोज्या एव भवन्ति। यतो हि अर्थस्यालङ्करणेऽर्थान्तरस्यैवावश्यकता निश्चिता, तद्यद्यनुवाद्यग्रन्थेऽनुपलभ्यमानं पाण्डित्यप्रचिकाशयिषुणाऽनुवादग्रन्थे निवेश्येत, तर्हि सोऽनुवाद एव नास्ति, किन्तु वस्त्वन्तरम्; अनुवादस्तु स एव नाम यत्—केषुचिच्छब्देषु यथोपलब्धस्य वस्तुनोऽन्यूनानधिकीकृतस्य तथैव शब्दान्तरैरुपस्थापनम्। कस्यचिद्वस्तुनो रूपकोपमादिभिरलंकारैः परिवर्द्धनं स्फुटमेव तस्य स्वरूपान्तरकरणम्। अतोऽर्थालंकाराणामनुवादग्रन्थेषु सर्वथा नास्त्येवावश्यकता। ततो यदुच्यते कैश्चिन्महाशयैः "अस्य ग्रन्थस्यालंकारिकी

सुश्लाघ्या नास्ति भाषेति" तदनवधेयम्। अनुवादस्य सकलत्वं सफलत्वं च भाषान्तरे प्रसिद्धस्य वस्तुनो याथातथ्येन स्वेष्टभाषयोपस्थापने सत्येव भवति, तदस्मिन् ग्रन्थे पर्याप्ततयावलोक्यते। अहं तु विश्वसिमि यत्—सरलयाप्यर्थगम्भीरया, संक्षिप्तयापि विशदस्वरूपया समासव्यासादिप्रौढिगुणवत्या गिरा मूलार्थं यथातथमनुवदन् भट्टः श्रीमान् श्रीनाथदेवः स्वकीयं भूयस्तरां पाण्डित्यं प्राचीकटत्, महतामप्यन्येषां कृते कार्यमेतन्न सुकरं स्यादिति।

विद्याविभागसंचालकैः पं. कण्ठमणिशास्त्रिभिः स्नेहवशंवदत्वेन त्रिशनगरवास्तव्यैः पं. पुरुषोत्तमशास्त्रिभिश्च कार्यान्तरव्यासक्तत्वेन यद् आदर्शपुस्तकान्तररहितस्य प्रतिपदं प्रायोऽशुद्धस्यास्य ग्रन्थस्य कठिनतमं संशोधनकार्यं स्वल्पकेऽपि मय्यधायि, तच्चिरायुष्मतामाचार्यकुमारश्रीयदुनाथलालजीशर्मणामध्यापनकार्यं कुर्वन्नपि यथामति कथंचित् परिपूर्य कम्पमानेन हृदा तेषामेव पुरः स्थापये; प्रार्थये च चक्षुर्दोषेण मतिभ्रमेण वा संभाव्यमाना यदि काश्चित् संशोधनत्रुटयो जागरिताः स्युः साम्प्रतमपि, तर्हि प्रथमप्रयासे समुदात्तचित्तैः क्षमावित्तैर्भवद्भिः क्षन्तव्या इति।

अनावश्यकविस्तरमचिकीर्षुर्ग्रन्थस्यास्य समुचितसम्मानाय सुधीसमुदायं सम्प्रार्थ्य, अवशिष्टांशप्रकाशने विघ्नविहतिं कार्यकर्तॄणां शक्त्युत्साहाभिवृद्धिं च श्रीपतिपदारविन्दयोरभ्यर्थयमानः समुपैमि विरामम्।

श्री शु. सं. तृ. पोठेश्वरैःसह
हालोलस्थितौ
द्वि. श्रा. कृ. ५ सं. १९९६

विनीतनिवेदकः—
पु. लक्ष्मीनारायणशास्त्री
साहित्यभूषणः

श्री हरिः

अथ श्रीनाथदेव कृता

संस्कृत वार्ता मणिमाला

वार्ता १

जयत्यनन्तलीलः श्रीगोवर्द्धनधरः प्रभुः ॥
व्रजनागरिकः कृष्णः साङ्गोपाङ्गः सुपार्षदः ॥१॥
अथासीद्दक्षिणे देशे खंभंकाकरसंज्ञके ॥
यज्ञनारायणो भट्टस्तैलङ्गो याज्ञिको द्विजः ॥२॥
सभारद्वाजगोत्रोग्न्यस्तैत्तिरीययजुःकृती ॥
वेदादिसर्वशास्त्रज्ञो विष्णुस्वामिमतानुगः ॥३॥
तत्सुतोऽभूत्सोमयाजी गंगाधर इति श्रुतः ॥
तस्य सूनुर्गणपतिस्तस्य श्रीवल्लभः सुतः ॥४॥
तस्य श्रीलक्ष्मणो यज्वेल्लम्मगारुपतिर्महान् ॥
तस्य पुत्रा रामकृष्णश्रीश्रीवल्लभकेशवाः ॥५॥
तेषां मध्येऽभवद्यः श्रीवल्लभःसोग्निरेव हि ॥
आचार्यो भगवान्साक्षादाज्ञया श्रीहरेरिह ॥६॥
महालक्ष्म्यां तस्य गोपीनाथो ज्येष्ठः सुतो बलः ॥
यस्यैक आसीत्तनयः पुरुषोत्तम इत्यलम् ॥७॥
कृष्णोऽभूच्छ्रीवल्लभस्य कनिष्ठो विट्ठलः सुतः ॥
आचार्यरत्नं स महान्यतो गिरिधरादयः ॥८॥
गिरिधरश्च गोविन्दो बालकृष्णश्च वल्लभः ॥
रघुनाथो यदुपतिर्घनश्याम इति क्रमात् ॥९॥

रुक्मिण्यां षट् सुता जाताः पद्मावत्यां तु सप्तमः ॥
यत्संततिरिहाद्यापि राजते श्रेयसे नृणाम् ॥१०॥
तान्नौमि, श्रीमदाचार्यान् श्रीवल्लभविभावसून् ॥
विधूँश्च श्रीविट्ठलेशान्यान्प्रपन्ना हरिं गताः ॥११॥
चतुरशीतिकलक्षवियोनितः समनु कृष्णरतान्हरिरात्मनि ॥
समनुगृह्य यथा समशेषतां तदनु वृत्तमथेह तथोच्यते ॥१२॥
श्रीमदाचार्यगोस्वामिसेवकानां हरिं जुषाम् ॥
वर्णानामिह लिख्यन्ते वार्ताः स्त्रीणां तथा नृणाम् ॥१३॥
गोकुले गोविन्दघट्टे वेद्यामाचार्यसूरयः ॥
आसीना विश्रमंतस्ते क्वचिद्दिव्यं स्म चिन्तयन् ॥१४॥
महाप्रभोरिति ह्याज्ञा वचनं यदिह त्वया ॥
जीवानां ब्रह्मसम्बन्धः कार्यः स च कथं भवेत् ॥१५॥
जीवाः स्वभावतो दुष्टाः कलिकाले विशेषतः ॥
इति चिन्तातुरेष्वाराच्छ्रीगोपीजनवल्लभः ॥१६॥
आविर्भूयार्यानपृच्छत्कुतश्चिन्तातुराः स्थ भोः ॥
श्रुत्वेत्यार्याः प्रोचुरहो जीवा दुष्टा इति स्वयम् ॥१७॥
भवता चेदसम्बन्धो ब्रह्मणस्ते कथं घटेत् ॥
इत्याकर्ण्याथ विभुनाचार्यान्प्रत्युक्तमादरात् ॥१८॥
जीवानां ब्रह्मसम्बन्धबोधनं कार्यमार्यकाः ॥
तानहं स्वीकरिष्यामि भवन्नामोपदेशतः ॥१९॥
निवृत्तसर्वात्मदोषानिति श्रावण शुक्लके ॥
एकादश्यामर्धरात्रे पवित्राद्द्वादशीयुजि ॥२०॥

साक्षाद्भगवता प्रोक्तं पवित्रं श्रीप्रभोर्गले ॥
तस्मिन्कालेऽर्पितं त्वार्यैः सिता खण्डीकृतापि च ॥२१॥
तदक्षरश आचार्यैः स्वानुभूतं निरूपितम् ॥
स्वसिद्धान्तरहस्याख्ये ग्रन्थे समवधार्यताम् ॥२२॥
अथ कस्मिंश्चन पुरे श्रीमदाचार्यसेवकः ॥
श्रीदामोदरदासाख्यो हरसानीति विश्रुतः ॥२३॥
क्षत्री समर्पितस्वात्मा श्रीवल्लभपदानुगः ॥
दमलेति च संबोध्य वल्लभाचार्यदीक्षिताः ॥२४॥
प्रीत्या यस्याग्र इत्याहुरेष पुष्टिपथस्तव ।
हितार्थं वै प्रकटितस्तथा भागवतीं कथाम् ॥२५॥
रसभावभृतां नित्यं कथयन्ति स्म ते रहः ॥
किंच वार्ता भगवतो न भवेद्वा यदा क्वचित् ॥२६॥
तदेति कथयन्तिस्म दमलाऽजनि भोश्चिरम् ॥
प्रभोर्वार्ता नहि कृता क्रियतामधुनेति यत् ॥२७॥
स तादृगन्तरङ्गोभूद्येन गोपीपतेः श्रुतम् ॥
श्रीवल्लभाचार्यवर्यब्रह्मसम्बन्धबोधनम् ॥ ॥२८॥
तदनु श्रीमदाचार्यैर्दामोदर किमु श्रुतम् ॥
त्वया भगवता प्रोक्तमिति पृष्टो जगाद सः ॥२९॥
श्रुतं भगवता प्रोक्तं न तु बुद्धं मयेति किम् ॥
तदा श्रीवल्लभचार्यैः सूचितं भोः प्रभोर्मयि ॥३०॥
ब्रह्मसम्बन्धवचनं प्रोक्तं जीवहिताय हि ॥
तद्द्वाराङ्गीकृतिर्विष्णोः सर्वदोषनिवृत्तितः ॥३१॥

तदाज्ञाय स तुष्टोऽभूदात्मानं सततं मुदा ॥
कृतार्थं भुवि मन्वानः कृपयाचार्यपादयोः ॥३२॥
जात्वन्तिके भगवतः स्वाचार्यैः प्रार्थितं हृदा ॥
मा दामोदरदासस्य संस्था भूत्पुरतो मम ॥३३॥
भगवञ् श्रौतमार्गं च माप्नोत्विति विषादतः ॥
तदोमिति प्रदायैव ह्यार्येभ्योऽन्तर्हितो हरिः ॥३४॥
एकदा श्रीविट्ठलेशा गोस्वामिचरणाः स्थितम् ॥
श्रीदामोदरदासाख्यं पृष्टवन्तः स्वसेवकम् ॥३५॥
भो दामोदरदास त्वं श्रीमदाचार्यदीक्षितान् ॥
किं स्वरूपान्विजानासि वदेति स ततोऽवदत् ॥३६॥
यो ह्यत्र जगदीशोऽस्ति सर्वैर्गीतो महान् प्रभुः ॥
ततोपि ह्यधिकान् जाने स्वाचार्यान् वल्लभाभिधान् ॥३७॥
इत्याकर्ण्यैव गोस्वामिश्रीविट्ठलमहाशयाः ॥
उक्तवन्तः कथमिदमीश्वरादपितेऽधिकाः ॥३८॥
ततो दामोदरः प्राह भो श्रीमद्विट्ठलेश्वराः ॥
देयं गुर्वथवा दातेत्येतदेव विचिन्त्यताम् ॥३९॥
पार्श्वेधिकं धनं यस्य यदि राति न कर्हिचित् ॥
तर्हिस्विक्तस्य किं कोर्थो यो ददाति स वै गुरुः ॥४०॥
श्रीशाख्यं यद्धनं सर्वस्वमाचार्या ददुर्यदि ॥
अस्मादृशेषु जीवेषु ततस्तेऽभ्यधिका मताः ॥४१॥
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य श्रीविट्ठलमहाशयाः ॥
संतुष्टहृदयाः स्वीयमनुगृह्णन्ति ते स्म तम् ॥४२॥

किं चैकदा श्रीगोस्वामिश्रीमदाचार्यसूनवः ॥
स्वैरं स्थिता रमन्ते स्म पार्श्वे कुम्भनदासकः ॥४३॥
गोविन्दस्वामिनामान्ये तथा द्वित्राश्च सेवकाः ॥
उपविष्टा रहस्यग्रे हसन्तो हासयन्ति च ॥४४॥
तदैव दामोदराख्यमालोक्यागतमन्तिके ॥
उत्थिताः श्रीविट्ठलेशाः श्रीगोस्वामिमहौजसः ॥४५॥
तत्रोपवेशयामासुः स्वान्तिके तं महादरात् ॥
तदा दामोदरेणोक्तं श्रीगोस्वामिपुरः स्वतः ॥४६॥
महाराज न मार्गोयं सुनिश्चिन्ततया मतः ॥
किन्तु कृच्छ्रेणोपगते हरौ चिन्तात्मभावतः ॥४७॥
तदा गोस्वामिभिः प्रोक्तं सत्यमुक्तं त्वयानघ ॥
परन्तु श्रीमदाचार्यकृपा यत्र यदा तदा ॥४८॥
हरौ जनस्यार्तिचिन्ता भवित्रीत्यवसीयते ॥
विनैतच्छ्रीमदाचार्यानुग्रहान्नेति मे मतिः ॥४९॥
तदा दामोदरेणोक्तं दण्डवत्प्रणिपाततः ॥
महाराज बताऽस्माकं धर्मो विज्ञापनं सकृत् ॥५०॥
अग्रे तु श्रीभवन्तो हि गुरवः शुभकारिणः ॥
परमेतादृशो मार्ग इत्याचार्यमुखाच्छ्रुतम् ॥५१॥
इत्याश्रुत्य प्रसन्नाः श्रीगोस्वामिचरणाः सदा ॥
ऊचुर्दामोदरेह स्वां वार्तां प्रायस्तवास्यतः ॥५२॥
प्राहुर्मे श्रीमदाचार्याः कृपयेति विनिश्चितम् ॥
भवानेवं न चेद्ब्रूयादाप्तः कः कथयेदिति ॥५३॥

किंच दामोदर त्वां हि यदा पश्यामि मे मनः ॥
तदा संतुष्यति भृशं श्रीमदाचार्यसेवक ॥५४॥
नान्यस्त्वत्तो हिततम इति मन्ये न संशयः ॥
इत्येवं वल्लभाचार्यात्मजाः श्रीविठ्ठलेश्वराः ॥५५॥
यच्छिक्षां मानयामासुः सोऽभूद् दामोदरो महान् ॥
अथैकदा भगवतः समक्षमिति याचितम् ॥५६॥
त्रिवारं श्रीमदाचार्यैर्दामोदररतात्मभिः ॥
मदग्रे भगवन्दामोदरदासस्य मा स्म भूत् ॥५७॥
देहत्यागोन्यथा कोऽत्र मार्गरीतिं वदिष्यति ॥
सेवोत्सवप्रकारं त्वं श्रीगोपीनाथसंज्ञके ॥५८॥
बाले ममात्मजे गूढं विट्ठले चेति भावतः ॥
काश्यां पूर्वप्रतिज्ञार्थं मयि सन्यस्य गच्छति ॥५९॥
तदेतदादिकार्यार्थमयमुद्भववन् मम ॥
चिरं श्रीभगवन्मार्गं ज्ञात्वा भुवि स तिष्ठतु ॥६०॥
एतादृशे निजे तस्मिन्सेवके सेवनाध्वनः ॥
धुरं न्यस्य गता काश्यां सन्यस्याचार्यसूरयः ॥६१॥
अथो कियद्दिनान्ते हि श्रीगोस्वामिमहात्मभिः ॥
अकापृष्टा महालक्ष्मीः कचिन्मातार्भभावतः ॥६२॥
अम्ब श्रीतातचरणैराचार्यैर्दर्शितेऽध्वनि ॥
कथं सेवोत्सवविधिः को भाव इति कथ्यताम् ॥६३॥
न जानीमो बालधियः शास्त्रतः को वदिष्यति ॥
इत्युक्ता सा ऽब्रवीद्वत्स स्वे दामोदरसंज्ञके ॥६४॥

निवेदितः स्वमार्गीयसिद्धान्तः श्रीमदार्यकैः ॥
स वेत्ति सर्वभावेन स्वमार्गोत्सवपद्धतिम् ॥ ॥६५॥
जिज्ञासया स पृष्टो हि सम्यगेव वदिष्यति ॥
इत्यावेदितहार्दास्ते श्रीगोस्वामिमहाशयाः ॥६६॥
गता दामोदरगृहं तत्त्वजिज्ञासया तदा ॥
दामोदरः पितृश्राद्धं कुर्वाणो दृष्टवान् प्रभून् ॥६७॥
श्रीमदाचार्यतनुजानुत्थाय प्रणनाम ह ॥
निवेशयामास च तानासने संमुखः स्थितः ॥६८॥
तदा गोस्वामिभिः प्रोक्तं श्रीदामोदरदास भोः॥
कारयिष्यामि त्वां श्राद्धमित्यथो कारयन्मुदा ॥६९॥
श्राद्धकर्मोत्तरं प्रोक्तं श्रीगोस्वामिभिरुत्स्मितम् ॥
भो दामोदरदासाद्य देहि मे श्राद्धदक्षिणाम् ॥७०॥
तदा दामोदरेणोक्तं ज्ञातहार्देन केवलम् ॥
वक्ष्यामि दक्षिणास्थाने मार्गवार्त्तां पुरोऽद्य वः ॥७१॥
तदा गोस्वामिभिस्तूष्णीमनुमोद्य स्मितं कृतम् ॥
ततो दामोदरेण श्रीगोस्वामिषु महात्मसु ॥७२॥
मार्गप्रणालिका सर्वा प्रतिपाद्य निवेदिता ॥
तदाप्रभृति गोस्वामिचरणैस्ताततत्त्वदः ॥७३॥
श्रीदामोदरदासाख्यः स्वप्रणामैककर्मणि ॥
हठात्स्वचरणाब्जाम्बुपाने च प्रतिबोधितः ॥७४॥
तदनु श्रीमदाचार्यैः स्वात्मा सन्दर्शितो बहिः ॥
अपूर्वं च वचः प्रोक्तं दामोदरपुरः क्वचित् ॥७५॥

मत्सूनुविट्ठलाधीश चरणोदकमाज्ञया ॥
ग्राह्यमार्येण भवता लोकान् वै संजिघृक्षता ॥७६॥
इत्याधाय शिरस्याज्ञां प्रातर्गोस्वामिनां गतः ॥
निकटेऽर्थितवान् दामोदरस्तच्चरणोदकम् ॥७७॥
प्रतिषिद्धस्तदा तैश्च प्रोक्तवाननुशासनम् ॥
मेऽभूत्पूर्वैर्गुराचार्यशासनं नान्यथा तु यत् ॥७८॥
तदाज्ञाय ददुः श्रीमदाचार्यप्रभुसूनवः ॥
तदाप्रभृति गोस्वामिचरणाश्चरणोदकम् ॥७९॥
यस्मै दामोदराख्याय तृतीये तृतीयेऽहनि ॥
स्वात्मानं दर्शयन्ति स्म श्रीमदाचार्यदीक्षिताः ॥८०॥
स्वमार्गवार्त्तामाहुश्च कृपापात्राय भाविताः ॥
कदाचिच्चेद् दर्शयेयुर्न स्वमाचार्यसूरयः ॥८१॥
तदास्यात्तद्दिने शूलव्यथा तस्योदरेऽधिका ॥
यदात्मानं दर्शयेयुः साऽथ शांता तदा भवेत् ॥८२॥
इत्याचार्यात्रलोकातिमुदितात्मा स वैष्णवः ॥
श्रीदामोदरदासाख्यः कियत्संवत्सरावधि ॥८३॥
अवदद्भगवद्वार्तां गूढां गोस्वामिनः प्रति ॥
अहर्निशं भागवतप्रक्रियां च स्वमार्गतः ॥८४॥
इत्थं यस्याधिकां बोधशक्तिं वीक्ष्य विलक्षणाम् ॥
गोस्वामिपादाः प्रणतिं प्रत्याचेरुर्हि तद्दिनात् ॥८५॥
वैष्णवानामथान्येषामाहुः स्म पुरतः क्वचित् ॥
अहो दामोदरस्यान्तराचार्याः सम्प्रतिष्ठिताः ॥८६॥

त एवोपदिशन्तीति ततो दामोदरस्य ताः ॥
वार्ता अगाधा भूयस्य इति प्रोक्ताः समासतः ॥८७॥
यावच्छ्रीवल्लभार्याणां मार्गस्येह स्थितिः कलौ ॥
तावद्दामोदरस्यास्य भवित्री जन्मभिर्मुहुः ॥८८॥

इति वैष्णव वार्ताया मालायां प्रथमो मणिः

वार्ता २

अथान्यो वैष्णवः श्रीमदाचार्यपदसेवकः ॥
मेघनश्रीकृष्णदासस्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥८९॥
यदा श्रीवल्लभाचार्या, पृथ्वीप्रक्रमणे गताः ॥
तदा सार्थे कृष्णदासोऽनुयाति स्म पदानुगः ॥९०॥
उदीच्यां बदरीनारायणस्थानोत्तरं गिरेः ॥
कर्णिकाख्यस्य महतः शिखरात्पतितां शिलाम् ॥९१॥
स्तम्भयामास हस्तेनेत्यालोक्याचार्यवर्यकाः ॥
तुष्टा वरं वृण्विति तं त्रिवाचा समुदैरयन् ॥९२॥
तदा तेन पुरस्तेषां याचितं हि वरत्रयम् ॥
आद्यो मुखरतादोषनिवृत्तिर्मेऽस्त्विति स्वतः ॥९३॥
आयातु हरिसिद्धान्तः स्वमार्गस्येति चाऽपरः ॥
तृतीयो मद्गुरुगृहे पदधारणमित्युत ॥९४॥
तदाकर्ण्याचार्यवर्या ददुस्तद्वद् वरद्वयम् ॥
गुरुगृहे पदन्यासं नाऽङ्गीचक्रुर्महाशयाः ॥९५॥
अथो बदर्याश्रमतोऽप्यग्रे प्रचलितैः पुनः ॥
अमर्त्यगम्ये प्रदेशे श्रीमदाचार्यवर्यकैः ॥९६॥

प्रतिषिद्धोनुगः कृष्णदासोऽत्र स्थेयमेव ते ॥
नाऽऽगन्तव्यमितश्चेति स्वयं त्वेकाकिभिर्गतम् ॥९७॥

दिनत्रयावधि स्थाने स्थितं तेन च तत्र हि ॥
तृतीय दिवसान्ते तु स्वाचार्यैः सुसमागतैः ॥९८॥

उक्तस्तदेतो न गतः परावृत्य कथं भवान् ॥
तदातेनोक्तमाचार्याः क्व यामि भवतामहम् ॥९९॥

मुक्त्वा वो पादयुगलं शरणं मम नेतरत् ॥
श्रुत्वेति श्रीमदाचार्या भूयस्तुष्टास्तमब्रुवन् ॥१००॥

वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि वरं ब्रूहीति सेवकम् ॥
भूयोपि तत्तेन वृतं प्राक्तनं हि वरत्रयम् ॥१०१॥

पूर्ववत्तद्द्वयं दत्तमाचार्यैर्न तृतीयकः ॥
एकदा श्रीमदाचार्यान् गङ्गासागरसैकते ॥१०२॥

सुप्तान् यथासुखं रात्रौ कृष्णदासो विलोक्य सः
पाद संवाहनं मन्दं कुर्वाणोऽत्रोचदादरात् ॥ ॥१०३॥

भो महाप्रभवः किञ्चिद् बुभुक्षाचेत्तदेर्यताम् ॥
इत्याश्रुत्योक्तमाचार्यैर्धानापृथुकतन्दुलाः ॥१०४॥

भर्जिता मुदुला लभ्याश्चेत्स्युस्तानदम्यहन्त्विति ॥
श्रुतवान्स समाज्ञाय स्वाचार्यान् शयिताञ् शनैः ॥१०५॥

कृष्णदासः समुत्थाय गङ्गां तीर्त्वा पुरे गतः ॥
तत्र भ्राष्ट्रे भर्जयित्वा क्रीतान् पृथुकतन्दुलान् ॥१०६॥

आनिनाय पुनर्मन्दं पादसंवाहमाचरत् ॥
अथाचार्यान्सम्प्रबुद्धानुत्थितानवलोक्य सः ॥१०७॥
कृष्णदासोऽग्रतस्तेषामर्पयामास तान्मृदून् ॥
तदा तानवलोक्योक्तमाचार्यैः कुत आहृताः ॥१०८॥
इति पृष्टः स्म स प्राह यथावद्वृत्तमात्मनः॥
भुक्त्वा भूयः प्रसन्नैस्तैरुक्तं भो वृणु मद्वरम् ॥१०९॥
ततस्तदेव तेनापि प्रार्थितं प्राग्वरत्रयम् ॥
ओमिति श्रीमदाचार्यैरभ्युपेत्य ह्युदीरितम् ॥११०॥
किमपि प्रार्थितुं शक्तो जीवोऽल्पोऽयं न मद्वरम् ॥
यदेतत्समये तेन प्रार्थितं देयमेव तत् ॥१११॥
यद्वा कदाचिद्भगवत्स्वरूपं प्रार्थितं भवेत् ॥
तदप्यस्मै दातुमर्हं वाग्बद्धेन मयेत्यथ ॥११२॥
प्रयातं श्रीमदाचार्यैरुत्थितैः शूकरस्थले ॥
तत्र श्रीकृष्णदासेन कृतं विज्ञापनं पुरः ॥११३॥
अत्रास्ते मे गुरुः कश्चिदानये तं पुरोऽद्य वः ॥
तद्विज्ञापनमाकर्ण्यप्रोक्तमाचार्यपण्डितैः ॥११४॥
तदन्तिके याहि परं दुःखं ते भवितेति वै ॥
तदा श्रीकृष्णदासस्तु मुदाविष्टस्ततोगतः ॥११५॥
प्रणम्याह गुरुं शीते तपन्तं वह्निनाऽऽसने ॥
भोः प्राप्ताः श्रीवल्लभार्यास्तत्पार्श्वे गम्यतां गुरो ॥११६॥
श्रुत्वोक्तं तेन सरुषा कृतः किमपरो गुरुः ॥
त्वं मे गुरुः परं युष्मत्प्रसादात्पुरुषोत्तमः ॥११७॥

लब्धो मयेश्वरः साक्षादिति सत्यं ब्रवीमि भोः ॥
तदोक्तं गुरुणा त्वेतत्कथं शक्येत वेदितुम् ॥११८॥
यदीश्वरः सत्यमिति साक्षात्स पुरुषोत्तमः ॥
तदैव कृष्णदासेन ज्वलतोऽग्नेर्गुरोः पुरः ॥११९॥
अङ्गारानञ्जलौ कृत्वा मुहूर्तान्तं समास्थितम् ॥
उक्तं च सत्यवचसाऽऽन्यथा भावोऽत्र चेद्गुः ॥१२०॥
मे तदास्तां करौ दग्धाविति भीतो विलोक्य सः ॥
गुरुराह स्म करतो निःक्षिपेति पुनः पुनः ॥१२१॥
तथापि तेन ते नैव क्षिप्ता अङ्गारकाः करात् ॥
तदातेनैव गुरुणा हस्ताभ्यामात्मनो द्रुतम् ॥१२२॥
धृत्वा श्रीकृष्णदासस्याञ्जलितस्ते निपातिताः ॥
आः सत्यं तेऽभिविज्ञातं सन्ति ते पुरुषोत्तमाः ॥१२३॥
अतोऽहमपि तेषां वै शरणं यामि नान्यथा ॥
इत्यन्तर्गूढनिर्वेदः स तेषां शरणं गतः ॥१२४॥
कालान्तरे तत्कृपया सिद्धिं प्राप सुदुर्लभाम् ॥
अथ श्रीकृष्णदासस्तु गुरुक्षोभसुदुःखभाक् ॥१२५॥
आगत्य श्रीमदाचार्यसमीपे तद्यथाऽब्रवीत् ॥
सर्वं जातं भवत्प्रोक्तं नान्यथेति कृपाबलात् ॥१२६॥
श्रीमदाचार्यपादानां मार्गसिद्धान्त आहितः ॥
बहिर्मुखरतादोषः कृष्णस्य सुविनिर्गतः ॥१२७॥
पुनः कदाचिदाचार्या गोप्यवार्तां स्म कुर्वते ॥
रसभावभृतां विष्णोः कृष्णदासाय धीमते ॥१२८॥

स च हर्षेण महता वैष्णवेष्ववदत्क्वचित् ॥
तस्योक्तं वृत्तमाचार्यसमीपे वैष्णवैः क्वचित् ॥१२९॥
प्रकाशयत्यं राजश्रीमदाचार्यवर्यकाः ॥
भवदुक्तां गोप्यवार्तां वैष्णवेष्विति चासकृत् ॥१३०॥
तदैव श्रीमदाचार्यैः स पृष्टः कृष्णदासकः ॥
किमहो कृष्णदास त्वं गोप्यवार्तां वदस्यलम् ॥१३१॥
मदीरितां वैष्णवानामग्र एते वदन्ति हि ॥
तदोक्तं कृष्णदासेन महाराजा महाशयैः ॥१३२॥
ते पृष्टव्याः समाहूय भवद्भिर्वैष्णवाः खलु ॥
कृष्णदासेन का गोप्यवार्ता प्रोक्ता भवत्स्विति ॥१३३॥
तदैव श्रीमदाचार्यैराहूता वैष्णवास्तु ते ॥
प्राप्ताः प्रणम्योपासीनाः पृष्टा गोप्यकथास्मृतौ ॥१३४॥
तदोक्तं तैर्महाचार्याः कृष्णदासमुखाच्छ्रुताः ॥
गोप्यवार्ताः परं नाप्ताः स्मृतिगोचरतामिति ॥१३५॥
तदा तूष्णीं स्थितं श्रीमदाचार्यैः सस्मिताननैः ॥
सर्वेषां मिषतां मध्ये कृष्णदास उवाच ह ॥१३६॥
भो महाप्रभवो गोप्या वैष्णवैर्यदि वा श्रुताः ॥
ता वार्तास्तर्हि किं जातं हृदि न स्थिरतामिताः ॥१३७॥
तत्स्थैर्यं दानसापेक्षं दानं दातृवशं यतः ॥
तद्दानं तु महाचार्या भवन्तः कुर्युरेव चेत् ॥१३८॥
तास्तद्धृदिस्था भवन्ति नान्यथेति मतिर्मम ॥
इत्युक्त्वा विररामाथ सर्वे निःसंशयास्तदा ॥१३९॥

यथागतं गताः सर्वे श्रीमदाचार्यसेवकाः ॥
एतादृशः कृष्णदासो बभूवान्वर्थनामभाक् ॥१४०॥
श्रीवल्लभाचार्यवर्यकृपापात्रं स वैष्णवः ॥
एकदा कृष्णदासेन पृष्टमाचार्यकान्प्रति ॥१४१॥
आर्याः प्रभोः प्रियं किंस्विदप्रियं ब्रूत शास्त्रतः ॥
श्रुत्वेत्यार्याः प्राहुरहो प्रभुरुत्तमवस्तुभुक् ॥१४२॥
परन्तु गोरसस्यातिभोक्ता नो भक्तवत्सलः ॥
विद्ध्यप्रियं हरेर्धूमं भक्तिमार्गविरोधि यत् ॥१४३॥
इत्याकर्ण्य प्रमुदितः क्वचिदित्थं स पृष्टवान् ॥
रघुनाथः कोशलाः स्वाः प्रजा आदाय जग्मिवान् ॥१४४॥
स्वधामाथ स्वरनयद्रामो दशरथं कुतः ॥
तत्र प्रत्यूचुराचार्या भो दयालुः स राघवः ॥१४५॥
तं तादृशं स्वरनयत्पितरं कैकयीवशम् ॥
यः स्ववाक्यमृतं कर्तुं विपिने राममत्यजत् ॥१४६॥
श्रुत्वेति पुनरापृच्छदार्या भक्तोपि सन्न यः ॥
प्रभोर्लीला यथारूपसम्बन्धं भावयत्यसौ ॥१४७॥
विधिवत्तत्कथमिति संशयो मे निवार्यताम् ॥
तत्र प्रोचुर्भूय आर्या रे करोति प्रभुः स्वतः ॥१४८॥
अनाचन्रतो यथावदेते भक्ता अपि स्वयम् ॥
स्युः कथं वा नु भविनो भक्तसङ्गतिवर्जिताः ॥१४९॥
सद्भक्तसङ्गिनः स्युश्चेत्प्रभोर्लीलाविदस्तदा ॥
स्वरूपयोग्यमात्मानं जानन्तो नाचरन्ति तत् ॥१५०॥

आचरन्ति च केऽप्यन्ये नान्तःकरणपूर्वकम् ॥
ततो विभोरूपलीलाभेदं नानुभवन्ति ते ॥१५१॥
सङ्गादुत्तमभक्तानां श्रीभागवतभावनात् ॥
पृष्ट्या वा भावमारूढो भगवद्भावमाप्नुयात् ॥१५२॥
कृष्णो व्रजस्थानां सङ्गे सदैव स्थितवान्यथा ॥
सेवायां स तथारुद्ध इति निश्चयवान् भवेत् ॥१५३॥
यत्रैतन्मार्गीयजना येषां हृदि हरिः सदा ॥
ते वैष्णवाः सानुभवास्तेषां सङ्गः फलावहः ॥१५४॥
यथेह गर्जनाद्याः स्युर्भावतः सेवया सिताः ॥
तेषां सर्वेऽत्राभिलाषाः सिद्धा आसन् भवन्ति च ॥१५५॥
लीलानां व्रजभक्तानां भावमेवानुचिन्तयेत् ॥
सेवाप्रकारमेतस्य वैष्णवसङ्गतश्चरेत् ॥१५६॥
यः पृष्ट्या सर्वभावेन स कृष्णानुभवी भवेत् ॥
इत्याश्रुत्य स गम्भीरं शास्त्रार्थं मुखतः सतः ॥१५७॥
आर्याणां सेवकः कृष्णदासो निःसंशयोऽभवत् ॥
एकदा श्रीमदाचार्यैर्गतः सह स वैष्णवः ॥१५८॥
बदर्यां श्रीमदाचार्याः फलाहारं समाचरन् ॥
तत्र क्वापि फलाहारकरणार्थं फलान्यपि ॥१५९॥
न लेभे कृष्णदासोऽथ बदरीशोऽप्यमार्गयत् ॥
क्वचिन्न लेभे सोऽपीशः कृष्णदासश्च तावुभौ ॥१६०॥
ऊचतुः श्रीमदाचार्यसमक्षं खिन्नचेतसौ ॥
भो महार्याः फलाहारकृते वोऽत्र फलान्यपि ॥१६१॥

क्वचिन्न लब्धान्यावाभ्यां ज्ञाप्यतां करवाव किम् ।
तथालोक्याचार्यवर्याः स्वान्तः खिन्नहृदोऽब्रुवन् ॥१६२॥
अहो मदर्थं बदरीनाथोऽपि श्रममाचरत् ॥
इत्युत्थाय स्वयं पाकमाचरन्नार्यसत्तमाः ॥१६३॥
समर्प्य तद्भोगमस्मै बुभुजुस्तं प्रसादितुम् ॥
इत्येतद्वृत्तमालक्ष्य वैष्णवाश्चावदन् प्रियम् ॥१६४॥
हंहो श्रममिमं तं श्रीबदरीशः कुतोऽकरोत् ॥
तदाकर्ण्याब्रवीत्कृष्णदासो रे विकलाःस्थ किम् ॥१६५॥
आचार्यार्थं श्रमं साक्षाद्गोवर्द्धनधरः प्रभुः ॥
कुरुते किमुतैषोऽत्र बदरीपतिरित्यलम् ॥१६६॥
कदाचित्ते महाचार्या बदरीविपिने घने ॥
विचरन्तः स्वीयकृष्णदासमर्वाग् जनस्थले ॥१६७॥
अवस्थाप्यावदन्नेवं त्वमिह तिष्ठ मेऽनुग ॥
अहमेकः प्रतिष्ठामि प्रभोर्मन्दिरसंमुखम् ॥१६८॥
इत्याज्ञाप्य गतास्त्वार्याः स्वालयं बदरीपतेः ॥
तदन्तिके व्याससमुनेराश्रमं स्वयमभ्ययुः ॥१६९॥
तत्रासीनं व्यासदेवं वीक्ष्योचुर्विनयान्विताः ॥
जयश्रीकृष्णेति मुदा व्यासोऽभ्यागत्य सोऽब्रवीत्॥१७०॥
भो वागीशाचार्यवर्याः श्रीमद्भागवतेऽखिले ॥
टीका कृताऽऽस्ते भवद्भिरिति श्रुत्वाऽथ तेऽब्रुवन् ॥१७१॥
कृष्णद्वैपायन विभो कृता सेह मयेत्यृतम् ॥
तन्निशम्याऽथ स मुनिर्मह्यमाश्राव्यतां तु सा ॥१७२॥

तदोमित्यभ्युपेत्यार्याः टीकां स्वेन कृतां मुदा ॥
वामबाहुकृतेत्यत्र व्याचख्युर्नैकधा बुधाः ॥१७३॥
तदाकर्ण्याब्रवीद्व्यासोऽवधर्तुं न क्षमोस्म्यहो ॥
एतावताऽलं गम्भीरश्रीभागवतभावुकाः ॥१७४॥
तमापृच्छंस्तदाचार्या मुने भ्रमरगीतके ॥
व्रजौकसामभिमुखोद्धवप्रस्थापनोत्सवे ॥१७५॥
पद्यं पतितमाभाति तद्देयमपरत्र च ॥
ज्ञाप्यं न्यूनं यदधिकं पाठं भिन्नं समाहितम् ॥१७६॥
तच्छृण्वानः कृष्णमुनिरङ्गीकृत्येत्यवाचयत् ॥
आत्मत्वाद्भक्तवश्यत्वात्सत्यवाक्त्वात् स्वभावतः ॥१७७॥
इत्याद्युपरि टीकान्तेऽनन्तरं चक्रुरादरात् ॥
ततो द्वितीयेऽह्न्याचार्या बदरीशं व्यलोकयन् ॥१७८॥
तद्दिने वामनद्वादश्युपोषणपरान्स तान् ॥
बदरीपतिराहेति भो महार्या मया वने ॥ ॥१७९॥
सर्वत्र फलमन्विष्टं फलाहाराय निर्जने ॥
आतिथ्यार्थं च भवतामुपलब्धं न कुत्रचित् ॥१८०॥
तद्भुज्यतां प्रसादान्नमुत्सवान्ते च पारणम् ॥
ततः प्रभृति केषांचिदस्मन्मार्गानुवर्त्तिनाम् ॥१८१॥
कृताकृतं श्रीवामनद्वादशीव्रतमुच्यते ॥
ततस्त्वार्या बदरिकाधीश्वरेण विसर्जिताः ॥१८२॥
तत्र सन्तं कृष्णदासं समेतास्त्रिदिनेन तम् ॥
तिष्ठन्तमेकपादेन दृष्ट्वात्यर्थमभर्त्सयन् ॥ ॥१८३॥

अहो त्वामहमास्थाप्य गतवान्स भवानिह ॥
उपविष्टः कथं नात्र कृष्णदास यथासुखम् ॥१८४॥
तदाकर्ण्योक्तवान्कृष्णदासो भो मे महाशयाः ॥
एवमेवानुशास्तिर्वो यदत्र स्थीयतामिति ॥१८५॥
ततोऽहं स्थितवानेवं न त्वत्रासितवानिति ॥
आश्रुत्य श्रीमदाचार्यास्तुष्टा मुमुदिरे भृशम् ॥१८६॥
सेवकस्य तु धर्मोऽयं यथाज्ञावचनं सताम् ॥
तथैवानुविधातव्यमिति धर्मविदो विदुः ॥१८७॥
इति वैष्णववार्तामालायां द्वितीयोमणिः

वार्ता ३

श्रीदामोदरदासोन्यः कान्यकुब्जे बभूव ह ॥
क्षत्री शंभरवालाख्यस्तस्यवार्ता निरूप्यते ॥१८८॥
तेन दामोदरेणाऽत्तं ताम्रपत्रं क्वचिद् भुवि ॥
तस्मै केनचिदित्युक्तं स्वप्ने येनाक्षराणि भोः ॥१८९॥
ताम्रपत्रगतान्यग्रे वाचितानि भवन्ति हि ॥
तस्य त्वं शरणं याहि सर्वथेति प्रबुद्धवान् ॥१९०॥
बहूनां स पुरः पत्रं दर्शयामास वैश्यराट् ॥
अस्पष्टवर्णं तत्पत्रं नैव केनापि वाचितम् ॥१९१॥
ततः कतिपयाहानुपदमाचार्यपण्डिताः ॥
तत्र याता उपघनस्थले समुषिताः पुरे ॥१९२॥
प्रेषयामासुरामान्नानयने कृष्णदासकम् ॥
न ज्ञापनीयोऽस्मि पुरः कस्यापीति प्रबोध्य तम् ॥१९३॥

यद्दामोदरदासः स्वयमायास्यति पथिस्व आचार्याः ॥
जीवोद्धारणमुदितं भावि स्वतएव तदिति हृदा ॥१९४॥
गतस्स कृष्णदासोऽपि ततो ग्रामे तदाज्ञया ॥
आमान्नानयने दामोदरदासोऽमिलत्तदा ॥१९५॥
प्रत्यभ्यजानात्तं कृष्णदासं दर्शनमात्रतः ॥
मध्येमार्गं नृपद्वारादश्वारूढः समागतः ॥१९६॥
दामोदरः पृष्टवान् भोः किमाचार्याः समागताः ॥
तदोक्तं कृष्णदासेन न मे तदनुशासनम् ॥१९४॥
यद्ब्रूयामधिकां वार्तामामान्नानयनात्पराम् ॥
इत्यावेद्य तदामान्नं कृष्णदासः समाययौ ॥१९८॥
तस्यानुपदमायातः स च दामोदरः स्वतः ॥
आगत्यान्तःस्थितान् गेहे श्रीमदाचार्यपण्डितान् ॥१९९॥
प्रणम्य दण्डवद्दामोदरदासोऽग्रतः स्थितः ॥
दृष्ट्वा तमारात् पप्रच्छुः कृष्णदास कथं त्वया ॥२००॥
ज्ञापितोऽहमिति श्रुत्वा कृष्णदास उवाचह ॥
न मया वेदितः श्रीमदागमोऽस्यानुवर्त्तिनः ॥२०१॥
तावद्दामोदरेणोक्तं महाराजा धिया मयि ॥
अनेन नैवाभिहितं श्रीमदागमनं स्मृतम् ॥२०२॥
परं दृष्टवता चैनं मयानुपदमागतम् ॥
इति सत्यं समाकर्ण्य श्रीमदाचार्यसूरयः ॥२०३॥
दामोदरं तं प्रत्यूचुरहो पत्रं समानय ॥
तदोक्तं तेन भो प्राज्ञाः किं पत्रेण प्रयोजनम् ॥२०४॥

प्रपन्नं मां सानुबन्धमङ्गीकुरुत किंकरम् ॥
तथापि तैः प्रसिद्ध्यर्थमीरितः स समानयत् ॥२०५॥
ताम्रपत्रं तदाचार्यचरणाग्रे न्यवेदयत् ॥
विलोक्य पत्रमाचार्या वाचयामासुरादरात् ॥२०६॥
ज्ञात्वाऽऽभिप्रायमखिलमङ्गीचक्रुर्हरीच्छया ॥
तं दामोदरदासं तत्पत्नीं चापि पतिव्रताम् ॥२०७॥
शरणात्मकमन्त्रेण गद्यपञ्चाक्षरेण च ॥
हरौ निवेदयामासुरात्माद्यर्पणपूर्वकम् ॥२०८॥
ततस्ताभ्यां दम्पतिभ्यां परमादरपूर्वकम् ॥
स्वगृहे श्रीमदाचार्याः समानीता निवासिताः ॥२०९॥
तदन्वाभ्यां जम्पतिभ्यां विज्ञाप्याञ्जलिपूर्वकम् ॥
प्रोक्तं भोः प्रभवो नित्यमावाभ्यां कार्यमत्र किम् ॥२१०॥
तदाकर्ण्योक्तमाचार्यैर्भो युवाभ्यां प्रभुर्हरिः ॥
भजनीयः कलौ मूर्त्यां प्रेमसेवाप्रकारतः ॥२११॥
तदान्विष्याचार्यवर्यैः स्वर्णकारस्य कस्यचित् ॥
गृहे विप्रन्यासभूतो मूर्तिमान् द्वारिकेश्वरः ॥२१२॥
चतुर्भुजः श्यामतनुः प्रदाय धनमाहृतः ॥
दामोदरस्य स गृहे लिप्ते समुपवेशितः ॥२१३॥
आदितो नूतनैः पात्रैर्मृन्मयैरपि चाम्बरैः ॥
समं संभृत्य सम्भारं शय्यासिंहासनादिकम् ॥२१४॥
आगत्य श्रीमदाचार्यैर्मन्त्रपूर्वकमादरात् ॥
पञ्चामृतेनाभिषिक्तः प्रभुः श्रीद्वारिकेश्वरः ॥२१५॥

वस्त्रभूषालंकृतश्च स्थापितः पीठके शुभे ॥
भोगारार्तिसुगीताद्यैरुत्सवः सुमहान्कृतः ॥२१६॥
दामोदरेण विप्राद्या वैष्णवाश्च विशेषतः ॥
भोजिताः परमान्नेन सपत्नीकेन तेन हि ॥२१७॥
ततःप्रभृति नित्यं स प्रेम्णा सेवां समाचरत् ॥
नागवल्लीदलानि श्रीद्वारिकेशार्थमेकदा ॥२१८॥
आनीतानि श्यामलानि दृष्ट्वाचार्यैः प्रबोधितः ॥
भो दामोदरदासेत्थं नागवल्लीदलानि ते ॥२१९॥
श्यामानि नार्पणीयानि ह्युत्तमोत्तमभोजिने ॥
नूतनं वस्तु परममर्प्यमन्यानिवेदितम् ॥२२०॥
यद्यदिष्टतमं लोकेयच्चातिप्रियमात्मनः ॥
भोज्यं भक्ष्यं रम्यवस्त्रं सुगंधिद्रव्यमेव च ॥२२१॥
अथ ग्राह्यमर्पणीयन्तत्प्रसादीकृतं स्वयम् ॥
इत्येवं भगवन्मार्गविधिं श्रुतवता हृदि ॥२२२॥
श्रीमदाचार्योक्तशिक्षावचनं तेन धारितम् ॥
श्रीदामोदरदासेन सपत्नीकेन नित्यदा ॥२२३॥
सेवापरेण स्वविभोर्जलानयनकारिणा ॥
आहरन्तं जलमिमं वीक्ष्याह श्वशुरः क्वचित् ॥२२४॥
आनेतव्यं जलं दास्या ज्ञातयोऽत्र हसन्ति नः ॥
श्रुत्वेति तेनोमित्युक्तं परेद्युर्दम्पती गतौ ॥२२५॥
प्रत्येकं घटमादाय तस्यापणसमीपतः ॥
तथोभौ प्रेक्ष्य स ह्रीणो गृहे तस्याऽपतत्पदोः ॥२२६॥

क्षम्यतां पूर्वं तत्कार्यं स्वयं कुर्यास्तथा नहि ॥
श्रुत्वेति स्वयमेवैको जलमाहरदुत्तमः ॥२२७॥
एवं जुषं तु तं साक्षाद्याचते भाषते प्रभुः ॥
एकदा श्रीमदाचार्यैरुक्तं तत्परिचर्यया ॥२२८॥
दृष्ट्वा तयोर्मेदभावं दम्पत्योर्मिषतां सतम् ॥
हं हो न दृष्टो यै राजाम्बरीषो वैष्णवः श्रुतः ॥२२९॥
तैरयं दृश्यतां दामोदरदासः स्त्रिया सह ॥
सचाम्बरीषो मर्यादामार्गीयो वैष्णवोऽभवत् ॥२३०॥
अयं तु पुष्टिमार्गीय इति भावविवेकतः ॥
एवं सेवां स कुर्वाणः पत्न्या सह महामतिः ॥२३१॥
मन्दिरे श्रीद्वारिकेशं शाययित्वोर्ध्वमेकदा ॥
स्वयं सुष्वापोष्णकाले चतुर्द्वारि सुवातके ॥२३२॥
तदहोरात्रमूष्णापि भूय एवाभ्यजायत ॥
अधः सुप्तां गृहे दासीमेकां संप्रतिबोध्य च ॥२३३॥
श्रीद्वारिकेशः संप्राह कपाटोद्घाटनं कुरु ॥
तदाश्रुत्य तु दास्या तत्कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥२३४॥
कृत्वा तु सुप्ता सामूढा निद्रयोपहतेन्द्रिया ॥
जाते प्रभातेऽथ दामोदरदासः समुत्थितः ॥२३५॥
चैत्यं ददर्श पत्नीं तदुद्घाटितकपाटकम् ॥
ससंभ्रमधियाऽपृच्छत्कपाटोद्घाटनं कथम् ॥२३६॥
कृतं केन विशङ्केन जनेनेह निगद्यताम् ॥
तदाकर्ण्य भिया दास्या गदितं भो मया निशि ॥२३७॥

द्वारिकेशेनेरितया कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥
इत्याश्रुतवता तेन सरुषोक्तं सतर्जनम् ॥२३८॥
त्वया किमिति रे दासि कपाटोद्घाटनं कृतम् ॥
ततस्त्रसो सेवनार्थं मन्दिरे गतवाँस्त्वयम् ॥२३९॥
तत्र प्रबोधयामास प्रभुं स्वं द्वारिकेश्वरम् ॥
तदोक्तं द्वारिकेशेन कथं दामोदर त्वया ॥२४०॥
भर्त्सिता वर्जिता दासी सा मयैवेरिता खलु ॥
कपाटोद्घाटनं चैत्यद्वारः कृतवती सती ॥२४१॥
त्वं तु गत्वोपरिगृहे सुप्तो वातायने निशि ॥
मां शाययित्वान्तर्गेहे स्वयमूष्मातिकातरः ॥२४२॥
इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं तत्र दामोदरः स्वयम् ॥
संकल्पं कृतवानन्यं कारयित्वैव मन्दिरम् ॥२४३॥
वातायनमथान्नं हि भोक्ष्यामीतिप्रतिज्ञया ॥
तदा स्त्रियोक्तं प्रतिज्ञा कथं ते निर्वहेदहो ॥२४४॥
अनल्पकालसाध्यत्वात् प्रभुर्मन्दिरनिर्मितेः ॥
विना प्रसादान्नभुक्तिं चिरं कथमवस्थितिः ॥२४५॥
इत्युक्ते स पुनः प्राह तर्हि रन्धितमन्नकम् ॥
नात्स्यामि तु फलाहारं करिष्यामीति निश्चितम् ॥२४६॥
इति सत्यप्रतिज्ञेन फलाहारं प्रकुर्वता ॥
श्रीदामोदरदासेन मन्दिरं कारितं शुभम् ॥२४७॥
शुभे मुहूर्त्ते तत्रात्मप्रभुः समुपवेशितः ॥
नित्यं सेवां चकारासौ सपत्नीको मुदान्वितः ॥२४८॥

एकदापुनरात्मीयंप्रभोर्भोगोत्तरं मुदा ॥
शय्यां मार्जयता तेन मन्दिरे तल्पकान्तिके ॥२४९॥
स्वास्तृते स्वासने दृष्ट्वा मार्जारोच्चरितं मलम् ॥
उक्तं हंहो भगवता स्वशय्यापि न रक्ष्यते ॥२५०॥
तदनु स्वजनेनाथ तन्निःसार्य विलिप्य च ॥
सेवाकर्मण्याप्रतोऽभूत् राजभोगसमर्पणे ॥२५१॥
समर्प्य सूपोदनकस्थालं शाकादिवेष्टितम् ॥
यावद्बहिः समासीत तावत् स्वप्रभुणा रुषा ॥२५२॥
पदा निःक्षिप्य तत् स्थालमुक्तं रे सेवकोऽत्र कः ॥
त्वं वाऽहं वेति रक्षां कः कुर्यात्सर्वस्य वस्तुनः ॥२५३॥
इत्याकर्ण्य तदा दामोदरेण च सह स्त्रिया ॥
अनुनीतश्चाटुवाक्यैर्द्वारिकेशोऽनुतापिना ॥२५४॥
पूर्णनूतनपाकेन राजभोगेन भोजितः ॥
तथापि मासद्वितयं द्वारिकेशो न चावदत् ॥२५५॥
ततो बहुविधैर्वाक्यैरनुनीतः स्वयं प्रभुः ॥
चिरादवददाचार्यानुगं दामोदरं प्रति ॥२५६॥
एकदा हरसान्याख्यः श्रीदामोदरदासकः ॥
गृहं शंभलवालस्य गतो दामोदरस्य ह ॥२५७॥
श्रीदामोदरदासेन शंभलग्रामवासिना ॥
संमानितो बहुविधं पंचसप्तदिनं स्थितः ॥२५८॥
ततोऽरिल्लग्राममितः स्वाचार्यान् दृष्टवान्नतः ॥
पृष्टोऽथ श्रीमदाचार्यैः स्वागतं भद्रमस्तु ते ॥२५९॥

दामोदरगृहे स्थानं सुकृतं बत ते कृतम् ॥
प्रसदान्नं किं गृहीतं तत्र स्थितवतेति भोः ॥२६०॥
अवदत् सत्यमेवाऽग्रे तेषां दामोदरोऽनुगः ॥
महाचार्या मया तत्र प्रसादान्नं न रन्धितम् ॥२६१॥
भुक्तं चिरं स्थितवता दामोदरगृहे सता ॥
तदाकर्ण्याचार्यवर्यैरुषोक्तं करुणाकरैः ॥२६२॥
अहो मदन्तरङ्गाय सेवकाय गृहे प्रभोः ॥
सेवकेन मदीयेन तेन नाऽवेदितं कुतः ॥२६३॥
रन्धितं तत्प्रसादान्नमुच्छेषमधरामृतम् ॥
इत्यस्फुरद् गृहे दामोदरशम्भलवासिनः ॥२६४॥
प्रायो रुष्टा ममाचार्या यामि कान्ते हरिं जुष ॥
श्रीमदाचार्याभिमुखमित्युक्त्वा निःसृतो गृहात् ॥२६५॥
अरिल्लग्राममागत्य स च स्वाचार्यपादयोः ॥
पतितो दण्डवन्मूर्ध्ना साष्टाङ्गं प्रणनाम ह ॥२६६॥
तमालोक्याचार्यवर्या न तत्संमुखमास्थिताः ॥
इत्यकस्मात्क्रुधो वीजमन्विष्यन्स विसिस्मिये ॥२६७॥
विज्ञप्तिं कृतवान्नीचैर्महाराजा महाशयाः ॥
कोऽपराधोस्तिऽमे दृष्टो न तं जानामि बोध्यताम् ॥२६८॥
तदोक्तं श्रीमदाचार्यैः कथं तस्मै त्वया प्रभोः ॥
प्रसादान्नं स्थितवते रन्धितं नोपभोजितम् ॥२६९॥
तदाश्रुत्योदितं दामोदरदासेन कम्पता ॥
महाराजधिया दामोदरः पृष्टव्य एव वः ॥२७०॥

रन्धितं तत्प्रसादान्नं कथं नात्तं त्वयेति सः ॥
तदाहूय स तैः पृष्टः श्रीमदाचार्यपण्डितैः ॥२७१॥
यथातथं समवदन्महाराजा मयोषसि ॥
बालभोगाप्तसामग्रीप्रसादान्नं प्रभोस्तुयत् ॥२७२॥
तदेव भुक्त्वा सुप्रीतं मेवापकान्नमेवच ॥
रन्धितान्नं रुच्यभावान्न गृहीतमिति स्वतः ॥२७३॥
तच्छ्रुत्वा श्रीमदाचार्यैरुक्तं भो यद्यपि त्वया ॥
न स्वेच्छया रन्धितान्नं भुक्तं मे तु ततोऽपि रुट् ॥२७४॥
अस्मिन्दामोदरे जातेत्याचार्यास्तदनु स्वयम् ॥
समाधाय तदा दामोदरदासं स्वसेवकम् ॥२७५॥
बहु शंभलवालं तं मुदा विससृजुर्गृहे ॥
अथ वार्तेतरा दामोदरदासस्य रूप्यते ॥२७६॥
ख्याता शंभलवालस्य श्रीमदाचार्यसेविनः ॥
कान्यकुब्जे निवसतो गृहे गत्वा समेत्य हि ॥२७७॥
श्रीनन्दवासिनो लोका यान्त्यग्रे वैष्णवाः खलु ॥
श्रीमदाचार्यचरणदर्शनार्थं समुत्सुकाः ॥२७८॥
तदा दामोदरोऽप्येषां प्रत्येकं स्वर्णमुद्रया ॥
हस्तेसमुपहारार्थं प्रतिपादितयात्मनः ॥२७९॥
श्रीमदाचार्यपादेषु नतिसंदेशमावदत् ॥
रिक्तपाणिः कथमिति ब्रूयां प्रणतिवाचिकम् ॥२८०॥
तादृक्स्वभावो यो भावोद्गारिवर्णश्च निर्ममः ॥
दामोदरः सदामोदी पटुः प्रभुनिषेवणे ॥२८१॥

शतं यच्छ्वशुरेणोरुधनार्थेनेह दासिकाः ॥
कन्यकोद्वाहसमये पारिबर्हे प्रयोजिताः ॥२८२॥
सुखस्थितां मम सुतामेताः परिचरन्त्विति ॥
तथापि दामोदरस्य तस्य पत्नी हरिप्रिया ॥२८३॥
परिचर्याकर्म हरेः स्वयमेव चकार ह ॥
पादौसंवाहयन्तं स्वं दामोदरमथ क्वचित् ॥२८४॥
गृहे शयानाः स्वाचार्याः पप्रच्छुरिदमादरात् ॥
रे कश्चित्तेऽभिलाषोऽस्ति श्रुत्वेत्याह स मे नहि ॥२८५॥
स्त्रियं पृच्छेति सच तामपृच्छत्साऽर्थयत्सुतम् ॥
तत्काममावेदयत्ताँस्ते चाऽहुर्भविता सुतः ॥२८६॥
इत्युक्त्वाऽथगतास्ते श्रीद्वारं सा सत्ववत्यभूत् ॥
एकदा गर्भवत्यान्तः कुर्वत्या परिचारणम् ॥२८७॥
पार्श्ववर्त्तिगृहस्त्रीभिर्द्वाराप्रष्टः स्व (भड्डुली) ॥
प्राह ते भविता पुत्र इत्यन्याश्रयदोषतः ॥२८८॥
तस्य भावात्सुतं श्रुत्वा प्राप्तैराचार्यकैः क्वचित् ॥
अस्पर्शयद्भिः स्वौ पादौ पुरो दामोदरस्य ह ॥२८९॥
प्रोक्तं भावी म्लेच्छ इति जातो नीतोऽम्बिकाम्बया ॥
बभूव म्लेच्छसंसर्गान्म्लेच्छो देशान्तरं गतः ॥२९०॥
तद्दुःखपरितप्तौ तावनपत्यौ च दंपती ॥
अतिचक्रमतुः कालं भूयांसं हरिसेवया ॥२९१॥
श्रीदामोदरदासस्य देहत्यागो यदाभवत् ॥
तदा पत्न्या तथाभूतो गोपितो न प्रकाशितः ॥२९२॥

वैष्णवेभ्यः शनैरुक्तं नौरानेया सुमूल्यतः ॥
इतीरितैस्तैरानीता नौर्घट्टे कान्यकुब्जके ॥२९३॥
तत्र नावि धृतः श्रीमान् द्वारिकेशः प्रभुः स्त्रिया ॥
धनवस्त्रादिसामग्रीसहितः सपरिच्छदः ॥२९४॥
उक्तं भो वैष्णवा एतदरैलग्राममाप्यताम् ॥
श्रीमदाचार्यनिकट इति तैस्तत्तथा कृतम् ॥२९५॥
त्रिंशत्क्रोशगतायां तु नौकायां गाङ्गवारिणि ॥
दामोदरः स्त्रिया संस्थामितः पश्चात्प्रकाशितः ॥२९६॥
श्रुत्वा मृतं समायाता वैष्णवाः सुहृदस्तदा ॥
तस्य देहस्य संस्कारमकुर्वन् विधिवत्पुरः ॥२९७॥
श्रुत्वाऽऽगतः सुतो म्लेच्छो जातो दामोदरस्य यः ॥
गृहे किमपि नाऽऽप्तमासीद्द्रव्यं पितुर्हियत् ॥२९८॥
शिर आहतवानुक्तवृत्तान्तः केनचित् खलः ॥
नौकामनुगतोप्येको न प्रापाऽसौ दिगंतरम् ॥२९९॥
अथकैश्चोक्तमागत्य वैष्णवैर्हितमीप्सुभिः ॥
श्रीदामोदरदासस्य श्वसुरादिभिरागतैः ॥३००॥
पुत्रिके भक्ष्यमप्यास्ते धान्यं नेह किमत्स्यसि ॥
तयोक्तं यद्भवद्भिर्हिदेयं भोक्ष्यामि नान्यथा ॥३०१॥
इत्यभिप्रेत्य करुणैर्यद्दत्तं भक्षणं हि तैः ॥
तेनैवाऽऽमृति निर्वाहं कुर्वाणाऽगाद्धरेः पदम् ॥३०२॥

इतिश्री वैष्णववार्त्तामालायां तृतीयवार्तामणिः

वार्ता ४

पद्मनाभः कान्यकुब्जजातीयः कोपि ब्राह्मणः ॥
श्रीमदाचार्यशरणस्तस्य वार्ता निरूप्यते ॥३०३॥

कान्यकुब्जः पद्मनाभो व्यासासनसमास्थितः ॥
कथां कथयति स्माऽग्रे श्रोतॄणां वृत्तिमाँस्ततः ॥३०४॥

प्रष्टुमार्यानतो जानँस्तत्राप्तान्पुरुषोत्तमान् ॥
प्रपन्नः शरणं तेषां भक्तः स्वात्मसमर्पणी ॥३०५॥

उत्थापनक्षणे श्रीमदाचार्याः स्वासने स्थिताः ॥
कथां भागवतीं वक्तुं दामोदरसखान्प्रति ॥३०६॥

प्रथमं स्वनिबन्धं सत्पद्यं प्रोचुर्हितार्थिनः ॥
" पठनीयं प्रयत्नेन श्रीभागवतमादरात् ॥३०७॥

वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणैः कण्ठगतैरपि " ॥
श्रुत्वेति सोऽम्भोञ्जलिना संकल्पं कृतवानिमम् ॥३०८॥

वृत्त्यर्थं नैतत्कर्तेति तमाचार्यास्तदाब्रुवन् ॥
वृत्त्यर्थं नैतदायोज्यं तदा तेनोक्तमीश्वराः ॥३०९॥

संकल्पो मे कृतः किंचिन्नकार्यमिति वै गतः ॥
स्वीयानां यजमानानां गृहे तैरादृतो बहु ॥३१०॥

इतस्तु ग्लानिमाप्तो न वैष्णवस्य ममोचितम् ॥
उक्तश्चार्यैस्तव कथं निर्वाहो भविता बत ॥३११॥

तदोक्तवान् पद्मनाभो वैश्यवृत्त्येति निश्चितः ॥
एकदा श्रीमदाचार्यैः प्रयागे सुशयालुभिः ॥३१२॥

निशीथार्द्धे पद्मनाभदास आज्ञापितः सकृत् ॥
आनयस्व गृहादक्कामिति सत्वरमुत्थितः ॥३१३॥

प्रतिषिद्धोपि बहुभिर्वैष्णवैर्भोः क्व यास्यसि ॥
निशीथार्द्धेऽत्र नौर्बद्धा सुप्ताः कर्णधरा इति ॥३१४॥
गुरूणामविचार्याज्ञेत्येकवाक्येन चोदितः ॥
वेणीतीरं समासाद्य नाऽपश्यत्कमपि क्वचित् ॥३१५॥
स एतर्ह्येव कमपि ह्यकस्माद्बालमागतम् ॥
दशार्द्धवयसं धृत्वा प्लवमेकं ददर्श ह ॥३१६॥
बालेन पृष्टः किमहो पारमस्या यियाससि ॥
तदोक्तवान् पद्मनाभो हंहो पारं यियासितम् ॥३१७॥
तेन प्लवे स आरोह्य पारमुत्तारितः क्षणात् ॥
पृष्टोऽप्येष्यसि किं भूय इति श्रुत्वाऽवदत्स तम् ॥३१८॥
आयास्ये घटिकामध्ये तेनोक्तं त्वरयत्विति ॥
ततस्तु पद्मनाभोऽपि गत्वा प्रागन्तरालयम् ॥ ३१९॥
विज्ञप्तिपूर्वमक्कां स्वामानिन्ये बालकप्लवे ॥
बालेन प्रेरिते देवीमारुढां पारमानयत् ॥३२०॥
उत्तीर्य पश्चान्नाऽपश्यत् प्लवं नैव च बालकम् ॥
विस्मितः स समावेद्य तामक्कामोगतां पुरः ॥३२१॥
श्रीमदाचार्यपादानां प्रणतः साञ्जलिः स्थितः ॥
दृष्ट्वा तु श्रीमदाचार्यैराज्ञप्तस्तुष्टमानसैः ॥३२२॥
शयस्व साम्प्रतं नक्तमिति सुष्वाप नोदितः ॥
वैष्णवानां तदा तेषां मध्ये तैः पृष्ट आदरात् ॥३२३॥
किं विधाय गतोसीति तेन सर्वं तदीरितम् ॥
तदोक्तं वैष्णवैर्मित्र प्रभुस्ते प्रापितः श्रमम् ॥३२४॥

आयातो बालरूपेण प्लवं धृत्वा निशीथके ॥
इत्याकर्ण्याऽभवत्तूर्ष्णीभूतः सुप्तः स निद्रया ॥३२५॥
प्रातः समुत्थितैरेत्य वैष्णवैरीरितं पुनः ॥
श्रीमदाचार्यपुरतः पद्मनाभविचेष्टितम् ॥३२६॥
स्वप्रभोः श्रमदानादि श्रुत्वाचार्यैस्तदीरितम् ॥
सत्यमेतत्परमिदं मदिच्छातोऽस्यनाऽग्रहात् ॥३२७॥
नाऽधुना प्रतिदेष्टव्यो भवद्भिर्वैष्णवैः क्वचित् ॥
एकदा श्रीमदाचार्याश्चलिता व्रजगोकुलात् ॥३२८॥
अरिल्लं स्वमार्गमध्ये सङ्गताः क्षत्रियेण ह ॥
व्यापारिणा केनचित्सद्वाणिज्यपरिवारिणा ॥३२९॥
कान्यकुब्जदिशं मन्दं चलता सार्थभारिणा ॥
निरपेक्षास्तदाचार्या अग्रतो दूरमुज्झिताः ॥३३०॥
पश्चात्स्थितः स च शठैश्चोरैः पथि विलुण्ठितः ॥
श्रीमदाचार्यपादास्तु कान्यकुब्जपुरङ्गताः ॥३३१॥
स्वदामोदरदासस्य गृहे समुषिता मुदा ॥
प्रणताः सत्कृतास्तेन सकुटुम्बेन चात्मवत् ॥३३२॥
तत्रान्नं रन्धितं कृत्वाऽर्पयामासुः प्रभोः पुरः ॥
एतावता क्षत्रियः स क्रन्दमानः समागतः ॥३३३॥
पप्रच्छान्यान्बताचार्याः किं कुर्वन्तः क्वचाऽसते ॥
तदाश्रुत्य पद्मनाभदासेन हृदि चिन्तितम् ॥३३४॥
भोजने ह्यत्राऽऽचार्याणां वैयग्र्यं भवितेत्यतः ॥
उत्थितः पाणिना धृत्वा व्यापारिणमथाऽनयत् ॥३३५॥

बहिः प्रदेशे दूरेण पृच्छति स्म स तं शनैः ॥
भ्रातर्हृतं कियद्द्रव्यं चोरैस्तत्ते ददाम्यहम् ॥३३६॥
मा शुचो दैवविहतं यदीश्वरवशं जगत् ॥
तदा व्यापारिणा प्रोक्तमियद् द्रव्यं गतं मम ॥३३७॥
तदाश्रुतवता पद्मनाभदासेन वै करे ॥
गृहीत्वा श्रेष्ठिनः साधोः स नीतः कस्यचिद् गृहे ॥३३८॥
आराद् दृष्ट्वा पद्मनाभदासं स श्रेष्ठिसंज्ञकः ॥
स्वागतं पृष्टवानाज्ञा दीयतां कथमागतिः ॥३३९॥
तदा प्रोक्तं पद्मनाभदासेन श्रेष्ठिसत्पते ॥
अस्मै व्यापारिणे देयमियद् द्रव्यं गिरा मम ॥३४०॥
तावद् द्रव्यस्यास्य पत्रं मूलवृद्धियुतं लिख ॥
तन्निशम्येरितं साधु श्रेष्ठिना लिखितेन किम् ॥३४१॥
यद् द्रव्यं वाञ्छितं यावद् गृह्यतां तावदेव तत् ॥
तत्रोक्तं पद्मनाभेन नाऽदास्ये लिखितं विना ॥३४२॥
तदोक्तं श्रेष्ठिना द्रव्यमेवं ग्राह्यं निजेच्छया ॥
लिखित्वा तु तदा पत्रं पद्मनाभेन हस्ततः ॥३४३॥
विन्यस्य धर्मं तद्द्रव्यग्रहणे श्रेष्ठिकोन्वितः ॥
प्रदाप्याऽभीप्सितं द्रव्यं व्यापारी क्षत्रियोऽपि सः ॥३४४॥
विसर्जितः पद्मनाभदासोऽथाऽचार्यवर्यकैः ॥
भुक्तवद्भिर्बुधैः पृष्टः किमर्थं गतवान् क्व भोः ॥३४५॥
स तदा साञ्जलिः प्राह बहिः किंचित्कृते गतः ॥
तथापि श्रीमदाचार्यैरीश्वरैर्विदितं हि तत् ॥३४६॥

आक्षिप्योक्तमहो किंवा वयं तत्सार्थरक्षकाः ॥
तदृव्यापारप्रसक्ता वा यद्द्रव्यंदेयमेव नः ॥३४७॥
पश्चात्किमर्थं रहितो भारवाही स बाहुजः ॥
यच्चोरैर्लुण्ठितोऽकस्मादिति कुर्मो वयं हि किम् ॥३४८॥
त्वया चैतद्धत महत्कृतं दुश्चेष्टितं वृथा ॥
ऋणं कृत्वा धनं दत्तं लिखित्वा पत्रमात्मना ॥३४९॥
तदाकर्ण्येरितं पद्मनाभदासेन धीमता ॥
महाराजधिया भोक्तुमुद्यतेषु भवत्स्विह ॥३५०॥
क्रन्दमानः समायातः क्षत्रबन्धुः स लुण्ठितः ॥
तथा दृष्टो भुञ्जतां हि वैयग्र्ये हेतुरित्यतः ॥३५१॥
समाधाय बहिर्नीतोऽन्यथा मे जन्म वै वृथा ॥
ऋणं कृतं यत्तद्देयं परेद्युरपि संभवेत् ॥३५२॥
तदाकर्ण्योक्तमाचार्यैस्तर्हि पत्रे त्वया कुतः ॥
धर्मो विन्यस्य लिखितः परस्वार्थं वदेति मे ॥३५३॥
स चोक्तवान्महाचार्या गाढलेखं विना क्वचित् ॥
न दातुं संभवेत् द्रव्यमृणनिर्मुक्तिपूर्वकम् ॥३५४॥
इत्याकर्ण्य प्रसन्नैस्तैर्ज्ञातहार्दैर्महाशयैः ॥
प्रस्थितं श्रीमदाचार्यैररिल्लग्रामसंमुखे ॥३५५॥
पद्मनाभो गतो विप्रो राजानं क्वचिदेकदा ॥
वीक्ष्यैनमागतं राजा प्रत्युत्थायाऽभिवन्द्य च ॥३५६॥
उवाच मह्यं भो ब्रह्मन् कथां श्रावय वैष्णवीम् ॥
तदावोचत्पद्मनाभः कथां भागवतीं तु न ॥३५७॥

भारतीं श्रावयिष्यामि चेद्राजञ् श्रोतुमिच्छसि ॥
तदोवाच महान् राजा बाढं श्रोष्यामि भारतम् ॥३५८॥
इत्यामन्त्र्यैव नृपतिरेकदा सुमुहूर्तके ॥
वाचयामास स कथां भारतीं पद्मनाभतः ॥३५९॥
पद्मनाभो महान् वक्ता वाचयामास भारतीम् ॥
कथां नित्यं नियमतो राजलोकस्य संसदि ॥३६०॥
कथां वाचयता नित्यं यदा युद्धप्रसङ्गकः ॥
आगतस्तेन वै प्रोक्तं सर्वेषां शृण्वतां पुरः ॥३६१॥
अद्य शस्त्रायुधानीह सर्वैर्मुक्त्वा निशम्यताम् ॥
तदाज्ञया राजलोकैर्मुक्त्वा शस्त्रायुधानि तैः ॥३६२॥
उपविष्टं श्रोतुमेकचेतसा भारतीं कथाम् ॥
भारतं युद्धमाश्रुत्य पद्मनाभेन वाचितम् ॥३६३॥
तदैवात्यद्भुतो वीररसः प्रादुर्बभूव यत् ॥
अन्तस्तेषां मिथः स्वेषां मुष्टामुष्टि पदापदम् ॥३६४॥
युद्धमासीत्कियत्कालं प्रशशाम स्वतः क्षणात् ॥
यावद्युद्धप्रसंगीयकथा तावदभूदिति ॥३६५॥
कियद्दिनावसानेन समाप्तां भारतीं कथाम् ॥
श्रुतवान्पूजयामास पुस्तकं वाचकं नृपः ॥३६६॥
ददाति स्म बहु द्रव्यं दक्षिणां वाचकाय सः ॥
तदोक्तवान् पद्मनाभदासो राजानमादरात् ॥३६७॥
राजन् भारं धनस्येमं न गृहीष्यामि ते वृथा ॥
अपेक्षितं गृहीष्येऽहमृणनिर्मुक्तिहेतवे ॥३६८॥

राज्ञोक्तं बाढमस्त्वेवमिति दत्तं धनं मुदा ॥
तदा स्वापेक्षितं पद्मनाभस्त्वादाय जग्मिवान् ॥३६९॥
तस्यैव श्रेष्ठिनो हस्ते तत् द्रव्यं दत्तवान् स्वयम् ॥
वृद्धिमूल्ययुतं लेखपत्रं पाटितवाँस्ततः ॥३७०॥
मन्वानः स्वं सुकृतिनं पद्मनाभस्ततो महान् ॥
किं च श्रीपद्मनाभस्य कान्यकुब्जद्विजन्मनः ॥३७१॥
गृहे पुत्री कुमार्येका तदर्थं वर उत्तमः ॥
श्रीमदाचार्यसंसेवी विप्रः संनाहमोचकः ॥३७२॥
विचारितः कृष्णभक्तिमधुमत्तहृदा क्वचित् ॥
पद्मनाभो विस्मृतस्वव्यवहारो दिने शुभे ॥३७३॥
वरस्य वैष्णवैः साकमलिके तिलकं व्यधात् ॥
स्वहस्तेन समाजे स ततः स्वगृहमागतः ॥३७४॥
अवदत्तुलसाख्याया ज्येष्ठाया दुहितुः पुरः ॥
पुत्रिके ते कनीयस्या स्वसुरुद्वाहयोजनम् ॥३७५॥
वरेण तेन विप्रेण सममद्य मया कृतम् ॥
तदोक्तं तुलसानाम्न्या हंहो किमिति ते कृतम् ॥३७६॥
संनाहमोचको विप्रो परो ह्यभिमतः कथम् ॥
तदा ध्यात्वा पद्मनाभदासेनोक्तमहो सुते ॥३७७॥
जातं यदधुना जातं संभवेत्तत्कथं मृषा ॥
तदा प्रोक्तं तुलसया संबन्धः परिवर्त्यताम् ॥३७८॥
श्रुत्वेदं पद्मनाभेन प्रोक्तं तर्हि सुतेऽधुना ॥
छुरिकामानयस्वेह छिन्द्यामङ्गुष्ठकं यतः ॥३७९॥

तिलकं रचितं तस्य भाले सर्वसमक्षतः ॥
तदा पुनस्तुलसया प्रोक्तमङ्गुष्ठकं त्वया ॥३८०॥
किमति च्छिद्यते तात ततस्तेनेरितंपुनः ॥
दुहितुः कृतसंबन्धः परिवृत्येत वै कथम् ॥३८१॥
इत्युक्त्वोपरराभाथ तथा तामुद्वाहयत् ॥
कालान्तरे पद्मनाभो वैष्णवः सत्यवाग् द्विजः ॥३८२॥
अन्यवैष्णववाक्यैकविश्वासभरयन्त्रितः ॥
भगवत्प्रेममत्तश्च चकार न ततोऽन्यथा ॥३८३॥
किंचास्य क्षत्रियाण्येका पद्मनाभस्य वै गृहे ॥
आयान्ती प्रत्यहं दृष्टा पृष्टा तुलसया क्वचित् ॥३८४॥
किमित्यायासि हे नित्यमिति पृष्टा जगाद सा ॥
अयं महाँस्त्रिकालज्ञस्तव तातोऽत्र वैष्णवः ॥३८५॥
संततिर्न ममेत्यर्थमायामि प्रत्यहं त्विह ॥
पुत्रि त्वं मे तदेवास्य विज्ञापय पुरः क्वचित् ॥३८६॥
तच्छ्रुत्वाऽग्रे तुलसया पितुर्विज्ञापितं क्वचित् ॥
तन्निशम्याज्ञतमग्रे तर्ह्यानय जलं मम ॥३८७॥
तदानीतं जलं स्वस्य पदा स्पृष्टं ददौ तदा ॥
क्षत्रियाण्यै पद्मनाभः प्रोक्तवाँस्त्रिः पिबेति वै ॥३८८॥
पुत्रस्ते भविता भद्रे मथुरादासनामतः ॥
आकारणीयो भक्त्या स बन्धुभिर्याहि ते गृहम् ॥३८९॥
इत्युक्ता सा लब्धवरा गृह्णन्ती चरणोदकम् ॥
तथैव गृहमागत्य कृतवत्यचिरेण ह ॥३९०॥

तथा प्राप्तवती पुत्रं मथुरादासनामकम् ॥
यत्प्रसादात्क्षत्रियाणी स्वभूत्सिद्धमनोरथा ॥३९१॥
स वैष्णवः पद्मनाभदासः स्वाचार्य सेवकः ॥
गोवर्द्धनेशाभ्यन्तर्यसेविनो वैष्णवस्य सः ॥३९२॥
रामदासस्य विप्रस्य पद्मनाभः पुराऽभजत् ॥
सेव्यं प्रभुं नित्यदा हि ब्राह्मणे ब्राह्मणो गतिः ॥३९३॥
एकदा तत्र वै देशे यवनो मौनसंज्ञितः ॥
आगतो ग्राममारुध्य सर्वं लुण्ठितवान् खलः ॥३९४॥
रामदासनिषेव्यं तं प्रभुं मौनो गृहीतवान् ॥
दृष्ट्वा तथा हृतं तेन प्रभुं मोनेन मौनतः ॥३९५॥
अन्वियाय शनैः पद्मनाभदासोऽपि दूरतः ॥
नाम्भोऽपि पीतवान्सप्तदिनावधि विना प्रभुम् ॥३९६॥
मौनद्वारस्थितो दीनो हीनोऽप्यनशनव्रती ॥
अष्टमेह्नि यवन्योक्तो यवनः सामवाक्यतः ॥३९७॥
अन्वायातो द्विजः कश्चित् द्वार्येकोऽनशनः स्थितः ॥
निरम्बुपानः सहसा यतोऽग्रेऽयं मरिष्यति ॥३९८॥
हत्या तव शिरस्येषा मा भूद् देहीति तत्प्रभुम् ॥
तदाकर्ण्यैव यवनः प्रभुं तस्मै न्यवेदयत् ॥३९९॥
स पद्मनाभदासोऽपि व्सासो पिहितमम्बरे ॥
रामदासप्रभुं देवमादाय गृहमागतः ॥४००॥
पञ्चामृतेन मन्त्रेण स्नापयित्वा शुभासने ॥
तं प्रतिष्ठापयामास वासोभूषाद्यलंकृतम् ॥४०१॥

भोगमावेद्य नैवेद्यं ततो व्यासोऽपि भुक्तवान् ॥
इति ज्ञातं रामदासेनात्माभ्यन्तरसेविना ॥४०२॥
तस्मिन्नेव दिने श्रीशपुरे गोपालके स्वतः ॥
हाहाकारं कृतवता तेन सप्तदिनावधि ॥४०३॥
नोपभुक्तं प्रसादान्नं स्वसेव्यदुरवग्रहात् ॥
परन्तु गोवर्द्धनेशसेवां स्वीकुर्वता स्थितम् ॥४०४॥
इति वृत्तं श्रुतवता पद्मनाभेन वै क्वचित् ॥
आगतं श्रीनाथदेवं द्रष्टुं गोपालके पुरे ॥४०५॥
संगतो रामदासेन पृष्टो वै पद्मनाभकः ॥
अहो कष्टमुरु प्राप्तो यवनप्रभुनोद्यतम् ॥४०६॥
तदा व्यासः पद्मनाभः प्रोक्तवान् रामदासकम् ॥
यल्लभ्येत मया दुःखं तद्युक्तं यत्प्रभुस्त्वया ॥४०७॥
सेव्यो मे शिरसि न्यस्तः सदसच्चोपयाजितम् ॥
प्रसादान्नं न सप्ताहं भवतात्तं किमित्यहो ॥४०८॥
तदोक्तं रामदासेन व्यास सत्यं त्वयोदितम् ॥
तथापि तु चिरं सेवा कृता सेव्यस्य यन्मया ॥४०९॥
तत्संबन्धेऽक्षये तावत्कृतं युक्तं विचार्यताम् ॥
किं च व्यासः पद्मनाभः प्रभुं श्रीमथुराधिपम् ॥४१०॥
स्वसेव्यमेकदादाय सकुटुम्बश्च निर्धनः ॥
अरिल्लग्राममेयाय स्वाचार्यान्त्यालये स्थितः ॥४११॥
नित्यं श्रीमथुरानाथप्रभोः सेवां समाचरत् ॥
घृतपक्वैर्नव्यहरिच्चणकैर्भोगमार्पयत् ॥४१२॥

हरित्पालाशपत्रेषु पुटकेषु च राशितः ॥
मुद्गा एते भक्तमेतद् व्यञ्जनं पायसं घृतम् ॥४१३॥
वटकाः क्वथिताद्योघः शर्करा मुष्टिभिः पृथक् ॥
तत्तत्समग्रसामग्रीनामभिर्व्याहरत्पुरः ॥४१४॥
तथा भावत एवास्य प्रभुर्नैवेद्यमश्नुते ॥
तद्वृहितं वैष्णवेन केनचित् ज्ञापितं पुरः ॥४१५॥
श्रीमदाचार्यपादानां चणकोरुविधार्पणम् ॥
कदाचित्स्वेच्छयाऽऽचार्याः प्रभोर्भोगसमर्पणे ॥४१६॥
समागताः पद्मनाभदासेनोपहृतं नवैः ॥
नित्यवच्चणकैरेव सर्वसामग्र्युपायनम् ॥४१७॥
पृथक् पप्रच्छुरालोक्य पद्मनाभ महामते ॥
पुटकेषु च पत्राल्यां का एता राशयः कृताः ॥४१८॥
तदाऽवोचत्पद्मनाभो महाराजा इमे पृथक्
राशयः सर्वसामग्र्यो दध्यदः पायसं घृतम् ॥४१९॥
शर्करेयं शिखरिणी व्यञ्जनं मुद्गभक्तकम् ॥
इत्यादयोऽर्पिता एते हरिद्भिश्चणकैः कृताः ॥४२०॥
इत्याकर्ण्याऽऽचार्यवर्यैस्ततः क्लिन्नहृदेरितम् ॥
ज्ञातं हा द्रव्यसंकोचादित्थं भोगोऽर्प्यतेऽमुना ॥४२१॥
तत आगत्यात्मगृहमक्का प्रत्युक्तमार्यकैः ॥
अकिंचनस्य भोः पद्मनाभदासस्य वै गृहे ॥४२२॥
भोगार्थमत्र सामग्री प्रत्यहं प्रेष्यतामिति ॥
अक्कयोमित्युरीकृत्य द्वितीयदिवसात्ततः ॥४२३॥

प्रेषिताऽमान्नसामग्री पद्मनाभगृहे प्रभोः ॥
वीक्ष्याऽऽत्तां तां तुलसया पद्मनाभं प्रतीरितम् ॥४२४॥
प्रायोऽस्मान्प्रभुरस्माकं निर्वासयितुमुद्यतः ॥
आचार्या धान्यभारेण दीनान् स्वान् परिपीडयन् ॥४२५॥
इत्याकर्ण्योद्विग्नमनाः पद्मनाभः कथंचन ॥
अर्थं व्ययार्थं संगृह्य गन्तुकामो परत्र च ॥४२६॥
नाव्येकस्यां स्वमारोप्य मथुरेशं कुटुम्बकम् ॥
समागतः प्रणामार्थमाचार्यचरणान्तिकम् ॥४२७॥
तं सज्जितं क्वापि यातुं प्रेक्ष्याऽथाऽऽचार्यपण्डिताः ॥
पृष्टवन्तः पद्मनाभ सेव्यः क्वाऽस्ते तव प्रभुः ॥४२८॥
तदोक्तवान् पद्मनाभः प्रस्थितो नावि मे प्रभुः ॥
नौश्चास्माच्चलिता ग्रामादित्यवेत्य विसर्जितः ॥४२९॥
पद्मनाभो द्वित्रदिनप्रापितामान्नसंचयम् ॥
प्रापय्य श्रीमदाचार्यभाण्डागारे परोक्षतः ॥४३०॥
जगाम नावमारूढो देशान्तरमकिंचनः ॥
विसर्जनानन्तरं हि भाण्डागारे परोक्षतः ॥४३१॥
श्रीमदाचार्यनिकटे प्रोक्तं यत्प्रापितं गृहे ॥
भाण्डागारे स्वमामान्नं पद्मनाभेन तत्समम् ॥४३२॥
इत्याश्रुत्योक्तमाचार्यैः सोऽन्नसंकोचतो गतः ॥
हन्त ग्रामादितोऽस्माकमावासात्सेवकः खलु ॥४३३॥

इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां चतुर्थवार्तामणिः

वार्ता ८

पद्मनाभस्य या पुत्री तुलसी कीर्तिता पुरा ॥
तस्या भगवदीयाया भव्या वार्ता निरूप्यते ॥४३४॥
श्रीमदाचार्यचरणसेवकः कोऽपि वैष्णवः ॥
आयातस्तुलसागेहे कृतवान् दर्शनं प्रभोः ॥४३५॥
तदा तुलसया प्रोक्तं स्नातव्यं वैष्णव त्वया ॥
वैष्णवेनेरितं गत्वा स्नास्यामि स्थानके स्वके ॥४३६॥
तदा तुलसया तूष्णींभूय स्थितमधोदृशा ॥
उक्तं हा वैष्णवो यातो मम गेहादभोजितः ॥४३७॥
ज्ञातं ज्ञातं गतो ज्ञात्वा सामग्री रन्धितेति ते ॥
शुचयो ब्राह्मणा अन्यजातीया व्यवहारतः ॥४३८॥
बाढं भूयः प्रातरहमरन्धितमुदारतः ॥
घृतपक्वं प्रसादान्नं चित्रधा रचितं प्रभोः ॥४३९॥
भोजयामीति मिष्ठान्नसारं गोधूमपिष्टजम् ॥
सुष्वाप तुलसा स्वप्ने मथुरेश उवाच तौ ॥४४०॥
वैष्णवात्तं प्रसादान्नं तुलस्या न कथं गृहे ॥
अद्य गत्वोपभोक्तव्यं वैष्णव्या सत्कृतेन रे ॥४४१॥
तुलसे वैष्णवं तं त्वं प्रसादान्नेन तर्पय ॥
स सत्कृतस्त्वया भद्रे भोक्ष्यते नात्मगेहजम् ॥४४२॥
इत्याकर्ण्य प्रबुद्धा सा प्रातः स्नात्वा चकार ह ॥
पक्वान्नं पूरिकामिष्टमथ श्रीमथुराधिपम् ॥४४३॥
प्रबोध्य स्नापयित्वा तु यावच्छृङ्गारयेत् प्रभुम् ॥
तावत्समागतः सोऽपि वैष्णवो हरिनोदितः ॥४४४॥

प्रातस्तुलस्याः सदने दर्शनं कृतवान्प्रभोः ॥
समर्प्याथो राजभोगं तुलसा बहिरागता ॥४४५॥
उपविष्टं वैष्णवं तं स्नानार्थमपि चैरयत् ॥
तदोक्तं तेन भो भद्रे प्रातः स्नातं पुनर्मया ॥४४६॥
स्नातव्यमित्येवमुक्त्वा भूयः स्नातः स वैष्णवः ॥
अस्मरच्छरणं कृष्णो ममेति च वदन्मुहुः ॥४४७॥
एतावता तुलसया राजभोगोऽपि सारितः ॥
राजभोगारार्तिकं श्रीदर्शनं कृतवान्प्रभोः ॥४४८॥
कृत्वाऽनवसरं प्रागात्तुलसा बहिरादरात् ॥
इहासितव्यमिति सा निवेश्य शुचिमानयत् ॥४४९॥
अरन्धितं प्रसादान्नं घृतपक्वाः सुपूरिकाः ॥
वटका मिष्टमित्यग्रे पत्राल्यां परिवेषितम् ॥४५०॥
भोक्तव्यं वैष्णव मुदेत्युक्तं तुलसया तदा ॥
श्रुत्वेरितं वैष्णवेन भोक्ष्ये नेदं हि केवलम् ॥४५१॥
अहं तु रन्धितं भोक्ष्ये तुलसे तत्समानय ॥
तदेरितं तुलसया संकोचः क्रियतां न भोः ॥४५२॥
भवता विसजातीयव्यवहारो विचारितः ॥
तदोक्तं वैष्णवेनेत्थं सत्यं प्राक् हृदि मे स्थितम् ॥४५३॥
परन्तु जातं मे स्वप्ने मथुरेशानुशासनम् ॥
तेन भोक्ष्ये रन्धितं श्रीप्रसादान्नं च नान्यथा ॥४५४॥
इत्यावेदितवृत्तान्तो वैष्णवस्तुलसार्पितम् ॥
रन्धितं तत्प्रसादान्नं वैष्णवो बुभुजे प्रभोः ॥४५५॥
भोजयित्री प्रसादस्य तुलसी वैष्णवश्च भुक् ॥
प्रसीदतो मिथश्चोभौ मथुरेशानुमोदितौ ॥४५६॥

क्वचिद् गोस्वामिभिर्यातं तुलसाया गृहे मुदा ॥
तत्रैव भोजनं कृत्वा सुप्तमुत्थापनावधि ॥४५७॥

स्वासनेऽथोपविष्टैस्तैस्तां प्रत्युदितमादरात् ॥
कृष्णवार्तानन्तरं भोः पद्मनाभस्य संततिः ॥४५८॥

एवंविधैवोचितेति तुलसे वः प्रभुः क्वचित् ॥
दर्शयत्यनुभावं स्वमिति पृष्टा जगाद सा ॥४५९॥

संशेमहे महाराजाः सम्प्रत्यन्नो भृतोदरम्
श्रुत्वेति तुष्टास्ते प्रोचुर्वैष्णवस्य प्रभुस्त्वहो
आर्तिं न सहते जातु दयालुरिति मे मतिः ॥ ॥४६०॥

इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां पञ्चमवार्तामणिः

वार्ता ६

किंच पूर्वोक्तस्य तस्य पद्मनाभस्य वै स्नुषा ॥
विधवावीरसूः प्रीत्या प्रभोः सेवां सदाचरत् ॥४६१॥

पुरुषोत्तमदासश्च मेघराट् वैष्णवः क्वचित् ॥
प्रीत्या वैष्णवतारीत्या प्रपुनाति स्म यद्गृहम् ॥४६२॥

कियद्दिनोत्तरं साध्वी पार्वती तस्य सा स्नुषा ॥
श्वित्रेण श्वेततां याता रोगेण करपादयोः ॥४६३॥

नानाविधान्नसामग्रीं प्रभोः सेवां करादिना ॥
तथाविधेन कुर्वन्ती मनसि ग्लानिमानयत् ॥४६४॥

लिखित्वात्मसमाचारान् पत्रं सा पुरुषोत्तमे ॥
प्रेषयामास दीनारं स्वाचार्यार्थमुपायनम् ॥४६५॥

वाचयामास तत्पत्रं पुरुषोत्तमदासकः ॥
यत्त्वमाचार्यनिकटे पृच्छ मे श्वित्रकं कथम् ॥४६६॥

निवर्त्तेताशु संभूतमति पृष्ठाङ्घ्रिहस्तयोः ॥
अङ्गसेवां पाकसेवां कुर्वन्त्या ग्लानिरेति मे ॥४६७॥
ततोऽत्र कुर्यां किमिति पत्रमादाय सोऽगमत् ॥
श्रीमदाचार्यवर्याणामन्तिके स तदाज्ञया ॥४६८॥
श्रावयामास पत्रस्थान् समाचारान् व्यजिज्ञपत् ॥
पार्वत्योपहृतां स्वर्णमुद्रामग्रे न्यवेदयत् ॥४६९॥
तदाकर्ण्योक्तमाचार्यैः पश्चाद्वक्ष्ये प्रतिक्रियाम् ॥
दिनद्वयोत्तरं भूय आचार्यैरेव वेदितम् ॥४७०॥
पुरुषोत्तमदासाग्रे तस्याः पत्रे विलिख्यताम् ॥
सुखेन पाकाङ्गसेवां कुर्वत्याग्लानिरण्व्यपि ॥४७१॥
त्वया न कार्या मनसि प्रभुः क्षेमं विधास्यति ॥
रोगं निवृत्तमचिरादिति तैः स विसर्जितः ॥४७२॥
पुरुषोत्तमदासोऽपि समायातो निजे गृहे ॥
श्रीमदाचार्योक्तरीत्या प्राहिणोल्लिखितं दलम् ॥४७३॥
पार्वत्या अपि हस्ताङ्घ्री मासत्रिचतुरान्तरे ॥
विनिवृत्तश्वित्ररुजौ सेवया परया प्रभोः ॥४७४॥
तुष्टा प्रभुं भजन्ती स्वं पार्वती प्रकृतिं गता ॥
भूयः पत्रं स्वर्णमुद्रां प्राहिणोद्गो विभूत्तमाः ॥४७५॥
भवत्प्रसादाद्विरुजा भजामीति विलिख्य सा ॥
तच्छ्रुत्वा श्रीमदाचार्यास्तुष्टा ऊचुर्महत्सुखम् ॥
जातं प्रभुः स्वया वृत्त्या साहाय्यं कृतवानिति ॥४७६॥
इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालिकायां षष्ठो वार्तामणिः

वार्ता ७

पार्वत्याश्चसुतो नाम्ना रघुनाथ इतीरितः ॥
पद्मनाभस्य पौत्रः स गतो वाराणसीं चिरात् ॥४७७॥

तत्र शास्त्रमधीत्योरु श्रीगोकुलमिहागतः ॥
प्रणतः श्रीविट्ठलेशान्दण्डवत् पूर्ववैष्णवः ॥४७८॥

श्रीमदाचार्यचर्याङ्गीकृतवंश्यानुरोधतः ॥
गोस्वामिपादाः सुकथां कथयन्ति स्म यत्पुरः ॥४७९॥

रघुनाथः शृणोति स्म वाच्यमानां कथांसुधीः ॥
एकदा परमानन्दस्वर्णकारेण चादरात् ॥४८०॥

पृष्टो भो रघुनाथ त्वं वाराणस्यामधीतवान् ॥
कथां किमनुसंधत्से श्रीगोस्वामिसमीरिताम् ॥४८१॥

तर्हि तां कथयास्माकं श्रोतॄणामविदां पुरः ॥
तदोक्तं रघुनाथेन सत्यं वेद्मि न पद्धतिम् ॥४८२॥

तेन मे बुद्धिविषया न कथेयमिति ध्रुवम् ॥
निशम्य परमानन्दस्वर्णकारेण तत्पुनः ॥४८३॥

श्रीगोस्वाम्यन्तिके प्रोक्तं महाराजधिया खलु ॥
श्रोता न रघुनाथोऽनुसंधत्तेऽण्वपि वः कथाम् ॥४८४॥

इति स्माकर्ण्य गोस्वामिपादास्तं रघुनाथकम् ॥
द्वित्रानध्याप्य स्वाचार्यग्रन्थानाहुः प्रणालिकाम् ॥४८५॥

ततस्तु सर्वं बुबुधे प्रकारं भक्तिवर्त्मनः ॥
शास्त्ररीत्या बुधो जातु कान्यकुब्जे समागतः ॥४८६॥

मातरं पार्वतीं प्राह भविष्यामि पृथक् गृही ॥
प्रभोः सेवां करिष्यामि श्रुत्वेत्थं तं जगाद सा ॥४८७॥

बाढं कुर्वित्यथाऽप्येषा प्रभुं पर्यचरद्वहिः ॥
प्रत्यहं नीरमानिन्ये प्रातः पात्राण्यमार्जयत् ॥४८८॥
परिचारक्रियां कृत्वा राजभोगोत्तरं गृहे ॥
गत्वात्मनः पृथक् कृत्वा लीटिकाः प्रार्पयद्वदा ॥४८९॥
प्रत्यहं प्रभवे तस्मै भुङ्क्तेऽस्यास्तु प्रसादतः ॥
पञ्चसप्तदिनान्ते श्रीमथुरेशेन सेरिता ॥४९०॥
वधु पार्वति मेत्यन्तं कण्ठः खरखरायते ॥
लीटिका भोजिताः शुष्का नित्यं, सूपं क्वचित् कुरु ॥४९१॥
तदाकर्ण्येति पार्वत्या प्रोक्तं भो भवता प्रभो ॥
भुज्यन्ते वै बहुविधाः सामग्र्योऽस्य गृहे सदा ॥४९२॥
कोऽयं हि तव निर्बन्धः शुष्कलीटीप्रभोजने ॥
तदोक्तं प्रभुणा भद्रे त्वद्धस्तकृतमद्म्यहम् ॥४९३॥
इति श्रुत्वा प्रभोर्वाक्यं तद्धितार्थाय पार्वती ॥
सूपौदनं शाकमपि कृत्वा प्रार्पयदन्वहम् ॥४९४॥
ततोऽचिरादेव तेन पुत्रेणोक्ता च पार्वती ॥
त्वमेव तु प्रभोः पाकसेवां कुर्वीति चासकृत् ॥४९५॥
तदा पुनः पाकसेवां कुर्वाणा पार्वती प्रभोः ॥
वत्सला वत्सलस्येव जननी सुखमन्वभूत् ॥४९६॥
इतिश्रीमद् वैष्णवकथासुमालायां सप्तमवार्तामणिः ॥

वार्ता ८

किंचासीत् क्षत्रियाण्येका रज्जोनाम्नीति विश्रुता ॥
श्रीवल्लभाचार्यवर्यसेविका शरणं गता ॥४९७॥

नित्यं पक्वान्नसामग्रीं नूतनां विरच्य्य सा ॥
नक्तं निवेदितवती श्रीमदाचार्यभुक्तये ॥४९८॥
तां भुञ्जते स्म ते नित्यं प्रीत्या तद्विनिवेदिताम् ॥
आचार्यास्तन्नियमतः कृतया सेवया वशाः ॥५९९॥
एकदाचार्यकैस्तात लक्ष्मणस्य क्षयाहनि ॥
श्राद्धे विप्रा यथाशक्ति भोजनार्थं निवेशिताः ॥५००॥
मानतः सर्वसामग्रीं पूर्णां प्रेक्ष्य घृतं विना ॥
तत्रोक्तमाचार्यवर्यैर्वैष्गवान्प्रति किंकरान् ॥५०१॥
हंहो रज्जोक्षत्रियाण्या घृतमानयताऽऽशु भोः ॥
ततो निशम्याऽऽशु गतस्तदर्थं ह्येकवैष्णवः ॥५०२॥
रज्जो देवि शृणु श्रीमदाचार्यैरर्थ्यते घृतम् ॥
तदाकर्ण्योक्तं च तया किमर्थं घृतमर्थ्यते ॥५०३॥
तेनोक्तं श्रीमदाचार्यैर्भोज्यन्ते ब्राह्मणाः सति ॥
विहितस्वपितृश्राद्धैस्तदर्थं प्रेषितोऽस्म्यहम् ॥५०४॥
तदा तयोक्तं न घृतं मेस्तीति प्रतिवार्त्तितः ॥
वैष्णवः स तदाऽगत्य स्वाचार्येषु व्यजिज्ञपत् ॥५०५॥
आकर्ण्य पुनराचार्यै रे वाच्या साऽथ मद्गिरा ॥
घृतं देयमिति क्षिप्रं वैष्णवः प्रहितः पुनः ॥५०६॥
स आगतस्तदा रज्जोदेवीमित्यवदत्स्फुटम् ॥
भो भद्रे भर्त्सयित्वोक्तमाचार्यैर्देहि त्वं घृतम् ॥५०७॥
तदा तयोक्तं नहि मे घृतमस्तीति किं पुनः ॥
प्रत्याख्यातः समायातो यथावत्तेषु सोऽवदत् ॥५०८॥
तदाकर्ण्याऽचार्यवर्य्यैस्तूष्णींभूतैर्जनान्तरात् ॥
घृतमानाय्य ते विप्रा भोजिताः परमादरात् ॥५०९॥

रात्रौ रज्जोक्षत्रियाणी नित्यसेवापरायणा ॥
प्राप्ता पक्वान्नसामग्रीमादायाचार्यसंमुखम् ॥५१०॥
तां दृष्ट्वा श्रीमदाचार्याः पृष्ठं कृत्वाऽत्मनः स्थिताः
इत्यद्भुतं च सा प्रेक्ष्य विज्ञप्तिं कृतवत्यभूत् ॥५११॥
महाराजाः कोऽपराधो ममेति विनिरूप्यताम् ॥
तदोक्तं श्रीमदाचार्यैः शृणु मे प्रियकारिणि ॥५१२॥
पितृलक्ष्मणभट्टस्य क्षयश्राद्धेऽद्य भोजिताः
विप्रास्तदर्थं हि मया घृतं त्वद्गृहतोऽर्थितम् ॥५१३॥
तत्त्वया न कथं दत्तमिति क्षिप्ताऽथ साऽवदत् ॥
नाऽस्मि लक्ष्मणभट्टस्य दासिका भवतामहम् ॥५१४॥
दद्यां यच्छ्राद्धभुग्विप्रभोजनार्थं घृतं प्रभो ॥
भवतां किं गृहे तन्न हरेश्चेद्वः समो विधिः ॥५१५॥
इत्थं तद्वचनं श्रुत्वाऽऽचार्यास्तूष्णीं तदाऽभवन् ॥
ततस्तया पुरोन्यस्तां सामग्रीं नित्यवन् मुदा ॥५१६॥
वीक्ष्याचार्यैर्वचः प्रोक्तमद्य श्राद्धदिने मया ॥
भोक्तव्यं न पुनर्भद्रे द्विर्न भोज्यमिति स्मृतेः ॥५१७॥
तदाकर्ण्य तया प्रोक्तमाचार्याः सत्यमुच्यते ॥
वर्ज्यं पुनर्भोजनं तु स्वगेहजमिति स्मृतेः ॥५१८॥
व्यवस्थितिं विचार्याऽऽर्या भक्ष्यं ग्राह्यमिदं हि वः ॥
इत्याकर्ण्य ज्ञातहार्दैराचार्यै स्तत्सदाग्रहात् ॥५१९॥
भुक्तं प्रभोः प्रसादार्तं पक्वान्नं घृतपाचितम् ॥
एतादृक् श्रीमदाचार्यकृपापात्रं बभूव सा ॥
रज्जोनाम्नी क्षत्रियाणी कृष्णसेवा परायणा ॥५२०॥

इति श्रीमद्वैष्णवकथासुमालायामष्टमवार्तामणिः